राष्ट्रीय धरोहर

परिमल प्रकाशन
१७, एम० आई० जी०, बाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद-२११००६ फोन ५२७७१

राष्ट्रीय धरोहर / वेद व्यास
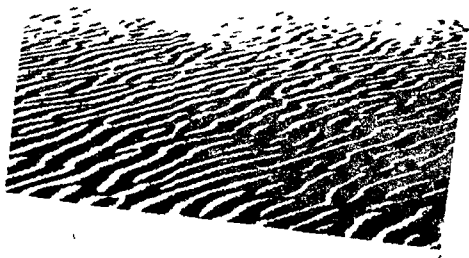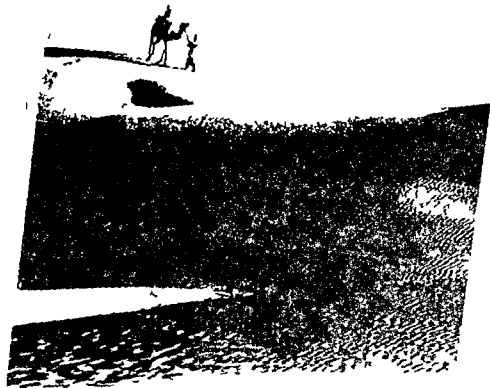
प्रकाशक
परिमल प्रकाशन
17, एम० आई० जी०
वाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद–211 006

•

मुद्रक
पियरलेस प्रिन्टर्स
1, बाई का बाग
इलाहाबाद– 211 003

•

आवरण
इम्पैक्ट, इलाहाबाद

•

•

प्रथम संस्करण
1989 ईसवी

•

मूल्य एक सौ पतीस रुपये म.

सुमन, रचना,
प्रगति एव विचार को
सप्रेम

अपना देश

अक्सर लोग बातचीत मे कहते हैं कि हम सब जानते हैं और हमे सब मालूम है। लेकिन बहुत कम ऐसे लोग हैं जो इस दुनिया को तो क्या अपने महान देश भारत के इतिहास, सस्कृति, साहित्य और चितनधारा को भी जरूरी तौर पर जानते हैं। यही कारण है कि हमने देश, धरती, समाज और लोक जीवन की अपनी अलग-अलग व्याख्याएँ बना ली हैं। विविधता मे एकता का मुहावरा तो हमे याद है किन्तु इस एकता के भीतर छिपे सत्य से हमारा दूर-पास का कोई रिश्ता अभी तक स्थापित नही हो पाया है। यह पहेली मुझे बचपन से ही परेशान किया करती थी कि आखिर इस भारत का अथ क्या है ? वास्कोडिगामा की तरह मैंने किसी भारत को नही खोजा है और न ही मैंने पडित जवाहरलाल नेहरू की तरह इस भारत को किसी इतिहास के विकास का आधार बनाया है।

एक समय था जब गाँव से कोई व्यक्ति तीथयात्रा पर जाता था तो गाँव में उत्सव होता था लेकिन आज स्थिति यह है कि हमारी अनगिनत यात्राओ के बीच अब किसी भी यात्रा का कोई महत्व नही है। सतो की बानियाँ हमे अब भाव विभोर नही करती। सगीत के सुरनाद अब हमे दि य लोक मे नही ले जाते। मेले और पव अब हमारी लोक आस्था के के द्र नही बनते। यह बदलाव जहाँ समय का है वहाँ विज्ञान, उद्योग और जन सचार के क्षेत्र मे आई क्रान्ति का भी है। आदमी अपने भीतर सिमट रहा है और उसके अतरघट मे प्रकृति, सस्कृति, दशन और ज मभूमि के प्रति गहरी उदा सीनता का भाव बढता जा रहा है। पहले वह अपनी परम्परा के प्रति चिंतित था तो अब वह अपनी पहचान के लिए परेशान है। पहचान का उसका स्वरूप अब राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी न होकर अपने जातीय धम और सस्कार मे सिमट गया है। सामाजिक याय के सघर्ष मे आज वह स्वय एक महाभारत का पात्र है। वह तीथ को पयटन, सगीत को मनोरजन, सस्कृति को प्रदशन,

साहित्य को शौक और महान भारतीय चरित्रों का बीत हुए समय का प्रसाद मानता है। भारत की आत्मा अब उसके गाँवों में ही शेष रह गई है।

अब महापुरुष उसके लिए एक जयती और शताब्दी हैं। अब मनुष्य उसक लिए एक धर्म और जाति है अथवा महज एक राजनीति है। कालिदास की तरह वह जिस पेड की डाली पर बैठा है उसे ही काटन म उसकी सारी शक्ति लगी हुई है। वह विवादों को सुलझाता कम है तो उन्हें बढ़ाता ज्यादा है। यही सोच विचार का परिवतन मुझे भी बार बार यही कहता है कि मैं उस भारत की मुख्यधारा को ढूढ़ू जिसमें नहाकर हम आज तक वैदिक और युगान्तकारी बने हुए हैं।

इसी आस्था से मैंने भारत के अनेक रूपों को देखा और उनका परिचय बनाया। राष्ट्र की प्रकृति और सस्कृति को जानने के लिए ही मैंने शब्द चित्रा के आयाम को बदला तथा यह प्रयास किया कि हम अपने भारत की धरोहर को उसकी सहजता के साथ जानें। प्रस्तुत सग्रह के छोटे छोटे परिचयात्मक लेख वस्तुत उन असख्य लोगो के लिए हैं जो साधन और समय के अभाव मे 'कठौती' को ही 'गगा' समझते हैं या फिर उन विद्यार्थियो के लिए हैं जो देश की व्यापकता और विभिन्नता के प्रति मन मे गहरी आस्था और जिज्ञासा रखते है।

सक्षिप्त परिचय की यह चित्रशाला मैंने आकाशवाणी जयपुर के प्रसारित अपनादेश' कायक्रम के लिए तैयार की थी। इनका देश की विभिन्न भाषाओ मे अनुवाद भी वर्षों तक आकाशवाणी क पचरगी कार्यक्रम विविध भारती' से प्रसारित हुआ था। कम समय में देश के इतिहास, समाज और सस्कृति को जानने का यह वार्तारूप जन सामान्य द्वारा पसद भी किया गया था। अत सामान्य ज्ञान के स्तर पर इस परिचय धारा का महत्व मुझे आज भी प्रासगिक नजर आता है।

'राष्ट्रीय धरोहर' मे सकलित लेख यदि मुझसे आज कोई लिखने को कहे तो शायद मैं नही लिख पाऊँगा। लेकिन एक उम्र थी और एक समय था जब मैंने ये लेख बडे चाव और मेहनत से लिखे थे और अपनी समझ को राष्ट्र की महानता से सींचा था।

इस सग्रह मे कई अध्याय हैं और इसके अतर्गत अनेक कालचक्रो मे घूमते कथालोक हैं। यह सकलन एक सम्पूर्ण भारत की परिकल्पना करने म सहायक बन सकेगा, एसा मरा विश्वास है। इसम सब कुछ भले ही नही हो लेकिन बहुत कुछ अवश्य है। एक साथ अनेक चित्रों को देखना और उनमे समन्वय के आधार तलाशना ही इस 'राष्ट्रीय धरोहर' की अभिलाषा है।

आज विद्यालयो मे, परिवारो मे तथा पुस्तकालया मे कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिलती जो सरलता से इस भारत की अमूल्यनिधि को एक साथ और एक जगह बता सके। इस सदर्भ मे यह सकलन हमारी 'राष्ट्रीय धरोहर' का पहला सोपान है जो विश्वकोश और ज्ञानकोश तो नहीं लेकिन परिचयकोश जैसा अवश्य है।

'राष्ट्रीय धरोहर' के मथन मे अभी तक मैंने जो कुछ पाया और लिखा उसे ही प्रस्तुत करने का यह विनम्र प्रारम्भ है तथा आशा करता हूँ कि आपके लिए, अपने लिए और सम्पूण भारत की एकता के लिए मेरा यह मथन निरतर जारी रहेगा। आपके सुझाव ही इस अपूण को पूण बनायेंगे क्योकि इस दुनिया में सत्य के अतिरिक्त कोई भी सम्पूण नहीं होता। जाति, धर्म, पूजी और राजनीति के चक्रव्यूह मे महान भारत की पहचान इस 'राष्ट्रीय धरोहर' से ही सभव हो पायेगी।

इस पुस्तक मे जो कुछ अच्छा है, वह आपका है तथा जो कुछ कमी है, वह मेरी है। साथी शिवकुमार सहाय ने मेरे इस प्रयोग को आप तक जिस आत्मीयता से पहुँचाया है, मैं इसके लिए उनका हृदय से आभार मानता हूँ। साथी डॉ० अशोक त्रिपाठी ने इस 'राष्ट्रीय धरोहर' को नया स्वरूप और सिलसिला दिया है अत उन्हें मैं कभी भुला नही पाऊँगा।

यह 'राष्ट्रीय धरोहर' उस प्रगतिशील सोच और विचार की अवधारणा भी है जो सामान्यजन के सनातन काल से चले आ रहे सघर्ष का परिणाम है। आप इस किसी भी दिशा और दृष्टि से देखें और पढें यह धरोहर आपको अपने गौरव का आभास करायेगी।

27 मई, 1989 —वेद व्यास
जयपुर (राजस्थान)

अनुक्रम

□

धर्मगुरु 129-156

भारत के कर्णधार 157-208

• •

परिक्रमा

आबू

आपने देखा होगा कि भारत मे जितने भी तीर्थस्थल हैं वे या तो किसी तालाब या नदी के किनारे हैं या फिर किसी पवत की चोटी पर। इसके पीछे निश्चय ही वातावरण की पवित्रता का उद्देश्य रहा होगा। आबू पवत भी ऐसा ही स्थल है जहा कि कई धम एक साथ विकसित हुए। केवल धम इतिहास मे ही नही अपितु कला एव युद्ध कौशल के इतिहास मे भी आबू पवत का उल्लेख विशिष्टता से हुआ है। पुराण, उपनिषद्, महाभारत और जैन ग्रथा में तो आबू का सर्वोत्तम पुण्यलाभा धरा धाम माना गया है। पद्मपुराण क उल्लेखानुसार—" हिमालय पवत के पुत्र अर्बुदा अथात आबू पर चला जाय जहाँ पहले पाताल मे जाने के लिए एक सुरग थी। जहाँ का महर्षि वशिष्ठ का आश्रम तीनो लोको मे विख्यात है। वहाँ यदि मनुष्य एक रात भी निवास कर लेता है तो उस हजार गोदान करने का पुण्य होता है।"

आबू पवत 21 किलोमीटर लम्बा और 6 किलोमीटर चौडा है। इस प्रदेश मे सब कुछ शोभायमान, रमणीय और स्वाभाविक है। यहाँ की एकातिक सुदरता को देख कर लगता है जैसे इस स्थान को प्रकृति देवी ने अपनी परम लाडली सतान के लिये सजाया हो। घोसलों मे बैठे भूरे तीतर, वृक्षो पर पवितबद्ध कबूतर और कठोर लकडी पर अपनी चोच का जोर आजमाते हुए लक्कडफोड अर्थात खातीचिडे की आवाजें यहा खूब सुनाई देती है। फल फूलो से आच्छादित, नदी नाला व झरनो से प्लावित, और कोहरे के काले चोगे स अवगुठित प्रतापशाली आबू अपने विषय मे अनगिनत कल्पनाओ का जन्मदाता है।

इतिहासज्ञ अलक्जैण्डर किनलाक फाब्स के अनुसार—"इस पवत क्षेत्र म केवडे की झाडियाँ बहुत उगी हैं। मुनि के देवालय की इमारत छोटी है, जिसमे श्यामवण के सगमरमर की बनी मुनि-मूर्ति विराजमान है। इन मुनिवय ने अचलेश्वर के अग्निकुण्ड मे से क्षत्रियो को उत्पन्न किया था। वशिष्ठ मुनि के देवालय मे प्रात काल, दोपहर और सध्या समय चौघडिये की गभीर ध्वनि होती है। यही पर आबू के शूरवीर, दनुजनाशक, धारावष परमार की पीतल निर्मित मूर्ति विद्यमान है, जो अपनी जाति को उत्पन्न करने वाले ऋषि की अभ्यथना कर रहा है। यहा के सबसे अधिक चमत्कारी शिखर पर अचलगढ

दुग बना है। इस प्रकार के वणनात्मक चित्रण से हम यह बात अवश्य जान पाते हैं कि आबू पवत एसी अनक कथा धाराओ का सूत है जो हि दू-जैन धम पर विशेष रूप से प्रकाश डालता है।

कहते है यह सागर तल से बारह सौ उन्नीस मीटर की ऊँचाई पर है। इसकी सबसे ऊँची चोटी का नाम गुरु शिखर है। भूगभ शास्त्रियो की ऐसा मा यता है कि यहाँ पहले समुद्र था। कालान्तर मे यह हरी भरी भूमि मे बदला और फिर ईसा से पच्चीस हजार वष पहले, पवत रूप मे परिणत हुआ। परम्परा के अनुसार यह महर्षि वशिष्ठ का निवास स्थान है जा बुद्धिवाद क प्रतीक हैं। यही कारण होगा कि इस पवत का नाम अरबुद पड़ा। यज्ञो द्वारा अनार्यों की शुद्धि कर उ हे आय बनाने की प्रणाली के आधार पर ही आबू क अग्निकुण्ड की परम्परा प्रचलित हुई। यह परम्परा यहाँ क विशिष्ट स्थान गोमुख से सम्बन्ध रखती है।

यो इस पहाड़ी का उल्लेख मेगस्थनीज ने भी ईसा के तीन सौ वष पूर्व किया है। महाभारत म उल्लेख है कि यही पर स पृथ्वी मे छेद किया गया और विष्णु पुराण मे परी पुत्र पर्वत पर सौराष्ट्र सुर, अभिरास अबुद्धि आदि क्षेत्र इसके ही परिचायक हैं। यहाँ से प्राप्त अभिलेखो के द्वारा यह निश्चय करना पड़ता है कि प्रारम्भ मे यहाँ शैवमत का प्रभाव था। पर 1032 ईसवी के बाद जैनो का प्रभाव प्रारम्भ हुआ।

इस क्षेत्र के इतिहास के सम्बन्ध मे इतिहासकार मानते हैं कि 12 वी शताब्दी मे यहाँ परमार शासक राज्य करते थे। सम्भवत 326 ईसवी पूव मौर्यकाल से आठवी शताब्दी के वलभी युग तक महाभारत की केन्द्रीय शक्ति क अधीन रहा। साथ ही गुजरात के चालुक्य, सोलकी एव बाघेला शासको के अधीन आबू के परमार रहे हैं। अधिकाश परमारो की दो राजधानियाँ अचलगढ और चन्द्रावती वर्णित है। 1131 ईसवी में आबू देवडा चौहानो के अधीन चला गया। अखियातें कहती हैं कि 15 वी शताब्दी के मध्य में राणा कुम्भा ने गुजरात के शासक कुतुबुद्दीन से सुरक्षा प्राप्त करने के लिये आबू की पहाड़िया म शरण ली थी। इन्ही अबुद्ध पहाड़ियो की सहायता से राव, सुरताण गुरिल्ला रणनीति द्वारा मुगल फौजो को तग किया करता था। राजस्थान का सवर्चित व्याख्याकार कनल जेम्स टाड इस क्षेत्र म 22 जून 1822 ईसवी को आया। यह पहला अँग्रेज था जिसने आबू की खोज की। अग्रेजी साम्राज्य एव स्वतन्त्र भारत की बम्बई सरकार के अधीन रहने के,पश्चात राजस्थान की जनता के ऐतिहासिक आदोलन के बाद 1 नवम्बर 1956 को यह राजस्थान मे सम्मिलित किया गया।

आबू, मन्दिरा का घर और कला का केन्द्र है। पश्चिमी रेलवे की अहमदा-

बाद—दिल्ली रेल लाइन पर माउन्ट आबू, आबू रोड स्टेशन से उनतीस किलोमीटर की दूरी पर है। आबू पर्वत पर धरातल से 450 सीढियाँ चढने पर अर्बुद्ध देवी का मन्दिर है जो पहाड की एक गुफा मे बना है। ईसवी सन् 1518 के अभिलेखानुसार सम्भवत यह आय बुद्धिवादियो का विचार स्थल रहा हो। आबू शहर से 8 किलोमीटर दूर, प्रसिद्ध अचलगढ है जहाँ अचलेश्वर अर्थात शिव मन्दिर, मन्दाकिनी कुण्ड, कर्पूरसागर आदि हैं, यही राणाकुम्भा ने एक बार शरण ली थी। अचलगढ मे जैनो के मन्दिर जिनमे शान्तिनाथ, नेमिनाथ मन्दिर और चौमुखजी के मन्दिर प्रमुख हैं। यहीं पास मे है भर्तृहरि गुफा, ओरिया का शैव मन्दिर, जहाँ चौदहवी शताब्दी मे रामानन्द जी ने भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ से पूर्व भगवत ध्यान किया था। शहर से लगभग 5 किलोमीटर दूर 750 सीढियाँ उतर कर वशिष्ठाश्रम है जहा एक कुण्ड मे गोमुख से जल गिरता है। यहा मन्दिर मे महर्षि वशिष्ठ तथा अरुन्धती जी की मूर्तियाँ हैं। कहते हैं वशिष्ठ मन्दिर 1337 ईसवी मे चन्द्रावती के चौहान राजा कान्हडदेव के तत्वावधान मे बना था। यहीं है वह अग्निकुण्ड जो राजपूतो की उत्पत्ति का उद्गम है। *अभिलेखानुसार प्राचीन लाखनगर यहीं स्थित है। वशिष्ठ आश्रम* के पास है व्यासतीर्थ, नागतीर्थ और गौतम आश्रम। कहते हैं इस नागकुण्ड से ही उतङ्क मुनि तक्षक का पीछा करते हुए पाताल तक गये थे। यहाँ नाग पचमी को मेला लगता है। गौतम आश्रम मे कामधेनु गाय एव अर्बुदादेवी की मूर्तिया है।

हिन्दू देव पर्वत आबू से डेढ किलोमीटर की दूरी पर है—विश्व प्रसिद्ध देलवाडा का जैन मन्दिर समूह, जिसमे 5 जैन मन्दिर हैं। सगमरमर से बने ये मन्दिर बारीक कलात्मक कार्य के लिये दर्शनीय हैं। एक सौ चालीस घन फुट दीवार से घिरा विमलशाह द्वारा निर्मित आदिनाथ का जैन मदिर जिसे ईसवी सन् 1031 मे मन्दिरो की भुवनेश्वर प्रणाली पर बनाया गया, विशेष अवलोकनीय है। मन्दिर के मोती नयना आदिनाथ की मूर्ति, चबूतरे, गुम्बद और स्तम्भो पर अद्वितीय कला अकन देखते ही बनता है। मन्दिर के सामन ही अश्वारुढ विमलशाह की मूर्ति है।

समूह में दूसरा कला पूर्ण मन्दिर वस्तुपाल और तेजपाल का है। इसको नेमिनाथ या लूणवसहि का मन्दिर भी कहा जाता है। इस मन्दिर की बनावट यो तो विमलशाह के मन्दिर जैसी है, किन्तु कलात्मक दृष्टि से यह अधिक प्रभावी व समृद्ध है। इनकी रचना सुना है शोभनदेव नामक शिल्पी ने की थी। कर्नल जेम्स टाड के कथनानुसार "भारत मे इन मन्दिरो की सुन्दरता का मुकाबला शायद ही कोई कर सकता है।" फर्गुसन के अनुसार—

सूक्ष्म म सूक्ष्म विषय तत्वा का सुन्दर अकन यहाँ जिस कोमलता तथा चतुराई स हुआ है वह अन्यत्र नही हुआ। एक अन्य इतिहासन फास अपनी पुस्तक 'रास-माला' मे लिखते हैं कि इन मन्दिरो की खुदाई के काम म स्वाभाविक, निर्जीव पदार्थों के चित्र बनाए गये हैं, जिनमे जीवनचर्या, नौका विहार, व्यापार और युद्ध के चित्र भी सम्मिलित हैं।

साथ ही इस पवत प्रदेश पर यज्ञेश्वर है, जहाँ तीन पुरानी मठियाँ हैं। यहाँ उन्हे कुआँरी कन्या का मदिर कहते हैं। कनरवल हैं—जहाँ महावीर स्वामी का मन्दिर है भगवान दत्तात्रेय का स्थान है, कृष्ण तीथ है और राम-गुफा है।

इन सबके अतिरिक्त यहाँ का आकषण स्थल है नक्की झील, जिसे कहते हैं देवताओ ने नख से खोदा था। दिन भर पास पडोस के धम स्थला की आराधना के बाद शाम को घाटी की सुगधित बयार के साथ नक्की सरोवर मे नाव पर घूमना आबू यात्रा की पहली और अतिम उपलब्धि है, जो राज स्थान गुजरात और मध्यप्रदेश के सलानियो को ही नहीं अपितु दूर देश के पयटको को भी पसद आती है।

आबू पवत ऐसा स्थान है जहाँ भगवान का आवास हुआ, भगवान कृष्ण का रहवास हुआ और अम्बरीष ऋषि ने तपस्या की। सूर्यास्त' बिन्दू क्रेग और रोबर्टस्पर आदि अनेक रोचक स्थानो की इस पवत नगरी को न जाने ऐसे कितने देव पुरुषो एव राजाओ का सान्निध्य मिला है, जिसके कारण यहा का प्रकृति प्रदत्त सौंदय चिरस्थाई बनता चला गया।

लोक साहित्य मे इस पवत धाम की महिमा नाना रूपो मे वर्णित है। लोक गीतो मे जहाँ इसके प्राकृतिक वैभव को गाया गया वहाँ लोककथाओ मे इसके पौराणिक आख्यानो को स्थान स्थान पर चर्चा का आधार बनाया गया। मार बोले रे मलजी आबू रे पहाडाँ मे' एक ऐसा ही राजस्थानी लोक गीत है जा इस पवत की सप्तभगी सुषमा को अपने मे सँजोये है।

इसके साथ साथ काव्य की अन्य विधाओ मे भी आबू का वर्णन हमे पढने का मिलता है। राजस्थान के प्रकृति सौंदय काव्य के अन्तगत कहा गया है।—

टूकै टूकै केतकी झिरण झिरणे वाय।
अरबुद की छवि देखता और न आवे दाय।।

राजस्थान की अरावली पवत शृखला का प्रतीक आबू कथा धारा का ऐसा सगम हैं जहा जाकर मन पावन हो जाता है। जहाँ आबू के ऊँचे शिखरों

से राजस्थान और गुजरात के दूर तक फैले प्रदेशो को देखकर यात्रियो का मनोबल बढता है, वहाँ उस दिन की याद भी आती है जब यहाँ की सुविज्ञ जनता ने जैन, बौद्ध और हिन्दू धम के जय घोष सुने होगे और राजाओ की विक्रमावलियो को सराहा होगा। पुरातत्व एव धम दशन का यह पवत तीथ 'आबू' शिव पावती, आग्निनाथ, नेमिनाथ, गौतम और वशिष्ठ, उन सबकी रगभूमि है जिनकी कीर्ति कभी धूमिल नही पडती।

अमृतसर

कहते हैं हर नगरी की अपनी गाथा होती है, अपनी सस्कृति होती है, अपनी विशेषता होती है। उत्तर भारत की धमपुरी इसका अपवाद नही हो सकती। भारत की राजधानी दिल्ली से 483 किलोमीटर उत्तर पश्चिम मे व्यास नदी के किनारे सिक्खो की यह पवित्र तीर्थिका अवस्थित है, जहा आज भी आदिग्रन्थ मूलरूप मे सुरक्षित है तथा नित्य पढा जाता है। जिस तरह मुसलमानो के लिये मक्का और हिन्दुओ के लिये बनारस का माहात्म्य है, उसी प्रकार सिक्खो के लिये अमृतसर का।

कहते हैं गुरु नानक का इस भूमि पर निवास रहा। अमृतसर का प्रारम्भिक प्रारूप तो चौथे धमगुरु रामदास ने तैयार किया, लेकिन कृत्रिम तालाब के बीच *'स्वण मन्दिर' की स्थापना सतरहवी शताब्दी मे इनके पुत्र* और पाचवें गुरु अजुनदेव ने की। कुछ लोग इस मन्दिर को हरमदर' कहत हैं तो कुछ दरबार साहब। किन्तु स्वण मन्दिर के रूप मे यह देश विदेश मे भली भाँति जाना जाता है। कहते हैं अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली ने एक बार इस मन्दिर को नष्ट कर दिया था लेकिन इसका पुनर्निर्माण खालसा वीरो के साहस एव धम के प्रति प्रगाढ प्रेम का परिचायक है। अमृतसर मे यो तो कोई 13 गुरुद्वारे हैं लेकिन स्वण मन्दिर इनमे मुख्य है। चौकोर सरोवर के मध्य 65 फुट लबे और इतने ही चौडे चबूतरे पर स्थित यह भव्य गुरुद्वारा है, जिसमे कला एव धम वैभव की झांकी स्पष्टतया देखी जा सकती है। आगे चलकर स्वणमन्दिर के विकास मे प्रसिद्ध सिक्ख महाराजा रणजीतसिह का योग रहा, जिन्होंने हरमन्दर, दरबार साहब या स्वणमन्दिर के गुम्बदो को स्वर्ण से मडित किया। यह मन्दिर तीन मजिल का है क्योंकि

यह सरोवर के बीचो बीच स्थित है, अत भक्तो के मुख्य भूमि से मन्दिर के भीतर तक जाने हेतु सु दर कलाकारी से युक्त पुल बना हुआ है। दूसरे हिन्दू मन्दिरो की भाति स्वण मन्दिर तीन तरफ से ब द है तथा पूव दिशा की ओर से खुला है। मन्दिर के भीतर, मध्य मे पवित्र ग्र थ साहिब स्थित है जा सुनहरी रेशमी कपडे से ढँका रहता है। मन्दिर के पास ही है प्रसिद्ध अकाल तख्त, जहा कि गुरु अपने अनुयायियो को दिशा एव दृष्टि प्रदान करते है।

आज भी यह स्थान सिक्खा की धमचर्या का केन्द्र है। यही पर मन्दिर को अर्पित भक्तो की अमूल्य सम्पत्ति एव ऐतिहासिक अस्त्र तोशाखाना मे सुर क्षित है। स्वण मन्दिर ने इतिहास के कई अभिशाप झेले। नादिरशाह से लेकर अग्रेजो के राज्य काल तक कई बार इस मन्दिर को क्षति पहुँचाने की कोशिश की गई, लेकिन अमृतसर और अकालतख्त को कोई भी नही मिटा सका तभी तो हर विजय पर सिक्ख पथ कहता है—'वाह गुरु की फतह।'

किसे पता था कि गुरु रामदास द्वारा सात सौ रुपये मे खरीदी ग्रामभूमि आगे चलकर अमृतसर के रूप मे बदल जायेगी। यहा कुछ विद्वानो का यह भी मत है कि सम्राट अकबर ने गुरु को यह भूमि भेंट की थी। स्वणमन्दिर मे नगे सिर नही जाया जाता पर नगे पैर जाया जाता है। मदिर की दीवारो पर पश पर लगर मे जहाँ कि भक्त को मुफ्त भोजन मिलता है काम करत अनगित अमीर एव गरीबो को हम देखते है, जो इस रूप मे सेवा को पुण्य समझते हैं। मन्दिर की सगमरमरी दीवारो पर गुरु ग्र थ साहिब के प्रेरक अश एव कलाचित्र तो देखते ही बनते हैं। इतिहासन फर्गुसन के अनुसार स्वणमन्दिर की व्याख्या निसदेह प्रशसनीय है, जब कि एन्डूज हक्सले के शब्दा मे सिक्खा का स्वणमन्दिर सम्पूण रूप से शुद्ध है तथा कला एव धम गत पवित्रता मे बेजोड है। स्वणमन्दिर के अतिरिक्त अमृतसर का दूसरा ध्यानाकपक स्थान है जलियावाला बाग, जहाँ पर कि अग्रेज जनरल डायर न निहत्थे देशभक्तो को गोलियाँ चलाकर मारा था। धर्म तीथ एव राष्ट्रीय तीथ की इस भूमि म पाँच ऐसे स्थान हैं जहाँ स्नान कर समस्त पापो से मुक्त हुआ जा सकता है। ये पाँच सरोवर हैं—स्वणमन्दिर का अमृतसर सतोपसर रायसर, विवेकसर और कमलसर या कालसर। स्वणमन्दिर के चारो ओर बना सरोवर ही अमृतसर कहलाता है जिसके कि नाम पर अमृतसर शहर का नाम अमृतसर हुआ।

कथा है—श्रीराम के अश्वमेघ यज्ञ का घोडा लव, कुश ने पकड लिया, तब घोर युद्ध छिड गया। लव, कुश ने युद्ध मे भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का ता मूर्छित कर दिया पर श्रीराम रथ मे मूर्छा का बहाना कर पडे रह। अन्त मे लव, कुश ने इन्द्र से अमृत प्राप्त किया और उस अमृत से सबको

सचेत किया। शेष अमृत वही भूमि मे गाड दिया गया। त्रेतायुग मे जहाँ अमृत गाडा गया था, वही कलियुग मे गुरु रामदास ने सरोवर खुदवाया, जहाँ कि नहाने पर एक कोढी का कोढ दूर हो गया, अत इस तीर्थ का महत्व तभी से स्थापित हुआ।

अत अमृतसर किसी अन्य शहर की भाँति नही है, अपितु वह धर्म एव सस्कृति का उद्बोधन केन्द्र है।

अजन्ता

"येल लें अनुभूति की सचित कनक का जो इकटठा भार,
ऐसे कहाँ हैं।
अस्तित्व की इस जीर्ण चादर की इकहरी बाट के यह तार।"

निश्चय ही अनुभूति और अस्तित्व की चित्रावली यदि हम आज देखना चाहें तो सहसा हमारे एलोरा, एलीफैण्टा, महाबलीपुरम, बाघ और अजन्ता की गुफाओ के दृश्य उभरने लगते हैं। भारतीय कला के इतिहास तथा इसके प्रारम्भ और विकास के सम्बन्ध मे रघुवश एव उत्तररामचरित मे बहुत कुछ लिखा गया है, साथ ही प्राचीन भारतीय अवशेषो से भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उस समय सभी के घरो की दीवारो पर चित्र अकित रहते थे, जो पशु पक्षी और मनुष्य की आकृतियो वाले थे। प्राचीन भारत की चित्रकारी का वास्तविक स्वरूप अजन्ता की गुफाओ मे पाया जाता है। अजन्ता जाने के लिये बम्बई से औरगाबाद होकर जाया जा सकता है, जहाँ से कि ये 108 किलोमीटर की दूरी पर हैं। ऐतिहासिक नगर औरगाबाद के अतिरिक्त अजन्ता देखने हेतु जलगाँव होकर भी जाया जा सकता है।

अजन्ता की गुफाओ के चारो तरफ घना जगल है, पहाडी श्रृखलाएँ हैं और यही पास मे बहती है—वघोरा नदी। आपको आश्चर्य होगा कि अजन्ता की गुफाएँ 250 फीट ऊँची पहाडी मे स्थित हैं, जो अर्धगोलाकार बहुत दूर तक चली गई हैं। या अजन्ता की गुफाओ के निर्माण काल के सम्बन्ध मे पुरातत्ववेत्ता एक मत नही हैं, फिर भी यहाँ की कला के आधार पर य माना जाता है कि इनका निर्माण ईसा से 200 वर्ष पूर्व का है। पत्थरो का तराश कर अजन्ता मे जिस साकार कला को अपनाया गया है वह भगवान बुद्ध के आध्यात्मिक जीवन की सम्पूर्ण झाँकी है। यहाँ कुल 30 गुफाएँ हैं, जो

दो भागो मे बाँटी जा सकती हैं, एक चैत्य और दूसरी विहार। बौद्ध धम के महायान और हीनयान मतो के विश्वासो पर अंकित चित्र यहाँ मुख्य हैं। पहाड की भीतर से काटकर इतनी कलात्मक मूर्तियाँ बनाने मे न तो कहीं जोड है और न ही कही कुरूपता। यहाँ दीवारा पर बने चित्रो के विविध रग सैंकडो वर्षों के बाद आज भी पूरी तरह सजीव है। गुफाओ की दीवारें, छतें और खम्भे सभी सुदर चित्रकारी से चित्रित है। साथ ही देखने योग्य यह है कि इन सम्पूण गुफाओ को इस तरह बनाया गया है कि इनका कोई भी कोना सूय के प्रकाश से वचित नही रह पाता। इस सूझ बूझ पूण काय से हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि कला तकनीक पहले कितनी विकसित अवस्था मे थी। अजता मे बने फ्रेस्को प्रणाली के चित्र यूनान, रोम और चीनी शली से प्रभावित हैं।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० वी० ए० स्मिथ, डा० फर्गुसन और ह्वनसाग के अनुसार—'अजता के चित्र हर रूप मे सुदर हैं। ये इतने पूण, रेखाकित रूप मे इतने विविध, परम्परा की गतियो मे व क्रियाओ मे इतने दृढ व अनुकूल और रग म इतने सुदर हैं कि इन्हे विश्व के सवश्रेष्ठ चित्रा की गिनती मे रखा जा सकता है।"

अजन्ता की कला, जीवन की सूक्ष्मता की झाकी प्रस्तुत करने वाली कला है जिसमे चित्रकार के व्यापक दृष्टि बोध का पता लगता है। यहाँ नारी के पूण सौंदय चित्र सारे विश्व को आकर्षित करते है। सत्य शिव सुदरम् का अद्भुत सम वय हैं अजता की गुफाएँ। जिस प्रकार बाघ की गुफाएँ जन वादी प्रभाव की साक्षी हैं उसी प्रकार अजता की गुफाएँ सामती युग प्रभाव की परिचायक हैं। सभी गुफाओ के चित्र की सक्षिप्त जानकारी तो यहाँ दना सम्भव नही है लेकिन गुफा सख्या 1, जिसमे फारसी प्रभाव के रोमाटिक चित्र है गुफा सख्या 2, जिसमे अलकृत नारी—छवि के चित्र हैं, गुफा सख्या 9 जिसमे साँची कला युग के चित्र है, गुफा सख्या 10, जिसमे—कचुकियो स घिरे राजा और भगवान बुद्ध के चित्र हैं, गुफा सख्या 16 जिसमे मरती हुई राजकुमारी का दश्य है, गुफा सख्या 17 जिसमे–बुद्ध धम का जीवन चक्र अकित है गुफा सख्या 19, जिसमे बौद्ध भिक्षुओ के बुद्ध आराधना के चित्र हैं प्रमुख रूप से देखन योग्य है।

अजता भारत का एक कला केंद्र ही नही है, यह राष्ट्र की महान चित्र शाला है। इसमे लगभग एक सहस्र वष की भारतीय सस्कृति चित्रो के रूप मे उतरी है इसीलिये ये एक जीता जागता इतिहास है।

अजमेर

अजमेर, एक नामावाली बहुरूपी नगरी है। मुसलमानो के लिये अजमेर शरीफ और हिन्दुओ के लिये अजमेर ससार की पवित्रतम नगरी मानी जाती है। मुसलमानो के लिये जो मान सम्मान मक्का और मदीना का है, वही अजमेर का है। राजस्थान के बीचो बीच अवस्थित अजमेर राजधानी जयपुर से 132 किलोमीटर है। सुरम्य पहाडियो से घिरा अजमेर राजस्थान का पुराना राज्य है। कहते हैं सातवी शताब्दी मे चौहान राजा अजयपाल ने इसे बसाया था। यो अजमेर का नाम 'अजयमेरु' से निकला है जिसे कि आज तारागढ कहते हैं। धार्मिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक एव राजनीतिक परिवर्तनो की दृष्टि से अजमेर भारत का प्रमुख नगर रहा है। 800 फुट ऊँचे शिखर वाली तारागढ पहाडी की तलहटी मे बसा भव्य नगर अजमेर का अतिम हिन्दू राजा था पृथ्वी राज चौहान। ये वही पृथ्वीराज चौहान हैं जिनके दरबार मे राजस्थानी साहित्य के गौरव ग्रथ 'पृथ्वीराज रासो' के सजक महाकवि चदवरदाई रहते थे, तथा जिन्होंने कन्नौज के राजा जयचन्द की लडकी सयोगिता का स्वयवर से अपहरण किया था। कहते हैं मुस्लिम बादशाह मुहम्मद गोरी को बीस बार युद्ध मे हराने के बाद पृथ्वीराज चौहान इक्कीसवी बार सवत 1193 मे कैद कर लिया गया था। इसी घटना से भारत म मुस्लिम राज्य का प्रारम्भ, इतिहास बताता है। ये भी वृत्ता त उपलब्ध है कि अजमेर ने तैमूरलग के आक्रमण को देखा है। साथ ही मेवाड के राणा कुम्भा द्वारा किराये पर यहाँ का राज्य दे देने का उल्लेख भी उपलब्ध है। मालवा के मुस्लिम शासको से इसे मारवाड के मालदेव राठौड ने मुक्त किया तथा आगे चल कर यह अकबर महान् के साम्राज्य का अग भी बना। गुजरात एव सम्पूण राजस्थान पर सैनिक नियत्रण की दृष्टि से अकबर ने इम नगर को विशेष महत्व प्रदान किया था। अग्रेजो से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अजमर मेरवाडा' नाम से यह राज्य रूप म केन्द्र शासित प्रदेश रहा, लेकिन अब यह नवीन राजस्थान के प्रमुखतम विकसित जिला मे से एक है।

अजमेर मे सबसे महत्वपूर्ण स्थान है—ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह। ईरान के सीस्तान प्रदेश का यह फकीर मुहम्मद गोरी के साथ अजमेर आया, और सदैव के लिये यहाँ बस गया। सूफी स तो के 'आफताबेहिन्द' ख्वाजा

मुइनुद्दीन चिश्ती औलिया के धर्मोपदेश से उपकृत अजमेर म उनकी यादगार मे हर साल 6 राजा उम मुबारक मनाया जाता है। अल्लाह के प्रतिनिधि रूप मे पूज्य ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की पाक जियारत माह मे हिंदू, मुसलमान, सिक्ख सभी आकर सजदा करते है, दुआएँ माँगते हैं और कहते हैं बिगडी हुई बना दे अजमेर वाले ख्वाजा। जिस ख्वाजा की मुकद्दस दरगाह म सम्राट अकबर आगरा से नग परा चलकर आये उसी ख्वाजा की नगरी म अब भी लाखो देश विदेश क धर्मानुरागियो की भीड का मेला देखत ही बनता है।

दरगाह के विस्तृत क्षेत्र म माड के सुल्तान गयासुद्दीन खलजी द्वारा बनवाया गुम्बद सम्राट अकबर द्वारा बनवाई अकबरी मस्जिद जहाँगीर द्वारा ला गई देग निजाम हैदराबाद द्वारा बनवाया उस्मानी दरवाजा, शाहजहाँ द्वारा बनवाया शाहजहानी दरवाजा जामामस्जिद तथा महफिलखाना और बुलन्द दरवाजा ख्वाजा की भक्ति गाथा के साक्षी है। उस के अतिम दिन कुल की रस्म अदा होने पर देगो का लूटना और रात रात भर कव्वालियो की गूज अजमेर की विशेषता है। दरगाह म य वही देगें हैं, जिनमे कभी मुगल साम्राज्ञी नूरजहाँ ने भी खिचडी पकाकर गरीबो म वितरित की थी।

अजमेर म तारागढ पहाडी के नीचे ही एक इमारत है जिसे अढाई दिन का झोपडा कहते हैं। यह हिन्दू वास्तु शिल्प का प्राचीनतम नमूना है जो मूर्तियो की सूक्ष्म खुदाई से युक्त है। कहते है यह मूल रूप मे तो सस्कृत कॉलेज के लिए बनाया गया था लेकिन मोहम्मद गोरी के हुक्म से इसे अढाई दिन मे बनाकर खडा किया अत इसे अढाई दिन का झोपडा कहते हैं लेकिन 18 वी शताब्दी के उल्लेखानुसार ख्वाजा का उस मनाने को जाते हुए फकीर रास्ते मे यहीं ठहरते थे तथा वह उस ढाई दिन चलता था अत इसका नाम अढाई दिन का झोपडा पडा।

अजमेर के बीचो बीच म स्थित है अकबर का किला या मैगजीन, जिसे अकबर ने अजमेर यात्रा के दौरान ठहरने हेतु बनवाया था। यह वही स्थान है जहाँ इगलैण्ड के राजा जेम्स प्रथम के राजदूत सर थोमस रो न सम्राट जहाँगीर क सम्मुख 10 जनवरी 1616 को अपने प्रमाण पत्र पश किये थ।

अजमेर का एक और दर्शनीय स्थल है—अनासागर जिसे कि पृथ्वीराज चौहान के पितामह अरणोराज या अणाजी न बनवाया था। कहते हैं अणाजी ने एक युद्ध मे यहाँ शत्रुओ को भारी सख्या मे मार डाला था और इस भयकर रक्तपात का धोने क लिए उन्होने एक नदी पर बाँध बना कर इसे पानी स भर लिया। यहीं जहाँगीर न आगे चलकर दौलतबाग बनवाया तथा शाहजहाँ न सगमरमर क पाँच सुन्दर मण्डप अर्थात बारादरी बनवायी।

अजमेर स ही 11 किलोमीटर दूर है—भारतीय धर्म सस्कृति का आधार

तीर्थ पुष्कर, जहाँ कि पद्मपुराण के अनुसार भगवान ब्रह्मा ने यज्ञ किया था, तथा जहाँ प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा को बडा मेला लगता है।

धर्म दर्शन और इतिहास की नायिका नगरी अजमेर, समय का वह घटना-क्रम है जिसे पढकर हर भारतीय अपने को भाग्यशाली समझता है। आप भी कभी, अजमेर आइये ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर सजदा करने के लिये ही या पुष्कर स्नान के लिये। आपको एक अभूतपूर्व सुख और शान्ति मिलेगी यहाँ आकर।

अमरनाथ

कश्मीर के विश्व प्रसिद्ध संस्कृत कवि कल्हण, अपनी प्रसिद्ध कृति 'राज-तरंगिणी' मे लिखते हैं—

दुग्धाब्धिधवलं तेन सरो दूरगिरौ कृतम्।
अमरेश्वरयात्रायां जनैरद्यापि दृश्यते॥

अर्थात्—दुग्ध धवल पर्वतो के मध्य अमरनाथ का शिव तीर्थ दर्शनीय है।

अमरनाथ का यह पावन क्षेत्र कश्मीर राज्य मे है। हिमप्रदेशीय यात्राओ मे अमरनाथ की यात्रा सबसे छोटी है। यही कारण है कि अमरनाथ की यात्रा मे सर्वाधिक तीर्थ यात्री आते हैं। अमरनाथ की मुख्य यात्रा तो श्रावणी पूर्णिमा को होती है या फिर आषाढ की पूर्णिमा को, किन्तु इन्ही तिथियो मे यात्रा हो यह आवश्यक नही है। जुलाई के पहले सप्ताह से अगस्त के अन्त तक प्राय तीर्थ यात्री पहलगाँव होकर जाते ही रहते है।

अमरनाथ की यात्रा मे पहलगाव से चन्दनवाडी जाना पडता है, फिर वहाँ से शेषनाग। शेषनाग झील देखने के पश्चात यात्री पंचतरणी जाते हैं। यह रास्ता हिमाच्छादित रहता है। मौसम के परिवर्तन से कभी कभी इस यात्रा मे यात्रियो का जी भी मिचलाने लगता है, पर खटाई चूसने पर इस असुविधा से मुक्ति मिल जाती है। पंचतरणी से ही साढ़े तीन मील चलकर अमरनाथ की मुख्य भूमि आती है—जहाँ कि यात्रियो के ठहरने का कोई स्थान नही है। होता यह है कि तीर्थ यात्री पंचतरणी से प्रात जलपान कर अमरनाथ जाते हैं तथा सध्या दर्शन कर लौट आते हैं। इस प्रकार पहलगाँव से अमरनाथ तक की यह तीन दिन की पैदल यात्रा, समुद्रतल से 16 हजार

फुट ऊँचाई की मात्रा है। यहाँ पर्वत मे 60 फुट लम्बी, 25 से 30 फुट चौड़ी और 15 फुट ऊँची प्राकृतिक गुफा है, जिसमे बफ के प्राकृतिक पीठ पर बफ से बना प्राकृतिक शिवलिंग है। बफ का यह शिवलिंग जाडा मे स्वत बनता है, और धीरे धीरे पिघलता भी जाता है पर कभी सम्पूण नहीं मिटता। अमरनाथ गुफा मे एक गणेशपीठ तथा एक पावतीपीठ भी हिम से बनता है। यह पावतीपीठ भारत क 51 शक्तिपीठो मे स है, कहते हैं यहाँ कभी सती का कण्ठ गिरा था।

अमरनाथ गुफा के चारो तरफ मीलो बरफ ही बरफ है। गुफा के नीच अमर गगा का प्रवाह है, जिसम स्नान कर यात्री गुफा के शिवलिंग के दशन हतु जात हैं। गुफा म जहाँ-तहाँ बूद-बूद करके जल टपकता रहता है, जिसक लिए *कहा जाता है कि गुफा के ऊपर पवत पर श्री रामकुण्ड है और उसी का जल* गुफा मे टपकता है जिसे यात्री प्रसाद स्वरूप लेते है। गुफा मे अय कबूतर भा दिखाई देते है जिनके दशन को अति शुभ माना जाता है।

जिस प्रकार शिव के अय प्रसिद्ध तीथ हैं, उसी प्रकार अमरनाथ भी भारत म शिव शक्ति का प्रतिपादक केद्र है। उल्लेख मिलता है कि प्राचीन समय म कश्मीर घाटी झील के रूप मे थी, जा सती सरस कहलाती थी, यही आग चलकर कश्यप ऋषि द्वारा कश्मीर मडल के रूप म परिवर्तित की गई। यही कारण है कि कश्मीर की एक एक इच भूमि तीथ रूपा है। कहा भी है—

कश्मीरा पावनी तत्र राजा ज्ञेय शिवाशक ।

आज भी प्रतिवष शारदापीठ के शकराचाय के नतृत्व म श्रावण माह मे चाँदी की बडी छड या डण्ड एव शिव प्रतीक लेकर साधु नागा महत, सत बैरागी और सयासियो के साथ, राजकीय स्तर पर अमरनाथ यात्रा का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार पामपुर, अवतिपुर, वृजबिहार, अनतनाग, गौतमनाग मातण्ड मदिर अशमुकम, आदि अनक महत्वपूण स्थलो को देखत देखत अमरनाथ की यात्रा पूरी करने मे जो आनद आता है उसकी तुलना अय किसी से नही की जा सकती। अमरनाथ यात्रा, कश्मीर म शिव भक्ति के रूप का परिचायक है। कश्मीर का शवमत ही त्रिकामत कहलाता है जिसका उदय हम आठवी शताब्दी स मिलता है। इसी क तीन रूप ह अगम शास्त्र, स्प द शास्त्र और प्रत्याभिजन शास्त्र। इही की ध्वनि है शिव सूत्रा म, जिसे महश, त्रिमेश, उमश या अमयश के रूप म दोहराया गया है। एस शव तीथ अमरनाथ का यात्रा कर मनुष्य ही क्या, दवता भी अपने को ध य समझत है। जगाधर भट्ट की कुसुमाजलि' के अनुसार—हम ऐसे सर्वोच्च हिम रूप की आराधना करत है जो आत्मा को शक्ति और सद्बुद्धि प्रदान करता है।

ओसियाँ

राजस्थान क विपय म चर्चा करते समय मन मे बहुत सी बातें आती है। वीरता, त्याग और बलिदान की वे मारी कहानियाँ ज्यो की त्यो एक बार फिर से बोलने लगती हैं। जिन लोगो ने राजस्थान को केवल नक्शे पर ही देखा है वे शायद इस प्रदेश की मूल आत्मा के रग को न पहचान पायें। लोग कहते हैं कि राजस्थान एक रगिस्तानी प्रदेश है और जहां वर्पा का अभाव तथा अकाल का प्रभाव सदैव बना रहता है। लेकिन अभाव की इस स्थिति मे भी राजस्थान ने साहित्य, सस्कृति और कलात्मक मूल्यो को नये सदभ देने का महत्वपूण काय किया है।

वीरता के क्षेत्र मे जहां राजस्थान को भारत की पश्चिमी सीमा का प्रहरी माना जाता है, वहां भक्ति और कला के क्षेत्र मे अनुसधान का माध्यम भी। शताब्दियो पुराने निर्माण को देखकर पुरातत्ववेत्ता और दशक प्राय दग रह जाते है। उन्ह सहसा विश्वास नही हो पाता कि राजस्थान मे वास्तुकला का यह उद्भव रूप भी मडित हो सकता है।

आजकल राजस्थान मे मदिरो का माहात्म्य बहुत सीमा तक लोक विचार का विषय न बनकर मात्र पुरातत्व या पयटन का प्रतीक बन गया है। माउन्ट आबू रणकपूर, नाथद्वारा, ऋपभदेव, आमेर, बाडोली, एकलिगजी, पुष्कर, चित्तौडगढ, नागदा, देलवाडा, मडोर, किराडू, देशनोक, नीलकठ महादेव, लुद्रवा रामदेवरा, केशवराय पाटण, डिग्गी, ओसिया, महावीरजी और गलताजी के मदिर रचना और रूप मे राजस्थान के भक्ति आदोलन को बडी रोचकता से प्रतिपादित करते हैं। यह मदिर अलग अलग समय मे अलग अलग सप्रदाय द्वारा बनवाये गये। शैली और सपादन की दृष्टि से भी यह भक्तिगृह, मदिर निर्माण की भारतीय परम्परा को विभिन्न तथ्यो से जोडते हैं। साधारण दशक एव आराधक से लेकर इतिहास के वरिष्ठ अन्वेपक तक, सभी इन मदिरो की उप योगिता का अपना अपना मूल्य आंकते है।

राजस्थान के पश्चिमी सीमावर्ती जिले जाधपुर मे एक प्राचीन गाव है—ओसियाँ। जोधपुर से 58 किलोमीटर की दूरी पर स्थित ओसियाँ गाँव रल और सडक दोनो से जुडा है। ओसिया को इतिहास मे अकेश, उरकेश नवनेरी मलपुरपत्तन आदि कई नामो से सम्बोधित किया गया है। कुछ विद्वानो का

यह मत है कि ओसवाल बनियो का उत्पत्ति स्थान होने के कारण यह गाँव ओसियाँ कहलाता है। प्राचीन मारवाड राज्य और वनमान जाधपुर जिले क बहुचर्चित गाँव ओसियाँ मे प्राचीन मदिरो के भग्नावशेष यहाँ की पुरातन गाथा के एक मात्र आभरण हैं। यहाँ आठवी शताब्दी के बने कोई 16 हिंदू और जैन मदिर हैं, जिनमे शिव, विष्णु सूर्य, ब्रह्म, अर्धनारीश्वर हरिहर, नवग्रह दिक्‌पाल श्रीकृष्ण, महावीर और देवी के अनेक रूप की मूर्तियाँ दशन के महत्व की हैं। समय की धारा न मूर्ति और मदिर के बाह्य रूप को भले ही कम कर दिया हो पर इसमे छिपी अन्तशक्ति और चेतना अभी भी ज्यो की त्यो है। कला का मूल्य उसके दर्शक से और मूर्ति का मूल्य उसके आराधक से ही अनुमाना जाता है। पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार आठवी-नवी शताब्दी म राजस्थान की प्रतिहारकालीन पूव मध्ययुगीन कला के उल्लेख मे ओसियाँ के प्राचीन देवालय अत्यधिक महत्वपूण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। वास्तव मे गुजर प्रतिहार युग का राजनैतिक इतिहास तो बहुत मिलता है लेकिन उस समय की मूर्तिकला के विषय मे अधिक नही लिखा गया। ओसियाँ का हरिहर मदिर राजस्थान में अद्यावधि ज्ञात 'पचायतन' शैली का सवप्रथम मदिर है जिसम रचना की विविधता देखते ही बनती है। यहाँ मदिर के दाहिने वाले लघु देवालय क बाहरी भाग में एक बारह हाथो वाली देवी की प्रतिमा है, जिसका वाहन सिंह उसक पास बठा चित्रित है। देवी न नृत्यमुद्रा म शस्त्रायुध धारण कर रक्खे हैं। वे ऊपर के एक दाहिने हाथ से माँग निकाल रही हैं तो नीचे क बायें हाथ द्वारा पैर म नूपुर पहन रही हैं। इसम केश विन्यास की स्थिति पर गोलदपण की विद्यमानता न प्रतिमा के सौष्ठव म उत्तरोत्तर वृद्धि की है।

इसी हरिहर मदिर के बाहरी अधिष्ठान क नीचे एक ताक मे बद्धाजलि व पद्मासनस्थ देव प्रतिमा जडी है। आयुध या हिंसक चित्रण क रूप का यहाँ सवथा अभाव है। चार सहायक मदिरो स युक्त यह मुख्य हरिहर मदिर, पचायत शैली का भव्य उदाहरण है जो खजुराहो मन्दिर समूह की भाति ही ऊची चौकी पर बना हुआ है। लकिन दूसरी तरफ इस मदिर के शिखर उडीसा शैली क प्रारम्भिक शिल्प को प्रकट करते है। हरिहर मदिर मे खुले स्तम्भ मडप हैं जिनका निचला भाग ढलवाँ और सु दर कलाकारी से युक्त है। हरिहर मदिर मे कला का शुद्ध रूप ही विशेषता का कारण है। प्रतिमा क परिप्रेक्ष्य मे हरिहर मदिर के पास ही त्रिविक्रम मदिर के पाश्व भाग म एक ओर चक्र पुरुष और दूसरी ओर शख पुरुष खडा है जो पूरी तरह योग नारायण भाव को अभिव्यक्त करती है।

ओसियाँ के इन मन्दिरो के बाहरी भाग म श्रीकृष्णलीला के कतिपय

सदभ उत्कीर्ण है, जिनसे इस युग में कृष्ण भक्ति के माहात्म्य पर प्रकाश पडता है । अभी तक यह तय नही हो पाया है कि ओसिया मे इस विचारधारा को बढावा कैसे मिला । यहाँ रामायणकालीन एक भी फलक नही है जबकि गुजर और प्रतिहार तो भगवान राम के छोटे भाई के वशज कहलाते हैं ।

इसी तरह ओसियाँ मे एक प्राचीन सूय मदिर है, जो यहाँ क मदिर समूह में सबसे अधिक आकर्षक है । इसका मुख्य प्रवेश द्वार दो ऊँचे स्तम्भो से युक्त है जो पूरी तरह पारम्परिक सरचना का आभास देता है । यह मदिर भी पचायतन शैली का है, जिसके चार सहायक मदिर सालनुमा परकोटे से जुडे हैं । यह परकोटेनुमा घेरा यात्रियो के विश्राम हेतु उपयोगी रहता है । सूय मदिर के स्तम्भो की फूलपत्ती वाली बनावट देखते ही बनती है । प्रतिहार काल मे इस तरह की स्तम्भ सज्जा शोध के अनुसार सकेत का विषय भी है । इसम गभगृह से द्वार पर दोनो ओर चतुर्बाहु आकृतियाँ बनी हैं जिनमे श्रीकृष्ण और बलराम का अकन क्रमश महत्वपूण है ।

ओसियाँ मदिर समूह का पूणतम उदाहरण यहा का जैन मदिर है जो भगवान महावीर की प्रतिमा से युक्त है । इसे देखकर लगता है शायद यह मदिर भी सवप्रथम आठवी शताब्दी मे बना हो और फिर उसमे कुछ परिवतन हुए हो । जैन मदिर के मडप, स्तम्भ और तोरण अर्थात प्रवेश सर्वाधिक कला वैभव के साक्षी है जो हम पूव गुप्तकाल की याद दिलाते है । इसी ढग का मदिर हम ग्यारसपुर मे भी देख सकते हैं ।

ओसियाँ के मन्दिरो मे दो अन्य मदिर भी परिचय योग्य हैं—जैसे पिप्पलाद माता का मदिर और सचिया माता का मदिर । ये मदिर आठवी शताब्दी के तो नही हैं पर बारहवी शताब्दी की बनावट वाले अवश्य लगते हैं । ऊँची पहाडी पर परकोटे से घिरे सचिया माता के मदिर पर आसपास के लोग बच्चो का मुडन सस्कार कराने आते हैं । ओसियाँ के मदिरो के पास ही एक बडी बावडी है जो प्रतिहार कालीन कला विकास का ही एक अग ।

राजस्थान मे पुरातत्व के पृष्ठ पर ऐसे अनेक मदिर हैं जिनके माध्यम से हम भारत की प्राचीन सस्कृति और सभ्यता को जान सकते हैं । रेत की लहरो पर कला के चरण यदि आप कभी भी देखना चाह तो राजस्थान स बढकर शायद ही कोई राज्य हो ।

उज्जैन

स्कंदपुराण मे उल्लेख आता है कि जहां भगवान महाकाल हैं और शिप्रा नदी है उस उज्जयिनी मे भला किसे रहना अच्छा न लगेगा। महानदी शिप्रा मे स्नान करके जो कठिनाई से मिलता है उसे महाकाल के दर्शन पर मृत्यु की चिंता नही रहती। कीट या पतंग भी यहां मरने पर रुद्र का अनुचर होता है।

ऐसी तीर्थभूमि उज्जैन का विवरण हमे भारतीय धर्म एवं दर्शन साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। कनकश्रृंगा कुशस्थली, अवन्ती, उज्जयिनी, पद्मावती, कुमुद्वती अमरावती और विशाला नाम से उल्लिखित उज्जैन नगरी शिप्रा नदी के किनारे बसी है। इस स्थान को पृथ्वी का नाभिदेश कहा गया है। भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंगो मे महाकाल लिंग यहीं है और इक्यावन शक्ति पीठो मे एक पीठ भी। भारतीय ज्योतिष शास्त्र मे देशांतर की शून्य रेखा उज्जैन से प्रारम्भ हुई मानी जाती है। साथ ही यह सप्तपुरियो मे एक पुरी है। जहां बारह वर्ष मे कुम्भ का विश्व प्रसिद्ध मेला लगता है। उज्जैन वह स्थान है जहा द्वापर युग मे श्रीकृष्ण बलराम ने महर्षि सान्दीपनि के आश्रम मे शिक्षा पाई, जहां उदयन स्वप्नवासवदत्ता की प्रेम कथा ने जन्म लिया जहां धनवन्तरी, कालिदास, भास, भर्तृहरि, वररुचि, वराहमिहिर तथा बाणभट्ट आदि का कार्यक्षेत्र रहा, जहां गाथा प्रसिद्ध राजा भोज, विक्रमादित्य और अशोक महान का गुण गौरव बढा और जहां हिन्दू मुस्लिम बौद्ध जैन, तान्त्रिक सिद्ध, कापालिक तथा अन्य मत मतांतर के लोगो ने खुलकर खेलखेला।

भगवान बुद्ध के समय मे राजगृह से अवन्ति के मार्ग पर उज्जयिनी प्रमुख विश्राम स्थल के रूप में माना जाता था। पतंजलि के महाभाष्य मे कहा गया कि यदि कोई उज्जयिनी से प्रातः रवाना हो तो सूर्योदय महिष्मति मे देख सकता है।

महाभारत के अनुसार इस अवन्ति नगरी के राजा के दो पुत्र विन्दा और अनुविन्दा थे जिनका कि कौरवो के समर्थन मे अक्षुणी सेना लेकर युद्ध लडने का उल्लेख भी मिलता है। महाकवि कालिदास का काव्य तो इस नगरी का परिचायक काव्य है, जिसमे पग पग पर यहां की कला, संस्कृति, रीतिरिवाज, वैभव एवं व्यापारिक महत्व की चर्चा की गई है। परमार, गुप्त और शक राजाओ की राजधानी उज्जैन भारत की ऐसी गाथा नगरी है,

जहाँ का इतिहास सस्कृति की नई सम्भावनाओ के माग प्रशस्त करता है। महाकाल मन्दिर, हरसिद्धि देवी, बड़े गणेश, गोपाल मन्दिर, गढकालिका भतृ हरि गुफा, कालभैरव, अकपाद, सिद्धवट, मगलनाथ आदि यहाँ के प्रमुख दर्शनीय घमस्थल हैं, जिनकी गुणगरिमा पर अलग से अध्याय लिखे जा सकते हैं। भगवान विष्णु के शरीर से उत्पन्न शिप्रा नदी के पावन घाटो पर जुडते मेले यहा की तीथयात्रा की शोभा बढाते है। राजस्थान के प्रसिद्ध राठौड वीर दुर्गादास की छतरी, स्वामिभक्ति की स्थाई प्रेरणा की प्रतीक है।

वम्बई से 670 किलोमीटर, इदोर से 53 किलोमीटर और भोपाल स 184 किलोमीटर की दूरी पर स्थित उज्जैन कोई चौदह वग किलोमीटर क्षेत्र मे बसी नगरी है, जिसकी जनसख्या लगभग डेढ लाख है। उज्जैन मे ही जयपुर के महाराजा जयसिंह द्वारा स्थापित जन्तर मन्तर अर्थात् वेधशाला है, जिसे लोग यत्नमहल भी कहते हैं। शिप्रा के मध्य टापू पर कालियादह महल है जिसे 15वी शताब्दी मे बनवाया गया था। हुमाय अकबर और नासिरु द्दीन के शिलालेख आज भी यहाँ की रोचक घटनाओ के मूक साक्षी हैं। इसी नगरी के बाहर है नवग्रहो का मन्दिर जहा शनिश्चरजी की पूजा होती है। भैरव का मन्दिर है जहा भैरव की मूर्ति शराब पीती है, अक्षयवट है जिसे कहते हैं सम्राट अशोक के पुत्र पुत्री ने लगाया था, और अब जहा लोग पितरो का श्राद्ध करते हैं तथा सिर घुटाते हैं। उद्योगशील, आज का उज्जैन भले ही पौराणिक उज्जयिनी अथवा अवन्तिका से भिन्न हो, पर यहाँ की हर काय प्रक्रिया पर आज भी विद्वता की छाप स्पष्टतया देखी जाती है। भारत मे ऐसे बहुत कम स्थान है जिनकी कि हम विस्तृत भूमिका लिख पायेंगे। पुराण उपनिषद या महाभारत मे ही उज्जैन नगरी का नाम नही मिलता अपितु, सातवी शताब्दी के यात्री ह्वेनसाग ने भी इसका राजामुज और भोज के सदभ मे स्मरण किया है।

> अप्यन्यस्मिन जलधर महाकालमासाद्य काले
> स्थातव्य ते नयनविषय यावदत्यति भानु।
> कुवन् सन्ध्याबलिपटहता शूलिन श्लाघनीया
> आमन्द्राणा फलमविकल लप्स्यसे गर्जितानाम्॥

इसी प्रकार जैन महापुराण मे लिखा है कि श्री ऋषभदेव की आज्ञानुसार इन्द्र ने भारतवष म पावन देशा की रचना की थी, उनमे अवन्ती अर्थात उज्जैन भी एक है। निश्चय ही वे व्यक्ति पुण्यलाभा हैं जो उज्जैन की शिप्रा नदी मे नहा कर महाकालेश्वर मदिर मे त्रिपुरासुर के सहारक शिव के दशन करते ह और पार्वती मन्दिर के सम्मुख अवस्थित दीप स्तम्भ पर दीप प्रज्ज्वलित करते हैं।

एकलिंगजी

राजस्थान मे उदयपुर ही एक मात्र ऐसा जिला है, जिसमे तीर्थों के विविध रूप हमे देखने को मिलते हैं। एक तरफ है प्रसिद्ध हल्दीघाटी का मैदान ता दूसरी तरफ एकलिंगजी का विख्यात मन्दिर। एक तरफ जन तीर्थ ऋषभदेव तो दूसरी तरफ है वैष्णव सम्प्रदाय का आराध्य धाम नाथद्वारा (परम्परा के ग्म गौरवमय आंगन मे रक्त से अल्पना सजायी गयी थी)।

यहाँ तहसील गिरवा के अ तगत है एक गाव 'कलाशपुरी जिसे इतिहास और आराधक एकलिगजी के नाम से अधिक जानत हैं। अरावली की सुरम्य पवतमालाओ के बीच बसा एकलिंगजी, उदयपुर से केवल 19 किलोमीटर की दूरी पर है। इस क्षेत्र मे कणेर नामक फूल सर्वाधिक होते है, जो कि एक लिगजी को भेंट किये जात है। प्राकृतिक सम्पदा से पूण यह क्षेत्र आयुर्वेद एव जीव विज्ञानियो के लिये विशेष महत्व का है।

कलाशपुरी स्थित एकलिंगजी उदयपुर महाराणा के इष्टदेव और राज्य के मालिक माने जाते हैं। महाराणा तो केवल इनके दीवान समझे जाते हैं। यही कारण है कि उदयपुर के महाराणा को राजस्थान मे 'दीवाणजी' के नाम से भी जाना जाता है। कहते हैं इस मन्दिर को बाप्पारावल ने आठवी शताब्दी मे बनवाया था, बाद मे इसी का जीर्णोद्धार 15वीं शताब्दी मे महाराणा कुम्भा ने करवाया। एकलिंगजी के मन्दिर मे काले संगमरमर की महादेवजी की चार मुहवाली विशाल मूर्ति है। यह चारो मुख ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूय के प्रतीक हैं। बहुत प्रारम्भ से भीलो द्वारा शासित कलाशपुरी एकलिंगजी की मूर्ति का शृगार प्रतिदिन विभिन्न रत्नो स किया जाता है। कहते हैं एकलिंगजी के मन्दिर मे पहले लिंग मूर्ति थी। डूगरपुर राज्य की तरफ से वह बाणलिंग इन्द्रसागर मे समाहित किये जाने के कारण यहाँ चतुमुख मूर्ति महाराणा राय मल ने स्थापित करवाई।

एकलिंगजी के मन्दिर के पास ही एक सुन्दर तालाब है और राणाकुम्भा का बनवाया विष्णु मन्दिर है जिसे भ्रमवश लोग मीरांबाई का मदिर कहत हैं। यहाँ इन्द्रसागर तथा एकलिंगजी के मदिर के आसपास कई छोटे छोटे मदिर हैं

जिनमे एक है वनवासिनी देवी का मन्दिर। कैलाशपुरी एकलिंगजी के पास ही है। मेवाण की पुरानी राजधानी 'नागदा' जो बाप्पारावल से पहले सात पीढियो तक यहा की राजधानी रही। यही ग्यारहवी शताब्दी का बना सास-बहू का मन्दिर, अदबदजी का जैन मन्दिर और बापारावल की समाधि है। एकलिंगजी के मन्दिर मे मूर्तिकला का सुन्दर काम इस स्थान के कलात्मक महत्व का प्रमाण माना जाता है। एकलिंगजी के मन्दिर मे आकर यात्रियो को सहसा खजुराहो के कन्दरिया महादेव मन्दिर, मदुरई के मीनाक्षी मन्दिर तथा वाराणसी के विश्वनाथ आदि मन्दिरो की याद ताजा हो उठती है जो पत्थर पर बारीक चित्रांकन के कारण आकर्षक एव अद्भुत है।

इस गाव मे अधिक सख्या मे 'भील' जाति के लोग रहते है जिनके मकानो को 'भीलदास' के नाम से पुकारा जाता है।

एकलिंगजी जाने के लिये नवोदित अहमदाबाद—उदयपुर रेलमार्ग, मारवाड जक्शन—उदयपुर रेलमार्ग तथा उदयपुर से देसूरी सडक के बीच चारभुजा, कांकरोली और नाथद्वारा के दर्शन कर पहुँचा जा सकता है।

'एकलिंगजी माहात्म्य' के अनुसार, सतयुग मे एक बार देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। इसी ब्राह्मण हत्या का पश्चात्ताप अपने गुरु वृहस्पति की आज्ञा से इन्द्र ने यहाँ किया था।

त्रेतायुग मे कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की रक्षा इन्ही एकलिंगजी ने की थी। द्वापर युग मे कहते हैं जब जनमेजय ने सर्पयज्ञ किया तब सारे सर्प तो जल कर मर गये पर उनका मुखिया सर्प जान बचाकर यहाँ भाग आया और कुटिला-कुण्ड मे रहने लगा। ऐसा कहा जाता है कि अभी तक इस क्षेत्र मे कोई भी सर्प के काटने से नही मरा। कलियुग मे नाथमतीय हरित ऋषि ने यहाँ भगवान शिव की आराधना की जिसे फिर बाप्पारावल ने एकलिंग मन्दिर का स्वरूप प्रदान किया। इस मन्दिर की पूजा पहले नाथ मतवाले ही करते थे पर सवत 1687 के बाद महाराणा जगतसिह ने यह व्यवस्था ब्राह्मणो को सौप दी।

ऐसे शक्तिशैव एकलिंगजी का मन्दिर समस्त भारत मे व्याप्त शैवमत का प्रबल पोषक है। जिसके दर्शन कर लोग अपने को धन्य समझते हैं।

ऐलीफेंटा

भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक तकसगत, सक्षम और पावन अभिव्यक्ति कहीं हो सकी है तो वह 'ऐलीफेंटा की गुफा' स्थित शिव महेश्वर की विख्यात आध्यात्मिक त्रिमूर्ति मे हुई है । अजन्ता और ऐलोरा की भाँति यहाँ भी पत्थरो पर इतिहास की पुनरावृत्ति की गई लगती है । भारत मे दो-चार चित्ररूप तो ऐसे हैं जिन्ह प्राय सभी ने देखा है जैसे सारनाथ वाला अशोक स्तम्भ, मदुरई वाले नटराज और ऐलिफेंटा की त्रिमूर्ति । यही त्रिमूर्ति भारतीय डाक तार विभाग द्वारा प्रकाशित पोस्ट काड पर भी अंकित रह चुकी है । आठवी शताब्दी की इस कलाकृति मे बीच का मुख सदा प्रभासित तत्पुरुष सदाशिव' का है दाहिना मुख 'उग्र' भृकुटी ताने हुए तथा वैराग्य व विनाश की भावना से उद्धत अघोर भैरव' का है और बाँया मुख शिव की संगिनी आभूषण युक्त उमा का है । शिव की विराट कल्पना इस त्रिमूर्ति मे समाहित है, जिससे सत्य शाश्वत और अनन्त के कारण असत्य, नश्वर और सीमित का बोध होता है । एक समय था जब ऐलीफेंटा की त्रिमूर्ति गधार, तुर्किस्तान और कम्बोडिया मे सुपरिचित थी ।

ऐलीफेंटा की गुफा बम्बई बंदरगाह से 10 किलोमीटर दूर पूरब दिशा की ओर एक टापू पर है । दो पहाडियो के मध्यभागो मे अवस्थित, लावा चट्टानो को काटकर बनायी गयी गुफाओं के अतिरिक्त यहाँ वह शिव मन्दिर है जिसमे महेश मूर्ति या त्रिमूर्ति विद्यमान है । इस द्वीप का नाम ऐलीफेंटा इसलिये हुआ कि यहाँ प्रारम्भ मे दक्षिण दिशा क आगमन स्थान पर पत्थर का हाथी बना हुआ था जो फिर सन् 1864 मे बम्बई के विक्टोरिया बाग मे स्थापित कर दिया गया । इस द्वीप पर कोई आठ गुफाएँ है, जो पूणतया शिव अर्थात महादेव को समर्पित हैं । प्रधान और पहली गुफा 10 फुट चौडी और 18 फुट ऊँची है । इसकी छत चट्टान को काटकर बनाये गये खम्भा पर टिकी है । इन खम्भा पर द्वारपाला की विशालकाय मूर्तियाँ उत्कीण है । यही 20 फुट ऊँची वह त्रिमूर्ति अर्थात महेशमूर्ति स्थापित है जिसके मस्तक 4 5 फुट लम्बे और बडे ही कलात्मक ढग से निर्मित हैं । एक मूर्ति के हाथ मे नाग मस्तक पर मानव खोपडी और एक शिशु है । इस त्रिमूर्ति के पास ही अधनारीश्वर की 16 फुट ऊँची मूर्ति है । दाइ ओर कमलासीन चतुमुख ब्रह्मा की मूर्ति है

और बाइ ओर विष्णु की। दूसरी ओर के गुहा गृह मे शकर पावती की कई मूर्तियाँ उत्कीण हैं जिसमे सबसे विशाल है शकर की ताण्डव नृत्य मूर्ति। यहाँ की त्रिमूर्ति को कुछ लोग ब्रह्मा, विष्णु और शिव की मूर्ति मानते आये है, पर वस्तुत यह मात्र शिवपरिवार की मूर्ति है। प्रमुख गुफा की अन्य आकषक मूर्तियाँ है—शिव पावती का विवाह, रावण द्वारा शिव के कलाश पवत को हटाने का उपक्रम, और शिव पावती पर पुष्पापण।

ऐलीफेंटा की प्रथम गुफा ही पश्चिमी भारत की पुरातात्विक मूर्तिकला का शेप उत्कृष्ट उदाहरण है। सभी गुफाओ को समुद्री पानी, मवेशी और पुतगाली आक्रमणो से बहुत अधिक नुकसान उठाना पडा। गुफा 3 और 4 के द्वारपाल और गुफा एक मे तीरो के निशान अब भी शेप है—जबकि गुफा 6 को सन् 1750 मे चच के रूप मे भी प्रयोग करने का उल्लेख हमे मिलता है।

गुप्तोत्तर ब्राह्मण पुनरुत्थान मे अनेक स्तरो पर आर्यावर्त और दक्षिणापथ की सस्कृतियो के सम्मेलन का स्वरूप है ऐलीफेंटा की मूर्तियाँ। भारत मे शिव साधना के अनेक महत्वपूण स्थलो मे है ऐलीफेंटा की गुफाएँ जो महाराष्ट्र मे 'धारापुरी' के नाम से विख्यात हैं।

केवलादेव घना

जिस प्रकार राजस्थान मे उदयपुर, जयपुर, आबू आदि ऐसे स्थान है जहाँ कि ऋतुचर्या के अनुसार अनगिनत पयटक हर वप आते ह, या फिर प्रात के बाहर काश्मीर, शिमला, उटकमड या अन्य किसी पहाडी प्रदेश पर जाते ह, उसी प्रकार पक्षियो मे भी दल बल सहित देश विदेश की यात्रा करने का शौक देखा जाता है। ये पयटक जो कि हजारो की सख्या मे होते हैं जाति लिंग और रग के भेद को भुलाकर घुमक्कडराम की भाँति विचरण करते है। यह नही कि ये पक्षी मनचाहे समय पर अनचाहे स्थान पर जाते है अपितु ये निश्चित यात्रा कायक्रम तैयार कर अपने वश वालो सहित एक देश से दूसरे देश को जाते है। प्राचीन ग्रीस के मशहूर कवि होमर ने अपनी पुस्तक इलियड मे पक्षी-पयटन की चर्चा की है, फिर आज से लगभग 2500 वप प एक यूनानी कवि ने भी नीलनदी की घाटी मे शीतकाल बिताकर, गर्मी मे यूनान लौटते हुए अबाबील पक्षियो का जिक्र किया है। ग्रीस के प्रसिद्ध विद्वान

अरस्तू ने सारस, हवासिल, बटेर आदि पक्षियो को घुमक्कड बताया है, तो ईसाईयो के धमग्रन्थ मे कुछ पक्षियो की विदेश यात्रा पर जाने की तिथि तक निश्चित है जिनमे कोई हर-फेर नही होता।

पक्षियो मे देश विदेश घूमने की यह युगो पुरानी आदत अपने आप में कुछ रोचक स्थान साहित्य और सस्कृति को समेटे है। पक्षियो का ऐसी घुमक्कड सस्कृति का केन्द्र है राजस्थान का केवलादेव घना पक्षी विहार। केवलादेव घना पक्षी विहार भरतपुर से 5 किलोमीटर की दूरी पर और भारत की राजधानी दिल्ली से 185 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। प्रकृति के इस प्रागण मे आकर पक्षी-पक्षी ही क्या, मनुष्य भी अपनी सुध बुध खो बैठता है।

केवलादेव घना के साथ साथ राजस्थान मे अनेक वन्य प्राणी विहार हैं जिनमे—अलवर के निकट सरिसका (जहाँ कि आजकल राष्ट्रीय अनुशासन प्रशिक्षणालय भी चलता है), चुरू जिले के तालछापर, ऐतिहासिक रणथम्भोर की कथा भूमि सवाईमाधोपुर, धौलपुर क्षेत्र के वन विहार और रामसर, कोटा जिले के जयसमन्द और सिरोही जिले के माउन्ट आबू मुख्य हैं।

अन्तर्राष्टीय महत्व के केवलादेव घना पक्षी विहार स्थल की राजकीय रूपरेखा 1955 मे बनी जो अपने 6490 एकड क्षेत्र को जल सग्रहो सहित आकषक बनाये है। केवलादेव घना का वन मध्यम ऊँचाई की बबूल, खेजडी और साल्वेडोरा (Salvadora) आदि के पेडो से घिरा है। साधारण मौसम मे यहा लगभग 70 सेंटीमीटर तक वर्षा होती है, पर यह सारा पानी यहाँ ठहर नही पाता, अत यहाँ की लघु झीलो को भरतपुर के अजान बाँध से पानी प्रदान किया जाता है ताकि वष भर तक यहाँ पशु-पक्षियो को जल प्राप्त हो सके।

केवलादेव घना पक्षी विहार मे चिंक (Chink), टिपकियो वाला हरिण काला हरिण, जगली सुअर, जगली गायें, तेंदुआ, अजगर आदि पाये जाते हैं, पर भेडिये, जगली बिल्लिया पानी के साँप लकडबग्घा, नेवला, जगली चूहा आदि अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं।

पशु वग के साथ-साथ यहा सवश्रेष्ठ जल चिडियाओ को देखा जा सकता है। पक्षियो मे यह बात अवश्य देखी जाती है कि विशेष पक्षी किसी विशेष जल सग्रह को पसद कर, पर पक्षियो मे आपस मे कोई भी झगडा या विवाद यहाँ देखने को नही आता। जहा आवश्यक परीक्षण के बाद केवलादेव घना के पक्षियो को उत्तरप्रदेश क हरदोई जिले मे पाया गया वहाँ दक्षिण भारत लका, साइबेरिया और अफगानिस्तान आदि की बहुरगी चिडियाओ को भी यहाँ की लताओ पर फुदकत देखा जाता है। केवलादेव घना पक्षी विहार मनुष्यों

के लिये भी आकर्षक पर्यटन स्थल है, जहाँ अजानबाँध मे नौका विहार और शान्तिकुटीर विश्रामगृह मे पक्षी विहार का आनन्द सहज प्राप्त किया जाता है।

यह पक्षी स्थल दूर देशा से आने वाले और यही के अनगिनत पक्षियो का शीतकालीन आवास और प्रजननस्थल है। हेमन्त और शीत के आरम्भ मे जगली मुर्गाबियाँ, कलहस, श्वेतजल पक्षी, झुण्ड के झुण्ड यहाँ आते हैं और फरवरी मार्च तक वापस चले जाते है। इस प्रकार का भरतपुर निकट स्थित केवलादेव धना पक्षी विहार भारत के अन्यतम पक्षी विहारो मे स है जहाँ कि पक्षी पर्यटन की विचित्र स्थितियो को आँखो से देखा जा सकता है।

गलताजी

जयपुर नगर से पूर्व की ओर पहाडी के शिखर पर एक देव स्थान है जो "गलता' कहलाता है। श्रद्धालु लोग इसको आदरार्थ गलताजी कहते हैं। यहा पर तीन कुण्ड हैं और एक महादेव का मन्दिर है। निर्माण कला की दृष्टि से यह मन्दिर बहुत प्राचीन तो नही मालूम होता परन्तु यह स्थान नि सदेह बहुत प्राचीन है। मन्दिर या तो बार बार मरम्मत होने के कारण समय समय पर बदलता रहा है या इस स्थान पर पहिले प्राचीन मन्दिर रहा होगा जिसके जीर्ण हो जाने पर उसकी सामग्री मे नवीन सामग्री मिलाकर यह नया मन्दिर बनाया गया होगा। इस मन्दिर मे यत्र तत्र कुछ ऐसे अश दिखाई देते हैं जो आठवी या नवी शताब्दी के माने जा सकते हैं। इससे प्रकट है कि यह स्थान लगभग 1200 वर्ष या इससे कुछ अधिक पुराना है और तब से अब तक यह एक प्रकार का पुण्यस्थल या तीर्थ माना जाता रहा है। छठीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक शैव सम्प्रदाय का बहुत प्रचार था और इस युग मे कितने ही स्थानो पर विशाल और भव्य शैव मन्दिर बनाये गये थे।

ऐसा अनुमान होता है कि आठवी या नवी शताब्दी मे गलता मे शिव प्रतिमा स्थापित की गई और इसको तीर्थ स्थान माना जाने लगा। यह शैवमत का उज्ज्वल युग था। इस शताब्दी मे भारतवर्ष का प्रत्येक पर्वत शिखर शिव प्रतिमा से सुशोभित हो गया था। उसी काल मे गलता में भी शिव प्रतिमा स्थापित की गई होगी और उसी समय मन्दिर बनाया गया होगा। शायद मन्दिर का रूपातर होते होते यह वर्तमान मन्दिर बन गया है।

इस प्रदेश पर पहले मीणो का अधिकार था। फिर यहा ग्यारहवी शताब्दी मे कछवाह राजपूता न अपना अधिकार स्थापित किया। धीरे धीरे इन नवीन शासको का बल तथा प्रभाव बढता गया और सोलहवी शताब्दी मे ये भारत वष के प्रमुख शासको मे माने जाने लगे। इनके राज्यकाल मे गलता की प्रतिष्ठा और भी बढी। सोलहवी से उन्नीसवी शताब्दी तक गलता पहाडी से दूसरी ओर इसके सानिध्य म कई नये मन्दिरो का निर्माण हुआ। यहाँ प्राय वैष्णव मन्दिर हैं जिनम कोई रामानुज सप्रदाय का है और कोई वल्लभ सप्रदाय का। सभी मन्दिर भव्य और प्रशस्त हैं और अभी इन पर जीणता के चिह्न प्रकट नही हो रहे है। भारतवर्ष के सभी छोटे और बडे तीथ स्थानो मे यह देखा गया है कि यहाँ मूल मन्दिर एक है परन्तु समय-समय पर अन्य सप्रदायो के और विविध देवा के मन्दिर भी बनाय गये हैं। जिसकी जिस देव मे श्रद्धा हुई उसने उसी का मन्दिर बनवा दिया। इस बात की चिन्ता किसी ने नही की वह तीथ स्थान मुख्यत किस देव का है। राजस्थान मे इस प्रकार के अनेक स्थान है। इन पुण्यस्थलो मे सब सम्प्रदायो का मेल हो गया है। श्रद्धालु यात्री प्राय सभी मन्दिरो मे दशनाथ जाते हैं। एक देव चाहे उनका मुख्य इष्ट हो परन्तु दशन सभी देव और देवताओ के करते है। यही बात गलताजी मे भी दिखाई देती है। यह मुख्यत शैव स्थान है परन्तु यहाँ शैव, शाक्त और वैष्णवो के मन्दिर बन गये है और इस समय जो लोग स्नान करने जाते हैं उनमे शायद ही कोई इस भावना से जाता हो कि वह शव है या वैष्णव। सब लोग व्यापक धार्मिक भावना से जाते है और इस गलता के कुण्ड मे स्नान करना पुण्य कर्म मानते हैं। गलता मे जो साधु सत और महत हैं वे विशेषत किसी भी सम्प्रदाय के अनुयायी हो परन्तु वे सब धर्मों का आदर करते हैं। गलता इस समय सम्पूण सम्प्रदाया का तीथ स्थान है।

सतरहवी शताब्दी के उत्तराध मे गलता में साधुओ और सन्यासिया की समय-समय पर कई सभाए हुई थी। इनमे राजस्थान के विविध सम्प्रदाया के हजारो साधु सम्मिलित हुए थे और दूसरे प्रातो से भी कितन ही साधु और सन्यासी आये थे। इन सभाओ मे उदासी वैरागी, दादूपथी आदि सन्त सन्यासियो ने यह निश्चय किया था कि साधुओ को छोटी या बडी मण्डलियाँ बनाकर रहना चाहिए और घूमना चाहिए। यथा सभव किसी को अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिए। तब से साधु मण्डलियाँ 'जमातें' कहलाने लगीं और साधु सत शस्त्र धारण करने लगे। साधु समाज की नवीन व्यवस्था और नवीन दृष्टि की रचना मे गलताजी का बडा स्थान है।

जयपुर नगर से गलता जाते समय पहाडी माग दुर्गम है। नीचे से शिखर तक पैदल जाना पडता है। प्राय समस्त शैव मन्दिर ऐसे ही दुर्गम स्थानो पर

बने हुए हैं। यह वास्तव मे कैलाश पवत का अनुकरण है। शिव का कैलाश से अभिन्न सम्बन्ध है। इसलिए शिव की कल्पना के साथ साथ कैलाश की भी कल्पना की जाती है।

गलता का स्थान इतना रमणीय और आकपक है और यहाँ मे प्रकृति की शोभा ऐसी छिटकी हुई सी प्रतीत होती है कि यहाँ पर बार बार जाने का मन चाहता है और स्वत ही ऐसे निर्मल वायु मडल मे विशुद्ध भावो का उदय होता है। इस स्थान की शोभा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस स्थान का महत्व कभी विलीन नही होगा।

केदारनाथ

जिस प्रकार ससार के सभी पवतो मे सबसे ऊँची चोटी माउन्ट ऐवरेस्ट का धनी हिमालय है उसी प्रकार ससार म सर्वाधिक महत्वपूण धार्मिक स्थला का आगार भी पर्वतराज हिमालय ही है। भारत के इस गौरव मुकुट का इतिहास, भारतीय सस्कृति का प्रथम परिचायक स्वरूप है। गगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, झेलम, चिनाव, रावी, सतलज, व्यास, और न जाने कितनी ही नदियो का उद्गम हिमालय भगवान शकर का निवास है। यही हैं चारधाम जिन्हे हम बद्रीनाथ, केदारनाथ यमुनोत्तरी और गगोत्तरी के नाम से जानते हैं। आज हम भारत के द्वादस ज्योतिर्लिंगो मे एक—'केदारनाथ' तीर्थ की परिचय यात्रा करेंगे।

केदारनाथ ऋषिकेश से करीब 206 किलोमीटर आगे चलकर है जिसके लिय हमे देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी, त्रिजुगीनारायण और गौरीकुण्ड से होकर जाना पडता है। मन्दाकिनी नदी के किनारे किनारे होकर जाने वाले केदारनाथ मार्ग मे कई छोटे बडे तीर्थ स्थान आते है। रुद्रप्रयाग से करीब 96 किलोमीटर चलने पर अगस्त्य मुनि का मन्दिर आता है जिन्होने सर्वप्रथम विन्ध्याचल पवत को पार कर धम सूत्र द्वारा उत्तर भारत का दक्षिण भारत से जोडा था। आगे चलने पर त्रिजुगीनारायण का मन्दिर है, जो गढवाल क्षेत्र का सवप्रथम मन्दिर माना जाता है। कहते हैं यही पर भगवानशिव और पर्वतराज हिमालय की कन्या पावती का विवाह सम्पन्न हुआ था। चार युगो के प्रथम चरण कृतायुग (Krita yuga) मे भगवान विष्णु ने स्वय इस समारोह को सम्पन्न करवाया था। आज भी लक्ष्मी और पृथ्वी का आराधन यहाँ होता है।

मन्दाकिनी नदी की ये घाटी प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण तुलना रहित देवभूमि है। आगे बढ़ने पर गौरीकुण्ड आता है, जहाँ कि पार्वती ने विवाह से पूर्व तपस्या की थी। मन्दाकिनी के किनारे वन पार्वती मंदिर के अतिरिक्त यहाँ दो जलकुण्ड हैं जिसमे एक कुण्ड का पानी दिन मे कई रंग बदलता है और ठंडा है तथा दूसरे मे गर्म पानी का झरना है।

करीब 90 किलोमीटर दूर से ही केदारनाथ मन्दिर यात्रियो को दिखाई देने लगता है। एक पारम्परिक कथन के अनुसार कहते हैं, इसे अर्जुन के वंशज जनमेजय ने बनवाया था। विश्वास किया जाता है कि इसी मन्दिर के पीछे होकर वह महान पथ जाता है जिसके द्वारा पाण्डवो ने स्वर्गारोहण किया था। केदारनाथ मे शिव का कोई लिंग स्वरूप नही पूजा जाता, एक बहुत बडा त्रिकोण पर्वत खण्ड सा है, जिसे यात्री अकमाल देते हैं। यह केदार क्षेत्र अनादि है। महिषरूप धारी भगवान शंकर के विभिन्न अंग पाँच स्थानो में प्रतिष्ठित हुए हैं—उनमे तुंगनाथ मे बाहु, रुद्रनाथ मे मुख मदमहेश्वर मे नाभि कल्पेश्वर मे जटा केदारनाथ मे पृष्ठभाग और पशुपतिनाथ, नेपाल मे सिर माना जाता है। कहते है आदिशंकराचार्य ने यही अपने अंतिम दिन बिताये थे तथा मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। इस शिव मन्दिर मे इसके अतिरिक्त पाँच पाण्डव माता कुंती, रानी द्रोपदी श्रीकृष्ण और गणेशजी की आकृतियां भी दर्शनीय हैं।

बदरीनाथ से भी अधिक ठंड वाले इस स्थान पर साल भर कोई नही रहता। गर्मी के दिनो में जब बर्फ पिघलती है, तब पुजारी मन्दिर पर वापिस लौटते हैं और सर्दियो मे बर्फ जमे रहने तक केदारनाथ से निचाई के स्थान ओखीमठ' मे ही प्रतीक मंदिर पर शिवपूजा सम्पन्न की जाती है। केदारनाथ मन्दिर के पट अप्रैल मास के अंत मे या मई मास यानि वैशाख के प्रारम्भ मे खुल जाते है। इसी से आगे चलकर है मन्दाकिनी नदी का उद्गम गांधी सरोवर अर्थात छोरावाडी ताल (Choravadı Tal) और वासुकिताल।

यो तो बदरीनाथ और केदारनाथ के बीच केवल 41 किलोमीटर की दूरी है, लेकिन ऊंची पर्वत चोटियां, ग्लेशियर झरना, नदियो और घने जंगलो के कारण यात्रियो को सैकडो किलोमीटर, चल कर यहां तक पहुँचना पडता है। सुविधा के लिये अब तो सडक यातायात भी बहुत दूर तक सम्भव है ताकि तीर्थ यात्री बिना अधिक परेशानी के केदारनाथ तक आ जा सकें। 11 760 फीट की ऊँचाई पर स्थित इस तीर्थ के संबंध मे कहा गया है—जिस प्रकार काशी में मरे हुए मनुष्य को तारक ब्रह्म मुक्ति देने वाला होता है उसी प्रकार केदार क्षेत्र में तो शिवलिंग के पूजन मात्र मे ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

कुरुक्षेत्र

धर्म, सस्कृति और साहित्य मे जिस नगरी का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है, वह है कुरुक्षेत्र । श्रीमद्भगवतगीता की ज मभूमि कुरुक्षेत्र, धम क्षेत्र के नाम से भी जानी जाती है । यही पर द्वापर युग मे पाण्डव और कौरवो का भीषण महाभारत युद्ध अठारह दिन तक हुआ था । इ ही अठारह दिनो की परिचायक है, अठारह अध्याय की श्रीमद्भगवतगीता, जो श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये धम तत्वो का अमर सकलन है । भारत की राजधानी दिल्ली से कोई 150 किलोमीटर उत्तर मे तथा चण्डीगढ से 80 किलोमीटर दक्षिण मे अवस्थित कुरुक्षेत्र भारत के राज्य हरियाणा की प्रमुख कथाभूमि है । मदिर एव तालाबो की पवित्र परम्परा से विभूषित कुरुक्षेत्र सूय ग्रहण के माहात्म्य रूप मे भी जाना जाता है । पश्चिम दिशा से मुगलों के लगातार आक्रमणो के उपरात भी, कुरुक्षेत्र मे धम का जो वैभव जीवित रहा वह आज भारतीय सस्कृति का अनुकरणीय पृष्ठ है । ऋग्वेद के उल्लेखानुसार यह प्रदेश पहले ब्रह्मावत्त कहलाता था ।

इसी ब्रह्मावत्त मे, कुरुक्षेत्र वैदिक सभ्यता का केन्द्र रहा । भगवान ने इसी क्षेत्र मे लम्बे त्याग किये अत यह त्याग भूमि भी है । ऋग्वेद के अनुसार पहले यहाँ सरस्वती नदी बहा करती थी जो आगे चलकर कुरुक्षेत्र के निकट रेत मे अदश्य हो गई । महाभारत के वर्णनानुसार यह भौगोलिक परिवतन का प्रभाव ही था । तत्काल मे कुरुक्षेत्र के निकट नदी बहती है, जो बरसात के दिनो मे बाढ आने पर घग्घर नाले मे जा मिलती है ।

वैदिक समय के बाद यहाँ कुरु, पाचाल आदि आय जाति के शासक आये । तब सरस्वती एव विसाद्वती नदी के बीच की भूमि कुरुक्षेत्र कहलाता थी । जब से यह ब्रह्म ऋषिदेव, राजा कुरु की कम भूमि बनी, तब से ही इस कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा । वामनपुराण की कथा के अनुसार—राजा कुरु एक बार भगवान शिव के वाहक नदी और धमराज के वाहक महिष को लेकर, इस भूमि पर आय । राजा कुरु का इस काय से यह प्रयोजन था कि जो लोग यहाँ महाभारत के युद्ध म मारे गय हैं वे सभी स्वग को प्राप्त करें । राजा इन्द्र तक, राजा कुरु के इस काय पर हँसते थे कि बिना त्याग किये भला कोई कैसे स्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है । एक बार यहाँ भगवान विष्णु आये तथा राजा

कुरु से बोले कि यह तुम क्या कर रहे हो ? राजा कुरु बोले कि मैं इस धरती को धम बीज बोने हेतु तैयार करना चाहता हूँ। भगवान विष्णुने कहा लाओ मुझे बीज दो, मैं बोऊँगा। इस पर राजा कुरु ने अपने को स्वय को भगवान को अर्पित कर दिया। तब भगवान ने राजा कुरु के शरीर के हजारो टुकड़ कर इस क्षेत्र म बिखेर दिये, ताकि धम का आदश तत्वबीज यहा उभर सके। भगवान, राजा कुरु के इस त्याग से बहुत प्रसन्न हुए तथा राजा कुरु को पुन जीवन प्रदान कर वरदान मागने को कहा। तब राजा कुरु न भगवान से यह प्राथना की कि वह क्षेत्र धमक्षेत्र कुरुक्षेत्र कहलाये तभी से यह पूरा क्षेत्र राजा कुरु के नाम पर कुरुक्षेत्र कहलाता है।

इतिहास कहता है कि कुरुक्षेत्र और उसकी नगरी स्थानेश्वर या थानेसर आगे चलकर लगातार प्रगति के पथ पर अग्रसर रही। सातवी शताब्दी मे प्रसिद्ध राजा हषवधन ने इस क्षेत्र को सस्कृत और दशन का प्रमुख आधार बनाया। यह वही धरती है जहा सिक्ख गुरु गुरुनानक, गुरु हरगोविन्द, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्दसिंह धम यात्रा पर आये थे। महमूद गजनवी से तमूरलग तक का परिवर्तन कुरुक्षेत्र ने निकट से देखा है, और तो और आधुनिक भारतीय साहित्य मे 'कुरुक्षेत्र' की पृष्ठभूमि पर सैकडा काव्य एव कथा पुस्तकें भी लिखी गई हैं। पटियाला नाभा, जिन्द, कैथल और लडवा के राजा यहा के मदिरो की साज सज्जा एव गरीबो हेतु मुफ्त रसोई घरो के लिये धन भी दिया करते थे। इस देश मे जो पाच ब्रह्मवेदी हैं उनमे कुरुक्षेत्र भी एक है। पुराणो मे वणन मिलता है कि कुरुक्षेत्र के चारो तरफ सात वन है—काम्यकवन अदितिवन, व्यासवन, पलाक्षीवन सूयवन मधुवन और सीतावन। राजा युधिष्ठिर के शब्दो मे—पुण्यक्षेत्र तथा भगवान कृष्ण द्वारा बारह वष तक त्याग किये जाने वाली इस भूमि के आसपास 'महाभारत' के अनुसार एक सौ उपतीथ हैं। 250 वग किलोमीटर के क्षेत्र मे जो 365 तीथ हैं उनके नाम महाभारत के नायको के नाम पर है। स्थानेश्वर, बानगगा और सनया हेत कुड यहा के प्रसिद्ध धमस्थल हैं। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध तालाब मे सूय ग्रहण के दिन स्नान का प्रबलमहत्व है। पाण्डव पुराण के अनुसार पूण सूयग्रहण के दिन जो व्यक्ति इस सूयकुण्ड मे स्नान करता है उसे हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। आज भी सूयग्रहण के दिन लाखा तीथ यात्री कुरुक्षेत्र के इस कुण्ड मे नहाने आते हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रग्रहण, सोमवती अमावस्या, बावन द्वादशी फाल्गुन और बशाखी मेले की धूम भी कुरुक्षेत्र में देखते ही बनती है।

कीर्तिस्तम्भ

राजस्थान की शौय परम्परा के परिचय म चित्तौडगढ का नाम कुछ विशेष अथ रखता है। या तो घर घर वीर हुए है और गाँव गाँव मे गढ है, लेकिन 'चित्तौडगढ' का सानी कोई दूसरा नही है। चित्तौडगढ एक ऐसी माया नगरी है जिसमे कला सस्कृति और पराक्रम के प्रतीक खण्डहर आज भी अपनी कहानी आप कहते हैं। इनम कथारूप का सुदर उल्लेख है—कीर्तिस्तम्भ का, जो मूलत राजस्थान का 'पर्याय' बन गया है।

जिस प्रकार केरल के नारियल पेडो वाले सागर तट, पजाब के भगडा नर्तको की टोली, गुजरात का सोमनाथ मदिर, कश्मीर के शिकारे आदि के चित्र देखकर ही उस प्रान्त विशेष की गरिमा सामने आ जाती है, उसी प्रकार 'कीर्तिस्तम्भ' के चित्र से राजस्थान की गौरव गाथा पूण रूपेण साकार हो उठती है।

प्राय कीर्तिस्तम्भ किसी घटना की गरिमा को स्थाई बनाने हेतु बनाय जाते हैं। जैसे दिल्ली से तेरह मील दूर महरौली गाव मे कुतुबुद्दीन ऐबक की प्रसिद्ध 'कुतुब की लाट' है, वैसे ही चित्तौड के किले पर महाराणा कभा द्वारा बनवाया कीर्तिस्तम्भ भारत का एक मात्र अलौकिक स्तम्भ है। ये वही राणा कुभा है जिन्होंने एकलिगजी का मदिर, कुभलगढ का दुर्ग, कुभस्वामी का मदिर बनवाये एव अनेक सगीत शिल्प तथा कला ग्रथो की रचना करवाई।

चित्तौड के किले पर सफेद सगमरमर का बना हुआ कीर्तिस्तम्भ चित्तौड गढ पर प्रसिद्ध गोमुख नामक जलाशय के निकट, समाधीश्वर के मदिर से कुछ ही दूर अनुमानत 12 फुट ऊँची, 42 फुट लम्बी और उतनी ही चौडी वेदी पर खडा हुआ है। यह आकृति मे चौकोर है, तथा इसके प्रत्येक पाश्व की लबाई 35 फुट है। इसमे नौ मजिल है और जिनमे सात मजिलो के चारो तरफ एक एक झरोखा बना हुआ है, जिससे स्तम्भ का भीतरी भाग सदैव प्रकाशित रहता है। कीर्तिस्तम्भ का मध्यभाग, कुतुबमीनार की तरह गोल नही है किन्तु चोकोर है, साथ ही इसके भीतर इतना पर्याप्त स्थान भी है कि प्रत्येक मजिल मे 30 40 आदमी खडे रहकर भीतर की कलाकृतियों का अवलोकन भी कर सकते है। कीर्ति स्तम्भ की प्रत्येक मजिल के अनुमानत तीन चतुथाश भाग मे परिक्रमा है, जिसके अदर नीचे से ऊपर की मजिल तक जाने के लिये

सीढियाँ बनी हुई हैं। स्तम्भ के सर्वोच्च भाग पर गुबद बना हुआ है, जिसका प्रत्येक पार्श्व 17 फुट लम्बा है। कीर्तिस्तम्भ की वेदी के ऊपरी भाग से गुबद तक की ऊँचाई 122 फुट है जिस पर चढने हतु घुमावदार 156 सीढिया हैं। इस स्तम्भ पर बाहर भीतर, सवत्र आकपक खुदाई वाली मूर्तियाँ बनी हुई हैं जो चौदहवी शताब्दी के कलारूप से हमारा परिचय कराती हैं।

कहत है सवत 1494 अर्थात ईसवी सन् 1436 के लगभग, महाराणा कुभा ने, मालवा के सुल्तान मुहम्मद खिलजी पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे 90 लाख रुपये खच कर यह कीर्तिस्तम्भ बनवाया था, जो जयस्तम्भ भी कहलाता है। कीर्तिस्तम्भ की कीर्तिपताका स्थापित रखने मे अनेक युद्ध एव सघर्षों का सामना करना पडा, लेकिन यह हमारा सौभाग्य है कि कीर्ति स्तम्भ न सदैव अपने मूल्य को मान्य बनाये रक्खा। कनल टाड ने कीर्तिस्तम्भ के लिये लिखा कि जयस्तम्भ अर्थात् विजयस्तम्भ या कीर्तिस्तम्भ, दिल्ली की कुतुबमीनार की कलाकारी से भी बढकर है। इतिहासज्ञ फगुसन के अनुसार यह स्तम्भ वीरता के प्रतीक राम क टाजनस्तम्भ से सुदर तथा वास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण है।

कीर्तिस्तम्भ का द्वार दक्षिण दिशा की तरफ है। द्वार मे प्रवेश करते ही सामने जनादन की मूर्तियाँ हैं, तथा प्रथम मजिल व पाश्व मे अनत ब्रह्मा और रुद्र की मूर्तियाँ बनी हैं। दूसरी मजिल के पाश्व की ताका मे अर्द्धनारीश्वर, हरिहर पितामह हरिहर की मूर्तिया ह। तीसरी मजिल मे विरचि, जयत, नारायण और च द्रावक पितामह की मुख्य मूर्तिया हैं। चौथी मजिल मे त्रिखण्डा तोतला, हरिसिद्धि पावती हिंगुलाज श्री देवी, गगा यमुना, सरस्वती नदियाँ तथा गधव, कार्तिकेय एव विश्वकर्मा की मूर्तियाँ बनी हैं। पाचवी मजिल मे लक्ष्मीनारायण, उमा महेश्वर ब्रह्मा सावित्री की युगल प्रतिमाएँ हैं, साथ ही अनेकश शस्त्रो की मूर्तियाँ भी है। छठी मजिल मे सरस्वती महालक्ष्मी और महाकाल की मूर्तियाँ है तो सातवी मजिल मे वराह नृसिह राम बलदेव, बुद्ध आदि की अवतार मूर्तियाँ है। आठवी मजिल मे कोई मूर्ति नही है, केवल चारो तरफ स्तम्भ बने हैं। नौवी मजिल म गुबज के नीचे वाले भाग मे कई शिलाओ पर महाराणा हमीर स लेकर महाराणा मोकल तक का श्लोक वणन है, जिसमे राणाकुभा की प्रशस्ति के अश भी है। कीर्तिस्तम्भ मे लगभग सभी छोटे बडे देवी-देवताओ की मूर्तियाँ हैं, जिनके प्रत्येक के नीचे उनके नाम भी खुदे हैं ताकि इतिहास की भूमिका और अधिक स्पष्ट हो सके। कला मूर्तियो के इस इन्द्रजाल मे उन चार मुख्य शिल्पकारो की मूर्तियाँ भी हैं, जिन्होने कीर्तिस्तम्भ को बनाया था। ये हैं—जईता नामक शिल्पी की कुर्सी पर बैठी

मूर्ति और पास ही खडे उसके तीन पुत्रो की मूर्तियाँ, जिनके कि नाम नापा, पामा और पुजा बताये गये हैं।

तब से अब तक कीर्तिस्तम्भ का महाराणा स्वरूपसिंह तथा महाराणा फतहसिंह के कार्यकाल मे जीर्णोद्धार करवाया गया, क्योंकि एक बार बिजली गिर जाने से इसके ऊपरी भाग को क्षति पहुँची थी।

विजय, बलिदान एव प्रेरणा के प्रतीक, चित्तौड के कीर्तिस्तम्भ का स्वरूप भारतीय वास्तुकला एव शौयकला का प्रमाण है, जो सदियो तक आने वाली पीढ़ी को नयी सम्भावनाओ के स्वर प्रदान करेगा।

कामरूप

इतिहास कहता है कि ब्रह्मपुत्र नदी की पावनधारा से सिक्त, हिमालय की पवतमय वनसम्पदा का धनी एव विविध जन जातियो की सौम्य भूमि असम, पहले मुगल साम्राज्य से अलग, कामरूप हिन्दू राज्य मे सम्मिलित था जिसका साक्षी प्रागैतिहासिक काल है। 640 ईसवी मे भारत आये चीनी यात्री ह्वेनसाग के यात्रावृतान्त के अनुसार कामरूप देश लगभग दस हजार ली अर्थात एक हजार आठ सौ वर्ग मील के मण्डल मे है। इसकी राजधानी पाँच मील के दायरे मे है। यहाँ की जमीन नीची पर उपजाऊ है और यहाँ नियमित रूप मे खेती होती है। यहाँ की जलवायु नम तथा समशीतोष्ण है। लोगो का कद नाटा एव रग गाढा पीला है। स्वभाव से क्रोधी और उग्र स्वभाव के 'कामरूप' निवासियो की भाषा शेष भारत से भिन्न है। अध्ययन शील प्रदेश के सास्कृतिक स्वरूप से यह बात मुख्य रूप मे परिलक्षित होती है कि यहाँ से भारत के प्रमुख कथासूत्रो का सम्पर्क सदियो पुराना है।

शिवपुराण, कालिकापुराण, देवीपुराण, महाभारत, कालिदास के रघुवश महाकाव्य, योगिनीतन्त्र और कोलज्ञाननिर्णय के अतिरिक्त राजशेखर, आचाय हेमचन्द एव समुद्रगुप्त राजा के सम्बन्ध मे इलाहाबाद के अभिलेखो मे कामरूप प्रदेश के अलग-अलग वर्णन मिलते हैं।

एक बार सती जी ने अपने पति का प्रजापति दक्ष द्वारा यज्ञ मे अपमान किये जाने पर, आत्मदाह कर लिया। जब यह शिवजी को पता चला तो वे क्रुद्ध हुए सती के शव को कन्धे पर ढोकर जगत मे विचरण करने लगे।

सारे देव दानव इससे परेशान थे कि न जाने अब क्या हो। आखिर भगवान विष्णु के हस्तक्षेप से सुदर्शन चक्र द्वारा सती के शव को खण्ड-खण्ड कर पृथ्वी पर गिराया गया। उस समय सती का गुप्तांग असम के नीलाचल पर्वत पर गिरा जो आगे चलकर तीर्थ केन्द्र के रूप में स्थापित हुआ। सती जी के शरीर से 51 टुकड़े गिरे जो भारत के प्रमुख सिद्ध एवं शक्ति पीठों में पाये गये। कामरूप वह स्थान है जहाँ सती जी गुप्त रूप से शिव संग काम पूर्ति हेतु आती थी, इसलिये आज यह स्थान भुक्ति और मुक्ति दोनों का संगम है।

कुछ के अनुसार शिवजी ने कामदेव को यहीं भस्म किया था, और उनकी प्रसन्नता पर उनसे पुनः अपना रूप प्राप्त किया था, अतः यह कामरूप कहलाया। चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रावृतान्त में 'काम ब्रुप' नाम इसी कामरूप प्रदेश का पर्याय है। असम के लिये कामरूप के कौल ज्ञाननिर्णय में यह स्पष्ट होता है कि साधनामार्गपरक शास्त्र कामरूप की योगनियों के घर-घर में विद्यमान था और मत्स्येन्द्रनाथ उसी कामरूपी स्त्रियों के घर से अनायास शास्त्र का सारसंकलन कर सके थे।

हृम्य महये इमनाथ सारभूत समृदत
कामरूपे इदं शास्त्र योगिनीनां गृहे-गृहे।

जिस प्रकार कुल्लु प्रदेश को प्राचीन ग्रन्थों में 'स्त्रीराज्य' कहा गया है उसी प्रकार कामरूप को भी स्त्रीराज्य के रूप में दर्शाया गया, जहाँ कि स्त्रियाँ तंत्र मंत्र में प्रवीण प्रचण्ड कामाङ्गमयी थीं।

शक्तिवान् के काम प्रदेश में जहाँ पार्वती के गुप्तांग गिरे वहीं नीलाचल पर्वत आगे चलकर कामाख्या देवी की भक्तिधारा के रूप में स्थापित हुआ। यहीं फिर प्रागज्योतिष अर्थात गोहाटी के राजा भगदत्त ने एक मन्दिर का निर्माण करवाया।

कामाख्या परमं तीर्थ, कामाख्या परमंतपः।
कामाख्या परमो धर्म कामाख्या परमागीत ॥

पूर्वोत्तर रेलवे की छोटी लाइन पर अमीर गाँव जाकर, फिर स्टीमर में ब्रह्मपुत्र नदी को पार कर, मोटर द्वारा लगभग 5 किलोमीटर चलकर कामाख्या देवी का यह मन्दिर आता है जिसकी महिमा 'देवी भागवत' में महाश्रेय के रूप में गाई गई है। करतोया नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक त्रिकोणाकार कामरूप देश—इस कामाख्या देवी का पूर्णता से भक्त है। असम का जिला कामरूप भारतीय धर्मजगत का ऐसा दर्शन है, जो नर्क और स्वर्ग न जाने

किन किन योनितीर्थों अर्थात योगिनी तीर्थों का परिचय हमे कराता है। दा सौ परिवार का यह कामाख्या देवी तीर्थ बगाल, नेपाल और बिहार की भूमि से जुडा है जहाँ दुर्गापूजा, अबुनशि और दवयानी मेले के अवसर पर सार असम राज्य की जीवन्त सस्कृति को देखा जा सकता है। आज भी कामाख्या देवी को नर पशु की बलि दी जाती है दायें हाथ की पूजा पद्धति से पूजा की जाती है और मन्दिर की निजी भूमि की आय से इसकी व्यवस्था चलाई जाती है। कलिकापुराण मे कामाख्या को ललितकान्ता कहा गया है जिसका भाष्य है—इस ससार मे और कोई दूसरी ऐसी स्त्री नही जो 'कामाख्या' की बराबरी कर सके।

कामश्वरी च कामाख्या कामरूपनिवासिनीम्।
तप्तकाचनसकाशा ता नमामि सुरेश्वरीम्॥

काचीपुरम्

ब्रह्माडपुराण के अनुसार, भगवान हयग्रीव अगस्त्यमुनि से कहते हैं—

रहस्य सम्प्रवक्ष्यामि लोपमुद्राते शृणु।
नेत्रद्वय महशस्य काशी काचीपुरी द्वयम॥
विख्यात वैष्णव क्षेत्र शिवसानिध्यकारकम्।
काचीक्षेत्रे पुरा धाता सवलोकपितामह॥
श्रीदेवीदशनार्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्।
प्रादुराम पुरो लक्ष्मी पद्महस्त पुरस्सरा॥

अर्थात्—काशी तथा काचीपुरी ये दोनो भगवान शकर के नेत्र हैं और वैष्णव क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा भगवान शकर की प्राप्ति कराने वाले हैं। काचीक्षेत्र मे प्राचीनकाल मे ब्रह्माजी ने श्रीदवी के दशन हेतु तपस्या की थी फलत भगवती महालक्ष्मी हाथ मे कमल धारण किय उनके सामन प्रकट हुइ।

एसी मोक्षदायिनी काचीपुरी, भारत की सप्त तीर्थनगरियो मे एक है। काची अर्थात् काजीवरम् तमिलनाडु के चेंगलपेट जिले म मद्राम से लगभग 74 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। हजारा वर्ष से काची हिन्दू सस्कृति

की पीठ रही है। सस्कृति ग्रथो मे इस धमनगरी को कई नामो से पुकारा गया है। कोई इस पुरी को कच्चीपेड्ड, कच्छी या काची कहता है तो कोई काजीपुरम् या कांजीवरम्। काचीपुरम् मे दो भाग हैं जिसमे एक भाग का नाम शिवकाची है तथा दूसरे का विष्णुकाची। शैव एव वैष्णव भक्तों की भावभूमि होने के साथ साथ यहाँ जैन एव बौद्ध धम का अभिनव काल भी रहा। चीनी यात्री ह्वेनसाग के यात्रावणन बतलाते हैं कि जब वह काचीपुरम मे आया था उस समय यहाँ सैकडो सघाराम और ऊँचे दर्जे के भिक्षु एव सन्यासी रहते थे।

यो भी काची भारत के इक्यावन शक्तिपीठो म एक है। कहा जाता है कि किसी समय काचीपुरम मे शिव क 108 और विष्णु के 108 मन्दिर थे। शिव के मन्दिरो मे श्रीकामाक्षी, एकाबरनाथ तथा कलाशनाथ के मन्दिर और विष्णु के मन्दिरो मे वरदराजस्वामी, वकुण्ठ पेरूमाल, पाडवदूतर, विलक्को लिपेरूमाल आदि के मन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

काची, पल्लव राजाओ की आध्यात्मिक ज्ञानपीठ रही है। सम्राट अशोक ने यहाँ कई स्तूप बनवाये थे तथा यही पर धमपाल बोधिसत्व का जन्म हुआ था। शैव एव वैष्णव विभूतियो की कम भूमि काचीपुरम म छठी से नौवी शताब्दी मे राजा महेन्द्र वमन प्रथम जैसे पल्लव राजा हुए हैं जिन्ह कि चत्य कारी अर्थात मदिर निर्माता के नाम से जाना जाता है।

धर्म, इतिहास एव कलात्मक रूप मे काची का अपना वैभव है। मन्दिरो के गोपुरम और मन्दिर के बाहर भीतर की कलावीथियाँ दखकर दक्षिण भारत की मन्दिर शली का उत्कृष्ट उदाहरण सामन आता है। विजयनगर शासको का काल काचीपुरम का उल्लेखनीय समय है, जबकि यहाँ अधिकाश मन्दिरो के गोपुरम बने थे। इसी तरह कला के क्षेत्र मे भी काजीवरम अर्थात काचीपुरम साडियो के लिए भारत मे विख्यात है। प्रसिद्ध काजीवरम साडियाँ यही बनती हैं। काचीपुरम में ही शकराचाय का कामकोटि पीठ है जहाँ भगवान आदि शकराचाय स्वय विराजे थे। काचीपुरम के शिव काची भाग मे कामाक्षी अम्मन का मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है जब देवी का प्रभाव कम होने लगा था तब आदि शकराचाय ने मूर्ति के सामन एक चक्र स्थापित करके प्रभाव को बढाया था। एकाम्रनाथ का मन्दिर यहाँ का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसकी दीवारो पर भगवान शकर द्वारा काम दहन का चित्र बनाया गया है साथ ही इस मन्दिर के अहाते मे वह प्राचीन आम का पेड है, जिसके नीचे शिव ने पावती को दशन दिये थे। इसके अतिरिक्त यहाँ कैलाशनाथ, वामन मन्दिर और सुब्रह्मण्यम मन्दिर भी दशनीय हैं।

काचीपुरम के विष्णुकाची भाग मे सबसे प्रसिद्ध वरदराजस्वामी का मन्दिर है, जो हस्तगिरी नामक एक छोटी पहाडी पर बना है। कहते हैं यहाँ कभी भगवान ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। मन्दिर की दीवार पर भगवान विष्णु की रूपलीला चित्रित है। उल्लेख है कि प्रसिद्ध वैष्णव सत तिरूमगै आलवार ने इस मन्दिर मे आकर स्तुति की थी और प्रभु प्रशसा के छद रचे थे।

काचीपुरम के मन्दिरो की चर्चा वैष्णवो के 'नालायिर प्रबन्धम' तथा शैवो के 'तेवारम' आदि ग्रन्थो मे मिलती है। आठवी शताब्दी मे यहाँ भगवान शकराचार्य ने एक मठ की स्थापना की थी, जो बाद मे तजाऊर के महाराजा सर्फोजी के प्रयत्न से काची से स्थानातरित होकर कुभकोणम आ गया।

शैव, वैष्णव, बौद्ध एव जैनधर्म की कथापुरी काचीवरम अर्थात काचीपुरम, वामनपुराण के अनुसार—जिस तरह स्त्रियो मे श्रेष्ठ स्त्री रम्भा है, देशो म देश मध्यदेश है, उसी प्रकार पुरियो मे श्रेष्ठ पुरी—काचीपुरी है जो कम्बाई या वेगावती नदी के किनारे बसी है।

सत्यक्षेत्र कहलाने वाला काचीपुरम भक्त रामानुजम की ऐसी धर्मस्थली है जहाँ भगवान ब्रह्मा ने भगवान वरदराज की प्रार्थना की थी।

काशी

जी हाँ! काशी बनारस और वाराणसी ये तीन नाम एक ही गौरवपुरी के हैं, जहाँ धर्म और ज्ञान की गगा कण कण मे प्रवाहित है। भारतीय सस्कृति की सग्राहक नगरी काशी अपने मे बहुत सी गाथायें समेटे है, जिसका उल्लेख हमे अथर्ववेद पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण और महाभारत के भीष्मपर्व, रामायण के उत्तरकाण्ड मे तथा बौद्ध धर्म ग्रन्थ धम्मपद मे मिलता है।

वैदिक आर्यों के आगमन से पूर्वकालीन काशी के इतिहास के बारे मे कुछ भी कहना कठिन है, लेकिन उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इतिहास के मध्ययुग अथवा 13 वी शताब्दी से ही यह नगरी भारतीय विद्याओं का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गई थी। महाराष्ट्र, मिथिला, बगलादेश, गुर्जर, हिमालय पार्वत्य प्रदेश, नेपाल, तैलग तथा द्रविड देशो के एक से एक विद्वान धर्माचार्य, तत्वज्ञानी, कलाकार एव कवि काशी

मे आकर रहे। काशी के गौरव का यह वह समय था जब सवसाधारण भूत, प्रेत यक्ष नाग वृक्ष आदि की पूजा करते थे और जादू-टोन म उनका बहुत विश्वास था। महाजनपद युग म महावीर और बुद्ध के आगमन से नवीन विचारधारा और दशन का प्रकाश था। परिव्राजका, श्रमणो और तपस्वियो का जोर था। जातका मे इनकी कठिन तपश्चर्या के लिये कहा गया है—कुछ लोग बराबर झूलते रहते थे कुछ कटक शैया पर लेटे रहते थे, कुछ पचाग्नि तापते थे कुछ उँकडू ही बठे रहते थे, कुछ बराबर स्नान किया करते थे तो कुछ बराबर मन्त्र ही पढा करते थे। यही, महावीर से करीब 250 वष पूव यानि ईसा पूव आठवी शताब्दी मे जैन तीथकर पाश्वनाथ का जन्म हुआ। वाराणसी से ही बुद्ध ने अमर सदेश उद्घोपित किया, जो आगे चलकर जापान स लेकर अफगानिस्तान और सुवण भूमि से लेकर सिहल तक फैल गया।

हे भिक्षुओ! जनता के हित के लिय जनता क सुख के लिये, लोक पर अनुकम्पा करने के लिये देवताओ और मनुष्या का हित—सुख देने के लिये विचरो। आरम्भ मे कल्याणकर मध्य म कल्याणकर अन्त म कल्याणकर धर्म का शब्दो और भावो सहित उपदेश करके सर्वांश मे परिपूण परिशुद्ध ब्रह्मचय का प्रकाश करो।

काशी वालो का सामाजिक इतिहास बहुत ही समृद्ध है। न्यायप्रिय जनता म उत्सवप्रियता के लिये आज भी ये प्रचलित है—'आठ वार नौ त्यौहार। काशी की दीपावली जो कि महावीर की मृत्यु के कारण उपोसथ का दिन है छत्रमगल और हस्तिमगल त्यौहारा के साथ साथ मदिरोत्सव एव जलोत्सव भी बहुचर्चित है।

इस दुनिया मे ऐसा कौनसा नगर होगा जो इस प्रकार अविच्छिन्न चला आ रहा हो। वैदिक पौराणिक, बौद्ध साहित्य एव सस्कृति के साक्ष्य मे मौर्य, शुग, गुप्त और गहडवाल युग से गुजरने के बाद काशी जनप्रदेश ने मुगल, मराठो और अग्रेजो के परिवतन भी देखे है।

हुए वल्लभाचाय, नारायणभट्ट रामानन्द जिनप्रभसूरि कुल्लूकभट्ट, चतन्य महाप्रभु कबीरदास, तुलसीदास, सतज्ञानेश्वर एकनाथ नामदेव कीना राम जसे विविध धम एव सम्प्रदाय के प्रकाशदाताओं ने किसी न किसी समय काशी आकर प्रेरणा प्राप्त की।

गौरव और गरिमा की यही परम्परा हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, कविरत्नाकर जयशकर प्रसाद और प्रेमचन्द द्वारा पोपित की गइ। गगा के किनारे यो तो अनेक नगर हैं लेकिन जो शान और शोभा इस पुरी की है वह अन्यत्र नही। ज ! मदिरा की घटा ध्वनि घाटो की चहल पहल और

गगा की निमल लहरियो के मध्य लगता है जैसे हम किसी स्वण भूमि में गये हैं।

सस्कृत साहित्य मे कहा गया है— जहाँ गगा का अमृत जल है और भगवान् विश्वनाथ के अमृत दशन, वही है काशी की गौरव भूमि, भारतीय विद्याओं का प्रधान केन्द्र।'

भानपुरी काशी की घटना है—एक बार आदि शकराचाय सँकरी गली से जल्दी-जल्दी स्नानाथ गगातट की ओर चले जा रहे थे उन्हें स्नान का दर हो गई थी। माग मे एक चाण्डाल कुत्तों के साथ आगे आगे चला जा रहा था। शकर को बाधापडी और उन्होंने चांडाल से कहा एक तरफ हट जाओ, वरना मैं अपवित्र हो जाऊँगा'। चाण्डाल ने घूमकर शकर की ओर देखा और बोला—'किसे हटने को कहते हो सन्यासी। मर नश्वर शरीर का, जो असत् है या मुझ मे निहित ब्रह्म को जो तुमम, मुझमे और सबमे एक समान व्याप्त है।' इस धम बोध से शकर की आँखे खुल जाती हैं। कहते हैं स्वय भगवान विश्वनाथ ने चाण्डाल का रूप धारण कर उन्हे यह आत्मज्ञान करवाया था।

बौद्धभूमि 'सारनाथ' के पाश्व मे अवस्थित ज्ञान और धम के साथ साथ व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूण रहने वाली काशी नगरी बनारसी साडियाँ, पीतल के पच्चीकारीदार बतन लकडी के खिलौनों और उत्कृष्ट सम्भावनाओं की द्योतक स्थली है। सगीत एव कला, अनगिनत सीढियाँ, सँकरी गलियाँ, बदरो, बैलो, और सन्यासियो की तपस्याभूमि काशी की आय का मुख्य साधन तीथ यात्री रहा है।

खाक भी जिस जमी की पारस है।
वह शहर मशहूर बनारस है।

कुम्भकोणम

जिस प्रकार अधकुम्भ और पूणकुम्भ का मेला गगा नदी की साक्षी मे जुडता है, उसी प्रकार आध्रप्रदेश मे पुष्करम् एव शेप दक्षिण भारत मे पवित्र कावेरी नदी के तट पर बसी मदिर नगरी 'कुभकोणम' मे हर बारह वष बाद पूणकुभ का मेला लगता है। आज के दिन 'कुभकोणम' स्थित कावेरी नदी के

सारे मन्दिरो म मगल उत्सव के साथ महामाघम (Maha makhan) सम्पन्न होता है। तजाउर जिले मे कावेरी के तट पर बसा यह नगर, कहते हैं—भारत का सबसे पुराना नगर है। नगर के बीच म 20 एकड विस्तार का एक तालाब है जिसके सबध म प्रसिद्ध है कि प्रति बारहवें वर्ष—महामघ के अवसर पर समस्त भारत की नदियाँ इस तालाब म आकर मिलती हैं, इसलिये उस दिन इस तालाब म नहाने से पुण्य प्राप्त होता है।

आर्य सस्कृति एव आर्य विद्या म प्रमुखतम माने जाने वाले मन्दिर कुम कोणम' का उल्लेख स्कन्दपुराण मे इस प्रकार मिलता है—

कुम्भकोण सतुमूल गोकर्ण नमिषा तथा।
अयोध्या दण्डकारण्य विरूपाक्ष च वेंकटम ॥
शालिग्राम प्रयाग च कांची द्वारावती तथा।
मथुरापद्मनाभ च काशी विश्वेश्वरान्वया ॥
नद्य सर्वा समुद्राश्च पर्वतं भास्कर स्मृतम्।
मुण्डन चोपवासश्च क्षत्रष्वपु प्रकीर्तितम् ॥
लोभामोहादकृत्वा य स्वगृह याति मानव।
सहैव याति तद्गेहे पातकानि च तेन वै ॥

अर्थात्—कुमकोणम, रामश्वरम् गोकर्ण, नैमिष, अयोध्या, दण्डकारण्य विरूपाक्ष वेंकटेश्वर शालिग्राम, प्रयाग, कांची, द्वारका, मदुरा अर्थात मदुरई एव मथुरा, पद्मनाभ और काशी नामक तीर्थों पर सिर मुडन, व्रत एव स्नान अलौकिक पुण्य का काय है।

ऐसे पवित्र 'कुमकोणम म यो तो बहुत से मन्दिर हैं लेकिन कुभेश्वर, शार्ङ्गपाणि नागेश्वर, रामास्वामी और चक्रपाणि मन्दिर इनमे प्रमुख हैं। महामाघम् के अवसर पर यदि कावेरी नदी मे पानी न हो तो लाखो यात्री महामाघम सरोवर मे स्नान करते हैं। इस सरोवर के चारो घाटो पर मन्दिर हैं जिनकी सख्या सोलह है। भगवान शकराचार्य का कामकोटि पीठ भी यही है जो मुगलकाल मे कांची से यहाँ आ गया था।

पुराणो मे वर्णित कामकोष्णीपुरी कुमकोणम ही है। कहते हैं प्रलयकाल मे ब्रह्माजी ने सृष्टि की उपादानभूता मूलप्रकृति को एक घट मे रखकर यहीं स्थापित कर दिया था तथा सृष्टि के प्रारम्भ मे यहीं से उस घट को लेकर सृष्टि रचना की। एकमत यह भी प्रचलित है कि ब्रह्माजी के यज्ञ मे, यहाँ भगवान शकर अमृतकुम लेकर प्रकट हुए थे। सस्कृत का पौराणिक कुमकोणम नाम ही आज का कुमकोणम है, जहाँ कि 10 से लेकर 16 वी शताब्दी के बने कलात्मक मन्दिर अवस्थित हैं। मद्रास राज्य के मायावरम् स्थान से 32

किलोमीटर की दूरी पर स्थित कुभकोणम दक्षिण भारत की मन्दिर कला के प्रमुख अग गगनचुबी 'गोपुरम' का परिचायक तीथ है, जहाँ धर्म का शाश्वत रूप सदियो से सुरक्षित है। या तो हरिद्वार ही महाकुभ की नगरी है या फिर कुभकोणम। नाना प्रकार की शिव प्रतिमाएँ (जिनमे नटराज प्रतिमा भी एक है,) कुभकोणम की सास्कृतिक कथा धारा को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। यो तो यहा विष्णु एव ब्रह्मा के मन्दिर भी हैं, लेकिन कुभकोणम मे शिव मन्दिरो की ही अधिकता है। यहाँ के महामाघम् सरोवर मे स्नान की महिमा को भविष्य पुराण ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोथ भिक्षुक ।
बालवृद्धयुवानश्च नरनारी नपुसका ।
स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सित फलम् ॥

यदि आप गगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, वेगवती या कावेरी मे एक साथ पुण्यस्नान करना चाहते हैं तो निश्चय ही यह फल आपको कुभकोणम के महामाघम् मे शामिल होने पर प्राप्त होगा।

खजुराहो

मध्यप्रदेश का उत्तरी भाग बुन्दलखण्ड कहलाता है। यही छतरपुर जिले म महोवा से लगभग 42 किलोमीटर दूर भारतीय कला एव सस्कृति का मूर्तिमान नगर 'खजुराहो' स्थित है। खजुराहो, मध्य रेलवे के झाँसी-मानिकपुर रेल मार्ग पर स्थित हरपालपुर रेलवे स्टेशन से लगभग 69 किलोमीटर दूर है। इसके अतिरिक्त बम्बई-कलकत्ता-मुख्यलाइन पर स्थित सतना रेलवे स्टेशन पर उतरकर पन्ना होते हुये भी बस द्वारा खजुराहो जाया जा सकता है।

भारतीय वास्तुकला के अन्तगत उत्तर मध्यकाल अर्थात 900 ई से 1300 ईसवी के बीच बने मन्दिर तथा स्मारको की सख्या अधिक है। इस समय पाल, चालुक्य, चोल, गग और राजपूत नरेश प्राचीन केन्द्रो के अतिरिक्त नवीन कला केन्द्रो का पोषण भी कर रहे थे। ऐसी हालत मे प्रत्येक केन्द्र की निजी कला पद्धति विकसित हुई।

खजुराहो के भव्य मन्दिरो का निर्माण 950 ई और 1050 ई के मध्य हुआ था। इनका निर्माण चदेल वश के राजाओ ने करवाया था, जबकि

खजुराहा उनकी राजधानी थी। आठवी सदी से प्रारम्भ शिव, विष्णु एव जन मन्दिरो के निर्माण की कला यहाँ पूरे विकास म चित्रित हुई है। या तो यहाँ अनेक मदिर बने और बिगडे, लेकिन आज भी करीब 85 मन्दिर दशनाय स्थिति मे हैं, जिन्ह दखकर मध्यकालीन भारतीय वास्तुकला का परिचय आसानी से मिल जाता है।

कभी-कभी यहाँ के मदिरा की तुलना उडीसा के मदिरो से की जाती है लेकिन दोनो जगह के मन्दिर अपने आप म भिन्न होकर भी एक ही नजर आते है।

खजुराहो के मन्दिर मे बनी मूर्तियो को लेकर श्लील और अश्लील का विवाद भी विद्वानो क बीच है, लेकिन मात्र इस प्रकार के दोष मानकर चलने से कला क महत्व और पौराणिक लोकभावनाओ के स्वरूप से मुह नही मोडा जा सकता।

यहा बने मदिर तीन मुख्य समूहो मे विभक्त हैं। पश्चिमी समूह मे बने मदिरा मे, कन्दरिया महादेव का मन्दिर 'खजुराहो' के प्रमुख मदिरो म से एक है। 109 फीट लम्बा और बाहर से 60 फीट चौडा यह मन्दिर धरातल से करीब 117 फीट ऊँचा है, और अपने फश स करीब 88 फीट ऊचा है। कन्दरिया महादेव मन्दिर की ऊँचाई का प्रभाव, उसके गहरे तहखाने और मीनार को दोहरा कर देने से कई गुना बढ जाता है। बालकनी और दीवाल के बीच अप्सरा सुन्दर देवी और मिथुन की अनगिनत मूर्तियाँ बनी हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार कनिघम के अनुसार इस मन्दिर मे 2 फीट ऊँची कोई 262 मूर्तियाँ है, जबकि छोटी मूर्तियो की सख्या तो बहुत अधिक हो सकती है। कहते है इस मन्दिर का निमाण ग्यारहवी सदी के प्रारम्भ मे विद्याधर नामक चदेल राजा ने करवाया। इसके अतिरिक्त पश्चिमी समूह मे चौसठ-योगिनी, देवी जगदम्बा, चित्रगुप्त, विश्वनाथ और नदी, मदिर बने हैं, जिनम चौसठ-योगिनी मन्दिर तो 900 ईसवी पूव का बना माना जाता है।

खजुराहो के पूर्वी समूह में बने 6 मन्दिरो म 3 हिन्दू मन्दिर और 3 जन मदिर हैं। दक्षिणी समूह म दूलहदेव और चतुर्भुजजी के मन्दिर प्रमुख है।

जिस सिद्धान्त पर कन्दरिया महादेव मदिर का निर्माण हुआ, उसी सिद्धान्त पर भगवान विश्वनाथ का शैव मन्दिर और भगवान चतुभुज के वष्णव मन्दिर का निर्माण हुआ लगता है। ये दोनों मन्दिर पचायतन वर्ग के हैं, जिसमें हर मन्दिर क चारा कोनो पर चार छोटे मन्दिर होते हैं। विश्वनाथ का मन्दिर जिसका कि निर्माण काल 1000 ईसवी के आसपास माना जाता है, वास्तुकला के अभिनव दृश्य को आलोकित करता है। मन्दिर की दीवारों पर बने चित्रों मे कला के सूक्ष्म बिन्दुओ पर तराशी मूर्तियो मे देवीदवताओ, अप्सराओ,

विध्वस और सृजन के विभिन्न पक्षो, विविध मुद्राओ म नर-नारी के चित्र क्रीडारत बालक बालिकायें, श्रमरत कारीगर और शिकार, सगीत, नृत्य, प्रकृति और भावनाओ के ऐसे अनेक दुलभ चित्र देखते ही बनते हैं।

यहाँ के जैन मन्दिर सख्या म करीब 6 हैं जिनम सबसे पूण उदाहरण जिननाथ का मन्दिर है, जो 60 फीट लम्बा और 30 फीट चौडा मकाननुमा शक्ल मे बना है। इससे कुछ दूर हटकर घटाई मदिर है जो पूरी तरह विद्यमान है जिस देखकर लगता है जैसे ये मन्दिर कभी पूण रत्नवत रहा होगा।

शहर के अविरल कोलाहल से दूर—प्रकृति की गोद म बसा 'खजुराहो' आज भारतीय पयटको का आकर्षण केन्द्र ही नही रहा, अपितु विदेशी दशको क लिये तीथ स्वरूप कला केन्द्र बन गया है। यहाँ के मूर्ति-चित्रण मे मानवीय जीवन के वे सभी पक्ष समाहित हैं जिन्हे जानने के लिये आज मानव की स्थिति वैसी हो रही है जिसके लिये कहा जाता है—

कस्तूरी कुडलि बसै म्रिग ढँढै बन माँहि।

चित्तौडगढ

आप सबने भारतवष के इतिहास मे महाराणा प्रताप, रानी पद्मिनी, भामाशाह, जयमल पत्ता, मीराँबाई, पन्नाधाय, राणाकुभा आदि अनेक महावीरो की गाथायें पढी और सुनी होगी। इन सबका जीवन राजस्थान के मेवाड प्रदेश से जुडा हुआ है। यही मेवाड, आज उदयपुर, भीलवाडा डूगर-पुर, बाँसवाडा और चित्तौड जिला मे बँटा हुआ है। इस मेवाड प्रदेश की पुरानी राजधानी थी, चित्तौड। चित्तौड की प्रसिद्धि का एक मात्र कारण यहाँ का किला है। यही कारण है कि चित्तौड केवल चित्तौड न कहलाकर चित्तौडगढ कहलाता है। यो राजस्थान की वीर गाथाओ के मूक साक्षी किलो या गढो मे आमेर, जैसलमर तारागढ जोधपुर, भरतपुर, गागरोन, कुम्भल-गढ, टोंडगढ़ रणथम्भौर, काडलगढ आदि के नाम गिनाये जाते है लेकिन चित्तौडगढ के लिये यहाँ के घर घर मे एक दोहा प्रचलित है—

ताल तो भोपाल ताल, और सब तलइया।
गढ तो चित्तौडगढ और सब गढइया॥

रूप मे बसा है, जो कई खण्डो मे विभाजित है। पडोस की पहाडियो पर से देखने पर लगता है जस मुख्य एव सहायक सडकों से इस शहर का विभाजन पक्तिबद्ध सुन्दर सहज एव एकरूपतानुसार हुआ है। यहाँ की सडको की चौडाई कोई 34 मीटर है जिसके दोनो ओर जालीदार छोटी छोटी खिडकियो वाले मकान और हवेलियाँ हैं। इनम अब भी अधिकाश का रग गुलाबी है जो सूर्यास्त के समय बहुत ही लुभावना दृश्य उपस्थित करता है।

जयपुर के दर्शनीय महल, चारो तरफ पक्की दीवार से घिरे हैं। इनके दो मुख्य प्रवेश द्वार हैं—त्रिपोलिया और सिरेड्योढी। महल के अहाते म ही मुबारक महल पोथीखाना, चद्रमहल, गोविन्दजी का मदिर, वेधशाला और सिलेखाना है। इस पोथीखाने मे शहशाह अकबर के इतिहासविद् मित्र अबुल फजल द्वारा महाभारत के फारसी अनुवाद रज्मनामा जैसे दुर्लभ प्राचीन ग्रथ हैं, वेधशाला मे महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा निर्मित भारत की पाँच वेधशालाओ मे एक यत्रशाला अर्थात् 'जन्तर मन्तर' है जो स्थानीय समय, सूर्य की अभिनति दिगश और अक्षाश तथा स्थिर नक्षत्रो और ग्रहो की अभिनति को मापने तथा ग्रहण निर्धारण के काम आते हैं और चन्द्रमहल के ठीक सामने गोविन्दजी का मदिर है जो ई० सन् 1734 मे बना तथा जिसकी मूर्ति वृन्दावन स लाई गई।

जयपुर मे तीन प्रमुख चौपड है जो इस नगर की बहुरूपी गतिविधि एव व्यवस्था को विभाजित करती है। बडी चौपड के पास ही है विश्व प्रसिद्ध नौ मजिल वाला हवामहल जिसे महाराजा प्रतापसिंह ने ईसवी सन् 1792 मे बनवाया था। 65 खिडकियाँ और 100 छज्जो का गुम्बद एव आला वाला यह कला पूर्ण 'हवामहल' राजस्थान की कला कीर्ति का दुनिया म प्रतीक रूप जाना जाता है।

नगर के ऊपर पहाडियो से झाँकता नाहरगढ का किला, गढ गणेश और गलताजी यहाँ के चर्चित स्थानो मे है। गलताजी वह स्थान है जहाँ गालव ऋषि ने तपस्या की थी। जहाँ आज भी जल कुण्ड म हजारो श्रद्धालु नियमित नहाने जाते है। नाहरगढ की तलहटी म जयपुर के शासको की छतरियाँ अर्थात् गटोर हैं जो कलात्मक दृष्टि से महत्व की मानी जाती है। सध्या समय जयपुर का अत्यधिक व्यस्त स्थान है—रामनिवास बाग जिसके मध्य है अजायबघर या अल्बट हॉल जिसमे राज्य की गौरव गाथा के साक्षी सर्व साधारण हेतु उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त जयपुर नगर के नसियाँ अर्थात जैन मंदिर, सिसोदिया बाग, त्रिरगाशूली और मोतीडूगरी भी प्रेरक स्थानो मे गिने जाते हैं।

प्राचीन ...

... काढे पर बदल के काम, मिट्टी के

बतन एव पीतल के बतनो पर कसीदेकारी के लिये प्रसिद्ध रहा है। आज भी विदेशी दशको को जयपुर आने पर इनकी जानकारी प्राथमिकता से दी जाती है।

जयपुर नगर राजस्थान का 'दिल' है, जो तेजी से रग तो बदल रहा है पर अपने मौलिक रूप को नही छोड रहा। नवीन एकीकृत राजस्थान राज्य की राजधानी जयपुर, आज राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियो का केन्द्र है, यहाँ आज भी सर्वाधिक पर्यटक आते हैं। गणगोर और तीज के प्रसिद्ध लोकरगी मेलो मे जब हम घाघर लूगडी और सोने के गहने पहिने स्त्रियाँ और अगरखी साफा तथा धोती पहने पुरुषो को इस नगर की सडको पर नाचते-गाते देखते हैं तो मन मे सहसा नई धारणायें ज म लती हैं।

अलगोजो की धुन पर नाचती लगभग साढे पाच लाख नागरिक की इस नगरी मे सभी धम के लोग रहने है, सभी कम के लोग रहते है। आधुनिक सुख-सम्पन्नता एव विकास क्रियाओं से युक्त रगबोध वाले जयपुर नगर मे नूतन और पुरातन के दो स्पष्ट स्वरूप हैं, जो शायद सदियो तक रहेगे।

नाभादास, सत दादूदयाल, रज्जब, बिहारी, प्रतापसिंह ब्रजनिधि जसे साहित्य भक्त, साहिबराम, लालचद, लक्ष्मणदास जैसे चित्रकार और ब्रजलाल उस्ताद चाँदखाँ, द्वारकानाथ भट्ट, मधुसूदन जैसे सगीतज्ञो का नगर जयपुर उन सबका खुला आमत्रण है जिनका कि जीवन और जगत मे विश्वास है।

ऊँचा परबत, सेरबन, कारीगर तरवार।
इतरा वधका नीपजै, रग देस ढूढाड ॥

जतर-मतर

भारतवष मे जिस प्रकार देखने समझने की अनेक बातें है उसी प्रकार राजस्थान के गुलाबी नगर जयपुर मे भी आकर्षण के ऐसे नाना रूप हैं, जिन पर जन सामान्य गव कर सकता है। जयपुर मे हवामहल गलताजी, आमेर के महल, नाहरगढ का किला, सिसोदिया बाग तथा ससार प्रसिद्ध जतरमतर भी इतिहास की अमिट कथाओ से जुडे हैं। राजस्थान की राजधानी जयपुर की यह अपनी विशेषता है कि उसे समय और सत्ता के सभी मान सम्मान मिले हैं। जयपुर नगर का नाम इसके सस्थापक सवाई जयसिंह के नाम पर

रखा गया जो स्वय एक अच्छे प्रशासक, सैनिक और ज्योतिषी थे। गुण और गरिमा की श्रेष्ठता से ही दिल्लीपति औरगजेब ने इन्हें मिर्जा राजा जयसिंह से बढकर तथा सवाया आँक कर इनका नाम सवाई जयसिंह रखा था इनके बाद से ही जयपुर के राजा अपने नाम के आगे 'सवाई' पद लगाने लगे। यो सवाई जयसिंह का बचपन का नाम विजयसिंह बताते हैं तथा इनका जन्म ईसवी सन् 1688 की 3 सितम्बर को हुआ था।

सवाई जयसिंह वीर एव विद्वान राजा थे। सस्कृत व फारसी के तो अच्छे ज्ञाता थे ही पर गणित ज्योतिष के भी अद्वितीय विद्वान थे। कई देशों के प्रसिद्ध ज्योतिषी इनके दरबार में थे। इन्होने कई विद्वानो को विदेशों मे भेजा और शुद्ध ग्रह गणित तैयार करवाया। ईसवी सन् 1725 मे सवाई जयसिंह ने तत्कालीन बादशाह के नाम से शुद्ध ग्रह नक्षत्रो की समय सारणी बनवाई तथा उसका नाम 'जजी मुहम्मदशाही' रखा। इन्होने 'जयसिंह कारिका' नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ की रचना भी की। इन्ही के आश्रित विद्वानो मे से जगन्नाथ ने युक्लिड की रेखागणित का अरबी से सस्कृत मे अनुवाद किया तथा "सिद्धान्त कौस्तुभ' और 'सम्राट सिद्धान्त' ग्रन्थो की रचना की थी। साथ ही इसी समय के केवलराम ज्योतिषी ने लागेरियम का फल मे सस्कृत में अनुवाद किया और उसका नाम 'विभाग सारणी' रखा। उन्होने ही मिथ्या जीव छाया सारणी, दक्पक्ष सारणी, दृकपक्ष ग्रन्था, तारा सारणी, जयविनोद सारणी आदि ग्रथो की रचना की। उदार और धर्मात्मा प्रवृति के सवाई जयसिंह ने जहाँ दानादि मे करोडो रुपये खर्च किये वहाँ आमेर मे कई महल, नाहरगढ, मोती डूगरी का किला, गणेशगढ आदि का निर्माण कराया। ऐसे कलापडित राजा सवाई जयसिंह के लिये पडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था—'एक दूसरा और ही ढग का हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञ राजपूताना मे जयपुर का सवाई जयसिंह था।' जयपुर के ऐसे कर्मावीर राजा सवाई जयसिंह ने ही ससार प्रसिद्ध जतर मतर अर्थात वेधशाला का निर्माण करवाया था। सवाई जयसिंह अपने को सदैव यूरोपीय विज्ञान प्रगति के सम्पर्क मे रखते थे, हालाँकि यूरोपीय ज्योतिष नियमो से विपरीत यह अपनी अलग ज्योतिषीय मान्यता रखते थे। आपको आश्चर्य होगा कि किसी निर्णय की सूक्ष्मता को जानने हेतु वे स्वय घण्टो वेधशाला मे उपस्थित रहते थे। इन्होने ज्योतिष की अग्रिम जानकारी के लिये विदेशो मे भी अनेक लोगों को भेजा। इनके पुस्तकालय मे प्रसिद्ध ज्योतिर्विद आर्यभट्ट भास्कराचार्य के अतिरिक्त अनेक पश्चिमी एशिया व यूरोप के ज्योतिषाचार्यों के अमूल्य ग्रन्थो का होना इस बात का प्रमाण है कि इन्हे ज्योतिष से प्रगाढ प्रेम था।

जयपुर का जतर मतर देश के अन्य चार जतर मतर मे सबसे बडा है।

जयपुर के अतिरिक्त मथुरा, बनारस, दिल्ली और उज्जैन मे भी सवाई जयसिंह द्वितीय ने जतर-मतर बनवाये थे। इस वेधशाला का अपना गौरव है जो सामा न्यत अन्यत्र नही देखा जाता। यहाँ के प्रमुख यत्र है—नारीवलिया द सन डायल, ध्रुवनाल, राजयत्र, क्रान्तियत्र भीत्तियत्र प्रि स आफ डायल्स, राशि यत्र, जयप्रकाशयत्र, कपालियत्र, चक्रयन्त्र रामयन्त्र, दिगशयन्त्र और ध्रुवयत्र। इन विविध यत्रो को मिलाकर जयपुर का पूण जतर मतर बनता है जिसके माध्यम से ग्रह नक्षत्रो की बहुविधि स्थितियो को जाना जाता है। हवामहल के पिछवाडे और जलेबी चौक के पास बना यह जतर मतर राजस्थान ही नही अपितु ज्योतिष क्षेत्र मे समूचे ससार की प्रशसा का विषय है।

जयपुर के जतर मतर को देखकर आज भी ऐसा लगता है जैसे हम किसी चित्र विचित्र के बीच खडे हो।

जलियाँवाला बाग

अब से 70 साल पुरानी बात है अमृतसर (पजाब) म, पजाब के प्रसिद्ध पव वैशाखी की धूम थी। लोगो से मुक्ति और आनन्द की नई कहानियाँ जन्म ले रही थी। अग्रेजो का जमाना था। अत्याचार तथा अन्याय का सारे देश म बोलबाला था। नित्य नये कानून सरकार बनाती और स्वतन्त्रता के सेनानी उसकी अवहेलना कर, भारतीय आजादी की माँग दोहराते। 1857 ई के स्वतन्त्रता आन्दोलन ने देश मे जिस क्रान्तिकारी भावना को जन्म दिया, वह पजाब के घर-घर मे पल्लवित हो रही थी। 13 अप्रल 1919 ई को वैशाखी के दिन सपरिवार हजारो लोग जलियाँवाला बाग मे एकत्रित हुए थे। स्मरण रहे सन् 1816 ई मे वैशाखी के दिन ही सिक्खो के दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने 'खालसा' की रचना की थी। शुभकार्यों के लिये शस्त्रो की पूजा करते हुए गुरु ने कहा था—

नमो शास्त्रपाण, नमोशस्त्र माण।
जिते शस्त्र नाम, नमस्कार ताम॥'

अर्थात्—'नमस्कार श्री खडग को, करो सुहित चितलाभ।' इसी अवसर पर गुरु गोविन्दसिंह ने 'पच प्यारो' का चुनाव किया और सकल्प लिया कि

'सवालाख स एक लडाऊँ, तभी गोविन्दसिंह नाम कहाऊँ।' ऐसे सामाजिक एवं धार्मिक अवसर पर कहते हैं कोई दस हजार लोग जलियाँवाला बाग म थ। इस पर्व से पूर्व अंग्रेजों के द्वारा दमनकारी धाराओं के अन्तर्गत 'रौलट एक्ट' पेश किया गया जिसको लेकर वातावरण में गहरा तनाव था। देशभर में सत्याग्रह और सभाओं का आयोजन किया गया था। तभी 12 अप्रैल सन् 1919 ई को जनरल डायर पंजाब के नये गवर्नर नियुक्त किये गये। दूसरे ही दिन 13 अप्रैल को जनरल डायर ने अपनी फौज के साथ पूर्वनियोजित योजना के अनुसार शाम करीब साढ़े चार बजे जलियाँवाला बाग को घेर लिया। वैशाखी मनाने आये निहत्थे लोगों से, राजनैतिक प्रतिशोध लेने हेतु फौज ने अंधाधुंध गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया। लोगों में भगदड़ मच गई। छोटे छोटे बच्चे और स्त्रियों की चीख पुकार से सिक्खों का धर्म केन्द्र अमृतसर गूंज उठा। देखते ही देखते लाशों का अंबार लग गया। किसी का अनुमान है 500 मरे किसी का अनुमान है 600 मरे लो किसी का अनुमान है कि 1000 व्यक्ति जलियाँवाला बाग गोलीकाण्ड म शहीद हुए थे। जलियाँवाला बाग की घटना के सम्बन्ध में जांच कमिश्नर के सामने जनरल डायर ने यह तक कहा था कि—

'मैंने गोलियाँ चलवाई और तब तक चलवाता रहा जब तक भीड़ हट नहीं गई। मेरा फर्ज था कि मैं ऐसी कार्यवाही करूँ जिसका नैतिक और व्यापक प्रभाव पड़े और इस नाते मैंने जो कुछ किया उतना तो मुझे कम से कम करना ही चाहिए था। यदि मेरे पास और ताकत होती तो और अधिक लोग मरते।'

जनरल डायर के इस नृशंस काम पर प्रतिशोध हेतु पंजाब में सुनाम गाँव के उधमसिंह ने गोली चलाकर उसकी हत्या कर दी थी। अमृतसर की सकरी गलियों म जाते हुए आज भी मन को सहसा गोलियों की आवाज का भ्रम होने लगता है।

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड का राजनीतिक परिणाम, भूकम्प की तरह था। महात्मा गाँधी का आगमन तथा जन आन्दोलन के साथ-साथ जलियाँवाला बाग के बारे में पंजाबी में छोटी छोटी कविताएं व गीत लिखे गये। प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिये गये। सरोजनी नायडू ने अपनी कविता में उस समय पंजाब को द्रोपदी कहा तथा दुर्योधन के अपमान से बचाने के लिये जागृत भारतीय देशभक्ति को भगवान श्रीकृष्ण। कवीन्द्र रवीन्द्र ने जलियाँवाला बाग की प्रतिक्रिया स्वरूप अंग्रेज सरकार को 'नाईट' का अलंकार लौटा दिया। यहाँ तक कि रूसी कवि निकोलाई तिकानोव और पंडित नेहरू ने भी जलियाँवाला बाग पर मार्मिक उल्लेखाभिव्यक्ति की। 'हिन्दू मुसलमान की जय का

नारा सुनाई देने लगा तथा डॉ० सैफुद्दीन किचलू के नेतृत्व मे पजाब मे राष्ट्रीय एकता की शक्तिशाली चेतना व्याप्त हो गई।

अग्रेजो की 'फूट डालो और राज्य करो' कि नीति को एक बार फिर मुह की खानी पडी। जलियावाला बाग की स्मृति, भारतीय जन-जीवन की पावन धरोहर है। अमृतसर के स्वण मदिर से धम की सतत ज्ञानधारा क साथ-जलियाँवाला बाग के शहीदो सकल्प हमे सदियो तक प्रेरणा देते रहेग। जलियाँवाला बाग और वैशाखी, बलिदान और खुशहाली य दोनो अब एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं।

गुर गोविन्दसिह रचित 'चडी चरित्र' के अनुसार—

देह शिवा वर मोहि इहै शुभ करमन ते कबहू न टरो।
न डरौं और सा जब जाय लरौं, निसचैकर अपनी जीत करौ॥

जैसलमेर

मथुरा काशी प्रागवाड, गजनवी अरु भटनेर।
दिगमदिरावल लोद्रवो, नम्मो जैसलमेर॥

राजस्थान की पश्चिमी सीमा का प्रमुख जिला जैसलमेर, सस्कृति की विचित्रतम इकाईयो मे गिना जाता है। थार के रेगिस्तान को अपनी बाहो मे समेटे हुए जैसलमेर मन्दिर, महल और दुर्गो का ऐसा कथा गीत है, जिसे भाटी राजपूतो ने अपने रक्त से लिखा है। जैसलमर के सम्बन्ध मे प्राय सोचा जाता है कि यह वह धरती है जहाँ पीने को पानी नही, यातायात को वाहन नही, और जहाँ दूर दूर तक आदमी के दशन दुलभ हैं। मृग मरीचिका की बात यहाँ पग पग पर चरिताथ होती है। सिन्ध पाकिस्तान एव बीकानेर जोधपुर और बाडमेर जिलो की सीमा से जुडा जैसलमेर प्राचीन प्रस्तरलेखो के अनुसार 'वल्लदेव' और माड' प्रदेश है। कहते हैं जब से जैसल भाटी द्वारा इसे बसाया गया यह जैसलमेर कहलाने लगा। जैसलमेर नगर के आसपास लगभग 65 किलामीटर की भूमि पथरीली है, वरन् यह सारा प्रदेश, बालूरेत का घर है, जिसे इतिहास 'उतर भड किवाड' अर्थात उत्तरी सीमा का द्वार या पश्चिमी पाल रूखाल अर्थात पश्चिमी सीमा के प्रहरी रूप म जानता है। प्रकृति का थका रूप यहाँ चारो तरफ देखा जाता है। शायद यही कारण है कि इस प्रदश को अकाल के स्थाई निवास के रूप म माना गया—

पग पूगल धड़ कोटड़ै, बाहू बायड़मेर ।
फिरतो घिरतो बीकपुर, ठावो जैसलमेर ॥

अर्थात अकाल के पैर पूगल मे, धड़ कोटड़े में और भुजाएँ बाड़मेर म रहती है । वह घूमते फिरते बीकानेर भी पहुँच जाता है, पर जैसलमेर म तो वह निश्चित रूप से मिलता है ।

भेड़ बकरी और गायो के झुड यहाँ की सम्पन्नता के चिन्ह हैं क्योकि यहाँ के लोग खेती से कम लाभ प्राप्त कर पाते हैं ऐसी स्थिति म इनका मुख्य धन्धा पशु पालन ही है ।

इस राज्य मे पत्थर की खानें बहुत हैं जिनसे स्याह, पीला, लाल, आदि कई रंग के नक्काशी पत्थर निकलते हैं । यहाँ के पत्थर का आगरे के ताज महल एव दिल्ली की शाही इमारतो मे लगाया गया साथ ही स्थापत्य नगरी जैसलमेर को देखकर यह आश्चय करना पड़ेगा कि जसलमर का पीला पत्थर कितना अद्वितीय है । सूर्योदय के समय जसलमर की इमारतें स्वण रूपी लगती हैं—यही कारण है कि इस नगरी को स्वणपुरी नाम से भी जाना जाता है । वक्ष और वनस्पतियो मे रोहिड़ा, थोर, खेजड़ा, आक, कर, कुमट फोग, भुरट आदि अधिक पैदा होते हैं । जगली जानवरो म नील गाय, शेर चीत बाघ और हिरण यहाँ मिलते हैं । साथ ही पीवण साँप यहाँ बहुत होते हैं, जो काटता नही है, पर मनुष्य के पास बैठा विषैली श्वास छोड़ता रहता है जिससे कि मनुष्य मर जाता है । लहसन प्याज और ज्वार-बाजरा यहा के लोग अधिक खाते हैं । यहाँ हम जैसलमेर राज्य की लोक सस्कृति को विस्तार से प्रस्तुत नही कर रहे हैं, वरना यह आश्चय की एक लम्बी कहानी बन सकती है । कम सुविधाओ म पलने वाले शरीर से कितनी शक्ति एव सौंदय वाले हैं इसकी साक्षी तो वे अखियातें हैं जिनमे जैसलमेर के सार्थ वर्णित है और कहा गया है—

मारवाड़ नर नीपजै, नारी जैसलमेर ।
सिन्धा तुरही साँतरा, कटहल बीकानेर ॥

अर्थात—मारवाड़ मे मर्द, जैसलमेर म स्त्रियाँ, सिन्ध मे घोड़ और बीकानेर मे ऊँट अच्छे होते ह ।

जसलमेर राज्य मे अधिकतर राजपूत रगड़ तथा शख मुसलमान, मेघ वाल, माहेश्वरी विश्नोई और पुष्करणा ब्राह्मण रहते ह । यहाँ की मुख्य सवारी ऊँट है तथा इसके द्वारा ही अरब देशो से व्यापार का उल्लेख हमें जैसलमेर के इतिहास मे मिलता है । यहाँ के बने ऊँनी कबल, पत्थर के प्याले, माला के मणके और हाँथी दाँत के गहने बहुत प्रसिद्ध हैं । एक समय था

जब लोग यहाँ बिखरे पत्थर के छोटे टुकड़ो को बोरियों म भर-भर कर ले जाते थे, ताकि वे उमे कलाकृति मे बदल कर बेच सकें। मुख्य रूप से धनी और मारवाड़ी ही यहाँ के लोग बोलते व समझते है।

जैसलमेर जिले मे लोद्रवा, वैशाखी, बीकमपुर, देवीकोट, सीरवा, बरसलपुर तनोट, नाचणां, लाठी, खुईयाला, रामदेवरा, आदि कई उल्लेखनीय स्थान है जिनका कला व सस्कृति से सदियों पुराना सम्बध है। लोद्रवा जैसलमेर की प्राचीन राजधानी है, जहाँ के जैन मन्दिर देखकर कला शिल्पियो को नत होना पड़ता है। मुख्य नगर जैसलमेर म किला, जैन मन्दिर, पटवो की हवेलियाँ, ज्ञान मन्दिर आदि दर्शनीय है। जैसलमेर का किला राजस्थान का प्राचीनतम किला माना जाता है, जिसके भीतर ही प्राचीन जैसलमेर नगर बसा है। किले पर ही प्रसिद्ध जन मन्दिर है, जिनमे बारीक नक्काशी का काम देखते ही बनता है। जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप म जैसलमेर की चर्चा का एक और प्रमाण है। यहाँ का ज्ञान मन्दिर, जहाँ कि ताड पत्रो पर लिखे सस्कृत एव प्राकृत भाषा के दुर्लभ ग्रथ सग्रहीत है।

पौराणिक प्रसगों के अनुसार यह वह जैसलमेर है, जहाँ कभी समुद्र लहराता था। यहाँ बौद्ध सस्कृति फली फूली जहाँ चीनी यात्री ह्वेनसाग का इस क्षेत्र से होकर जाना हर्षकालीन समाज की धमकथा का परिचय देता है। यहाँ भगवान कृष्ण का मथुरा से द्वारका जाने का मार्ग भी जैसलमेर होकर बताया जाता है। भगवान राम द्वारा अग्निबाण छोड़ना एव यहाँ के समुद्र का सूख जाना, एक और प्रमाण है जो जैसलमेर की पुरातन भूमिका को स्पष्ट करता है। सिकन्दर की सेनाएँ यहाँ से निकली, हूणो ने यहाँ आक्रमण किए, महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी और अलाउद्दीन खिलजी ने इस प्रदेश को युद्ध का मैदान बनाया। ये सारे प्रसग जैसलमेर जिले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के मूल है, जिन्हें यहाँ के मनोरजन करने वाली जाति 'लगा' गीतो मे गाती है। आज भी मूमल महेन्द्र, राणा काछवा, चिरमी, चरखा, सुवटिया, झरोखे, ढोला मारू आदि के गीत सुनकर यहाँ की सस्कृति की जीवनता का आभास हर एक को होता है। रग बिरगे कपड़ पहिनने वाले यहाँ के निवासी, दिल के कितने रगीन हैं इसका स्वरूप आप केवल जैसलमेर के रेतीले टीला पर चाँदनी रात बिताकर ही जान सकते हैं। अन्यथा नही—

> घर घर निपजे पदमणी, अही धरा जेसाण।
> उर चौडा कटी साँकडी, जीकारै री बाण॥

ख्वाजा की दरगाह

हिंदुस्तान की पवित्र भूमि शांति और अमन की भूमि है। इसकी पवित्र धूलि को ऋषियों मुनियों और पीर फकीरों ने सदा माथे से लगाया है। जहाँ मंदिर मस्जिद और गुरुद्वारे एक ही समान आदरणीय हैं। हिंदू मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई जहाँ अपने आपको भारतीय कह कर गौरवान्वित होते हैं। विविधता में एकता की ऐसी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ आकर पराये भी अपना परायापन खोकर यहीं के होकर रह गये, अपनों से भी अधिक पूज्य। इसकी एक मिसाल है ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती। ख्वाजा गयासुद्दीन और बीबी माहनूर का यह नूर सीस्तान के कस्बे अस्फहान में सन् 530 हिजरी में प्रकट हुआ। इनके पिता अपने जमाने के बड़े अच्छे बुजुर्ग थे। माँ बीबी माहनूर गासुलआजम अब्दुलकादरजी लानी की बहन होती थी। इस प्रकार ख्वाजा साहब को ईश्वर भक्ति का वातावरण विरसे में मिला। 15 वर्ष की अवस्था ही में पिता का साया सिर से उठ गया। उन्हीं दिनों हजरत इब्राहीम कन्दोजी के सम्पर्क में आये। बस अपना सब कुछ बेच कर दीन दुखियों में बाँट दिया और सत्य की खोज में निकल पड़े। आपने समरकंद बुखारा, श्याम, बगदाद, मक्का और मदीना की यात्राएँ की। पचपन वर्ष की अवस्था में आप अजमेर आये। उस समय अजमेर का राजा पृथ्वीराज था। यहीं सन् 627 हिजरी के रज्जब महीने की 6 तारीख को आपका विसाल अर्थात निधन हुआ। उस समय आपकी आयु 97 वर्ष की थी।

अजमेर शहर के दक्षिण पश्चिमी भाग में तारागढ़ की तलहटी में झालरा झरने के किनारे चारों से घिरे वन में एक कच्चा मजार था—ख्वाजा साहब की समाधि—जो आज दरगाह शरीफ है अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की। मक्का मदीना के बाद यह सबसे बड़ी जियारतगाह है। विश्व के कोने कोने से लाखों लोग दरगाह में उपस्थित होते हैं और मन की मुराद पाते हैं। दरगाह का निर्माण विभिन्न लोगों ने विभिन्न समय पर करवाया है। सबसे पहले सुल्तान गयासुद्दीन के हुक्म से मज़ार शरीफ की पुख्ता तामीर हुई और गुम्बद बना जहाँगीर के राज्य काल में। गुम्बदशरीफ के पास ही है ख्वाजा साहब की बेटी का मकबरा और पूर्व में है बेगमी दालान। इसे जहाँआरा बेगम ने बनवाया था।

सामने ही अहात ए नूर है। बाजू मे है आलमगीरी मस्जिद। मस्जिद के पिछवाडे है बाबा गजशकर का चिल्ला और उसक सामन है—शाहजहाँनी मस्जिद। सगमरमर की यह इमारत वास्तुकला का एक बेजोड नमूना है। यही जुमे की नमाज पढी जाती है और न जाने कितने जाने माने पीर फकीरो के मजार हैं दरगाह के अहाते मे।

अन्य इमारतो मे हैं अकबरी मस्जिद, महफिलखाना, लगरखाना और दरवाजे।

दरगाह से दरगाह शरीफ मे प्रवेश का जो विशाल दरवाजा है, उसका नाम है फलक बोस यानी गगन चुम्बी, दरवाजा। इसकी ऊँचाई वास्तव म इसके नाम को सार्थक करती है। 1930 ई मे इसे निजाम हैदराबाद ने बन वाया था। इसी पर नौबत और घडियाल बजने का प्रबन्ध है। इसस आगे सहन पार करते ही आता है शाहजहाँनी दरवाजा या कल्मा दरवाजा। नक्कार खाना इसी पर है। बगाल विजय के बाद सम्राट अकबर ने जो दो नक्कारे पेश किये थे इसी दरवाजे पर रखे है। लाल पत्थर के इस द्वार को शाहजहाँ न बनवाया था। इसके दाँई तरफ आजकल यूनानी दवाखाना है जो यात्रियो की सेवा मे लगा रहता है। यूनानी दवाखाने के करीब से ऊची सीढियो से होकर अकबरी मस्जिद म प्रवेश होता है। इसे अकबर ने शहजादे सलीम की पैदाइश पर बनवाया था। दरगाह शरीफ की सभी इमारतो मे बलन्द, सगेमर मर और सगेमूसा से बना बुलन्द दरवाजा देखते ही बनता है। इसकी बुर्जियो पर सुनहरे कलश हैं। आगे है सहन चराग इसम बहुत स चरागो वाला एक चरागदान रखा है, सम्राट अकबर ने इसे पेश किया था। दूसरी तरफ है लगर-खाना। इसमे एक बहुत बडा लोहे का कढाव है जिसमे हर रोज जौ का दलिया पकता है जो गरीबो मे बाँट दिया जाता है। कहते है पिछले चार सौ वर्षों से लगभग दो हजार गरीबो को रोज यहाँ खाना दिया जाता रहा है।

बुलन्द दरवाजे के दाएँ दो देगें हैं। दाँई तरफ बडी देग है जिसे अकबर ने स्थापित किया था और बाँई तरफ की छोटी देग को जहाँगीर ने। उसके जमाने मे छोटी देग मे अकीदतमन्द खाना पकवाते है जो लूटा जाता है। ये लूटने वाले एक ही खानदान के होते हैं। ये लोग देग लूटने के लिये मोट मोटे टाट के कपडे पहन कर बालटियो से खाना लूटते हैं यह दृश्य भी देखने का ही होता है। अकीदतमन्द लोग इस खान को खरीदते है और खाते हैं तथा अपने साथ भी ले जाते है।

हर साल ख्वाजा साहब का उस बडे धूम धाम से मनाया जाता है। वैसे तो एक महीने पहले ही अजमेर शरीफ मे रेलपेल नजर आन लगती है लेकिन

रज्जब महीने की तारीख से उस शुरू होता है और 6 को कुल शरीफ की रस्म अदा होने के बाद भीड छँटने लगती है। और दसवी को रुखसती के सलाम के साथ साथ शहर खाली हो चलता है।

उस के दौरन हर तरफ अकीदत म दो का जोर, दीवानो का शार अल्लाह के ना अरे, दुरद के तराने, मुराद मॉगने वालो का गिडगिडाना ख्वाजा के मतवालो का हगामा, चादरो का जुलुस और कव्वालियो के जमघट लग रहते हैं। अजीब सुहावना दश्य होता है। कोई कव्वाली सुनने मे लीन है तो कोई तिलावते कुराने मे। कोई फातहा पढा रहा है तो कोई रोजे की जाला पकडे खडा है। अपनी अपनी मन की मुराद पाने मे लगे है।

इस दरगाह पर हर धम के लोग समादर भाव म आकर अपनी श्रद्धा क फल चढाते हैं। ख्वाजा गरीबनवाज सदा अपने जीवन काल मे जात पाँत के भेद भाव से दूर रहे। इ होने कभी किसी धम को बुरा नही कहा। कभी गुस्सा नही किया जबरदस्ती कभी अपनी बात नही मनवाई। आपका मकसद था इसान को इ सान स हमदर्दी सिखा कर आपसी भाईचारे की शिक्षा देना। तभी आज हर इसान चाहे वह किसी धम का हो दरगाह मे आकर नत मस्तक हो जाता है।

कुल्लू घाटी

भारतवष मे यो तो ऐमे बहुत स्थान हैं जिनके महत्व को भुलाया नहीं जा सकता लेकिन नवगठित हिमाचल प्रदेश' की कूल्लू घाटी की चर्चा हम सब बिना अतिशयोक्तिपूण वणन के नही कर सकते। जैसा की नाम से स्पष्ट होता है यह प्रदेश प्रकति का शृगार स्थल है। हिमालय की गोद मे अवस्थित इस कुल्लू घाटी मे वष के अधिकाश दिनो मे सफेद चाँदी सी बफ जमी रहती है। यहाँ दिल्ली से चण्डीगढ, कालका और शिमला होकर जाना पडता है। शिमला तक रेल द्वारा आन के बाद 201 किलोमीटर मोटर से चलकर हम कुल्लू घाटी मे पहुँच सकते हैं। शिमला से कुल्लू घाटी का यह दुगम पवतीय माग मोटर स 4 दिन मे तथा पैदल चलकर 11 दिन म पार किया जा सकता है। कूल्लू घाटी लगभग 60 किलोमीटर लम्बी और डेढ किलोमीटर चौडी है। दोनो ओर ऊचे पवत शिखर और बीज (Bees) नदी की बहती जलधारा मे लिपटी यह घाटी कहीं खुली और कहीं सकरी है। ऋतुपरिवर्तन के साथ साथ

इस घाटी का मनोहारी सौंदय भी बदलता रहता है, माच महीने मे खूबानी और जून मे अखरोट की छटा के बाद सितम्बर में वर्षा की फुहारा से भीगती कुल्लू घाटी नवम्बर सितम्बर मे बर्फ की दूधिया पोशाक मे धरती पर स्वग की कल्पना को साकार करती लगती है। पेडो पर झूलती बर्फ और घाटी मे तैरती सूय की किरणें, इस पवतीय अचल की कमनीयता की मूक साक्षी है। केसधर और चन्द्रखानी और हम्तानाला से रोहताग दर्रे तक तरह तरह के फूलो से लदी कुल्लू घाटी की जनसख्या लगभग साढे पाँच लाख है। यह दो भागो में विभाजित है पहली कुल्लू और दूसरी सराज। उत्तर लाहुल स्पिती और पूव-दक्षिण मे महासुई पहाडी तथा पश्चिम मे काँगडी और चबियाली-प्रदेश मे घिरी कुल्लू घाटी को कुलूत, कुलिदा या कुनिदा नाम से भी जाना जाता है। ह्वेनसाग की यथा यात्रा और सस्कत ग्रथो मे वर्णित कुल्लू घाटी मे केवल सात प्रतिशत कपि योग्य भूमि है। सतलज और व्यास इस प्रदेश की मुख्य नदियाँ हैं, जिनके किनारे कोटगढ कुम्हार सेन, शागरी और मण्ड नामक बस्तियाँ है।

परम्परा के अनुसार कुल्लू का इतिहास महाभारत मे चला आता है। कहते हैं कुल्लू मे एक समय तडी राक्षस का राज्य था, वह अपनी बहिन हिडबा के साथ रोहताग दर्रे के दक्षिण मे रहा करता था। पाडवो के वन प्रवास मे लोगो ने भीम से प्राथना की कि वह उन्हे तडी राक्षस के अत्याचारो से मुक्ति दिला दे। इस पर भीम ने तडी को युद्ध मे परास्त कर उसकी बहिन हिडबा को स्वीकार लिया। एक किंवदती यह भी है कि पांडवा ने कुल्लू प्रवास के दिनो डुगरी वन मे शरण ली। आदिवासियो के मुखिया तडी को परदेशियो का यहाँ आकर बसना अप्रिय लगा। उसने अपनी बहिन हिडबा को पाण्डवो को मारने के लिये कहा। जब हिडवा पाण्डवा को मारने गई तो उसने भीम को पत्थर पर सिर रखे साते पाया। भीम के सौ दर्य पर मुग्ध हो हिडबा भाई का आदेश तो भूल गई और भीम से प्रणय की भीख माँग कर उसकी पत्नी बन गई। इसी हिडबा की पुत्री का विवाह व्यास पुत्र विदुर से हुआ, इससे इनके मकर अर्थात कुल्लू और भोर अर्थात तिब्बत नामक दो सतान जन्मी, जिनके कि नाम पर फिर इस प्रदेश का नामकरण हुआ। कुल्लू घाटी की भाषा कुलुई कहलाती है जो हिमालय प्रदेश महासू जिले के उत्तर मे सराहन पूर्वोत्तर मे कोटखाई, जुब्बल, घरोच और दक्षिण मे बलसन ठयोग और फागू तक बोली जाती है। इस घाटी की लिपि टक्करी या टाकरी कहलाती है जो कश्मीर की शारदा और पजाब सिंध की लडा लिपि से साम्य रखती है।

कुल्लू घाटी का अपना साहित्य है जो गद्य लाक कथाओ और लाकोक्तियों के रूप मे मिलता है। यहाँ की कुछ लोकोक्तियाँ देखिये—

कौदरे बालो तोगे, पैसे वालो तोगा पाले' अर्थात—अन्नवाला घर में, पसो वाला घर के बाहर, अन्नवाला धनवाले से बडा। 'भौरी शीरे कुलाविनाश भौरी जमी बिऊ विनाश' अर्थात बडा परिवार कुल का नाश, अधिक भूमि बीज का नाश।

कुल्लू घाटी के पद्य साहित्य मे वीरगीत अर्थात पँवाडे और कथा गीत हैं—जैसे राजा भरथरी। इसी प्रकार कुल्ल की लोक सस्कृति के परिचायक लोक गीतो म अन्य प्राता की भाति ही धार्मिक, श्रम देवी देवता त्योहार, प्रेम घर गृहस्थी सस्कार आदि का विस्तृत वणन मिलता है। साथ ही राजस्थान की भाति कुल्लू घाटी के गीतो मे बारहमासा काव्य की परम्परा भी प्राप्त होती है। छरहरे बदन के गौरवण युवक और युवतियाँ कुल्लू घाटी के निश्चल सौन्दय की विशेषता हैं। नाचने गाने मे अत्यधिक रुचि रखन वाले कुल्लू घाटी के निवासी स्वभाव से भोलेभाले और मितभाषी होते हैं। देवी देवताओ मे विश्वास करते हैं तथा त्योहारो को धूम धाम से मानते हैं। 'दशहरा कुल्ल घाटी का भारत प्रसिद्ध त्योहार है जब हिमालय की तराई मे फल फूलो से लदी घाटी के बीच लोकरूप का हँसते गाते और खेलते कूदते देखा जा सकता है। यह वही कुल्लू घाटी है जहाँ का सेब और सौन्दय धरती पर बेजोड है। पश्मीना ऊन से बने शाल कुल्लू के कला उद्योग की प्रमुख देन ह जिसे विदेशा मे भी सराहा जाता है। लम्बे समय से देश के दूसरे भाग से दूरी बने रहने के कारण यहाँ के लोगो की कुछ विशेषताएँ ज्यो की त्यों शेष है। जहाँ कुल्लू घाटी के शात एव साहसी व्यक्ति दिनभर हुक्का पीते हैं और ऊन बुनते हैं वहाँ चाँदी के गहने पहिनने की शौकीन रागात्मक चेहरों वाली कुल्लू युवतिया घर और खेत का सारा काम काज देखती है। मनाली, बाजौरा मण्डी, नग्गर छदेरखानी मलाना, कोटी, ओट नामक रमणीय स्थला से घिरी, पयटका की प्रणय भूमि और गायको की कथाभूमि, कुल्लू घाटी धरती पर मानव की कल्पनाओ का भव्य चित्र है जिसे बिना देखे निश्चय ही हम सब का जीवन अपूण कहलायेगा।

जगन्नाथपुरी

हमारे पूर्व पुरुषों की यह परम्परा रही है कि उन्होंने जो श्रेयस्कर समझा उसे पुण्य के साथ जोड़ दिया। चार धामों की यात्रा को इसी दृष्टि से अनिवार्य और पुण्यकर बताया गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो चारों धामों की यात्रा समन्वयकारी है जो हमारी संस्कृति की मूल भावना है। मैं सोचता हूं जब दक्षिण का निवासी देश की लम्बाई को पार कर हिमालय की गोद में स्थित बदरिकाश्रम पहुंचता होगा तो उसकी आत्मा को कितना सुख, कितनी शांति मिलती होगी, इसी प्रकार उत्तर का निवासी भारत के दक्षिणाचल में खुले समुद्र के तट पर रामेश्वरम् के दर्शन करता होगा तो निश्चय ही उसके हृदय में आनन्द का सागर उमड़ पड़ता होगा। पर यह तो उत्तर और दक्षिण की बात हुई। क्यों न मैं चर्चा पूरब से आरम्भ करूँ। आइए सबसे पहले जगन्नाथपुरी चलें।

भारत की चारों दिशाओं में चार युगों के प्रतीक, चार धाम, भारतीय जनमानस की धार्मिक एकता के प्रतीक हैं। जिस प्रकार उत्तर में बद्रीनाथ सतयुग का, दक्षिण में रामेश्वरम् त्रेतायुग का, पश्चिम का द्वारकानाथ द्वापर-युग का पुण्य स्थल है उसी प्रकार पूर्व में जगन्नाथपुरी, कलियुग का प्रमुख तीर्थ केन्द्र है।

जगन्नाथपुरी में, जैसा कि नाम से ही विदित है जगन्नाथजी का एक विशाल मन्दिर है, जो पुरी शहर के बीच में समुद्र से करीब एक मील उत्तर में बना हुआ है। पुराण की कथा के अनुसार इस मन्दिर को विश्वकर्मा ने बनाया था। लेकिन इतिहास में इसे ग्यारहवीं शताब्दी के गंगदेव चोल द्वारा बनवाए जाने का उल्लेख मिलता है। इस मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है—द्वारका में श्रीकृष्ण की पटरानियों ने एक बार रोहिणी के भवन में जाकर उनसे अनुरोध किया कि वे उन्हें श्याम सुन्दर के ब्रजलीला सम्बन्धी गोपी-प्रेम प्रसंगों को सुनायें। रोहिणी ने काफी आनाकानी के बाद ये बात स्वीकार कर ली, लेकिन सुभद्रा का वहाँ रहना उचित न था अतः उसे द्वार पर चौकसी हेतु खड़े रहने को कहा गया। रोहिणी ने लीला वर्णन प्रारम्भ ही किया था कि बलराम और श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचे। सुभद्राजी ने उन्हें

हाथ फैलाकर, भीतर जाने से रोक दिया। इसी अवसर पर वहाँ नारदजी आ पहुँचे और उन्होंने श्रीकृष्ण से अनुरोध किया कि वे कलियुग में भी इसी रूप में विराजमान हों।

समय बीतता गया मालव देश के राजा इन्द्रद्युम्न को पता चला कि उत्कल प्रदेश में नीलाचल पर्वत पर भगवान नील माधव का देव पूजित श्री विग्रह है। राजा सपरिवार इस स्थान पर आये पर उन्हें भगवान के दर्शन न हुए। एक दिन राजा ने समुद्र में बहुत बड़ा काष्ठ (महादारु) बहते देखा। राजा ने इसे समुद्र से निकलवाकर इसकी (मूर्ति) बनवाने का निश्चय किया। दुर्भाग्यवश मूर्तिकार जगन्नाथ बलराम और सुभद्रा की ये मूर्तियाँ पूरी न कर सका और उसका देहान्त हो गया।

इसके बाद ये अधूरी मूर्तियाँ ही मन्दिर में स्थापित कर दी गई थी।

जगन्नाथजी का मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर दो परकोटों के अन्दर है, इसके चारों ओर चार द्वार है—पूर्व में सिंह द्वार, दक्षिण में अश्वद्वार पश्चिम में व्याघ्रद्वार और उत्तर में हस्तिद्वार। मन्दिर की मुख्य मूर्तियाँ बड़े अंधेरे में स्थापित की गई है जहाँ 25 सीढ़ियाँ चढ़ कर जाने पर पुजारी दीपक जला कर उन मूर्तियों के दर्शन कराते है। कहा जाता है कि ये 25 सीढ़ियाँ प्रकृति के 25 विभागों की प्रतीक हैं।

यों तो जगन्नाथ मन्दिर को विष्णु मन्दिर माना जाता है, लेकिन वहाँ विश्वनाथ पातालेश्वर, यमेश्वर आदि कई शिव मन्दिर है।

सत्यनारायण, लक्ष्मी सरस्वती लक्ष्मण, भरत, हनुमान के मन्दिर तो वहाँ है ही, पर मंगला विमला, भुवनेश्वरी आदि के मन्दिर भी हैं।

जगन्नाथपुरी के 18 प्रमुख उत्सव हैं जिनमें विश्व प्रसिद्ध रथ यात्रा, (जो श्रीकृष्ण बलराम और सुभद्रा के नगर दर्शन की कथा से सम्बंधित है) स्नान यात्रा फूल डोल और चन्दन यात्रा उल्लेखनीय है।

जगन्नाथजी की रथ यात्रा आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को होती है जिसमें तीन विशाल रथ होते है। पहले रथ पर श्री बलरामजी, दूसरे पर सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्र तीसरे पर श्री जगन्नाथजी विराजमान होते हैं। इस रथ यात्रा में देश की सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता की झलक हम सहज ही देख सकते हैं।

जगन्नाथपुरी में जगन्नाथजी के मन्दिर के अतिरिक्त गुंडीचा मन्दिर, कपालमोचन मन्दिर, एमारमठ गम्भीरामठ, जगद्गुरु शंकराचार्य के प्रमुख चार-पीठों में से एक—गोवर्धनपीठ कबीरमठ टोटागोपीनाथ, चक्रतीर्थ बेड़ी हनुमान, सुदामापुरी लोकनाथ आदि दर्शनीय पुण्य स्थल हैं। इसके साथ ही—जगन्नाथपुरी के आस पास पंचमुनि आश्रम, आठ देवी पीठ और आठ रूप में भगवान शंकर के मन्दिर भी अवस्थित हैं।

जगन्नाथ मन्दिर मे किसी के साथ भेदभाव नही किया जाता। सभी धर्म और जाति के लोग यहाँ एक साथ बैठकर (भोजन और) प्रसाद प्राप्त करते हैं। एक धारणा के अनुसार जगन्नाथ मन्दिर की तीनो मूर्तियाँ लकडी की हैं—अत इन्हे हर बारह साल बाद आषाढ मास मे समुद्र मे प्रवाहित कर दिया जाता है, और उनकी जगह नई मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं।

भुवनविख्यात भगवान जगन्नाथजी का ये मन्दिर उडीसा राज्य मे पूर्वी रेलवे की हावडा वाल्टेयर लाइन पर स्थित कटक से, 29 मील दूर, खुरदा रोड स्टेशन से 28 मील दूर पर है। इसके अलावा जगन्नाथपुरी के लिये—आसनसोल, हावडा, मद्रास तथा तलचर से भी सीधी रेल व्यवस्था है।

श्री क्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी और शख क्षेत्र के नाम से विख्यात ये तीर्थ 51 शक्ति पीठो मे से एक पीठस्थल है, जहाँ सती की नाभि गिरी थी।

द्वारकापुरी

द्वारकापुरी की सात पुरियो मे गणना है। इसके साथ ही भगवान श्री कृष्ण की ये राजधानी भारत के चारो धामो मे से एक धाम भी है। परन्तु आज द्वारका नाम से कई स्थानो को जाना जाता है। इनमे दो तीन स्थान तो मूल द्वारका नाम से विख्यात हैं लेकिन गोमती द्वारका तथा बेट द्वारका ये दो द्वारकापुरी है। कथा है—भगवान श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होते ही द्वारकापुरी समुद्र मे डूब गई थी। केवल भगवान का निजी मन्दिर समुद्र ने नही डुबाया। गोमती द्वारका और बेट द्वारका एक ही विशाल द्वारका के अश है ऐसा बहुत से इतिहासकार मानते हैं।

वर्तमान द्वारकापुरी गोमती द्वारका कही जाती है। यह नगरी प्राचीन द्वारका के स्थान पर प्राचीन कुशस्थली मे ही स्थित है। यहाँ अब भी प्राचीन द्वारका के अनेक चिन्ह रेत के नीचे से यदा कदा उपलब्ध होते है।

सुदामा के सखा और रामदेवजी के पिता अजमालजी के आराध्य भगवान श्रीकृष्ण की राजधानी द्वारका का माहात्म्य लगभग सभी भारतीय धर्म कथा ग्रंथो मे मिलता है।

स्कन्द पुराण मे लिखा है—द्वारिका के प्रभाव से कीट, पतङ्ग, पशु-पक्षी

तथा सप आदि योनियो मे पडे हुए समस्त पापी भी पाप मुक्त हो जाते हैं फिर जो प्रतिदिन द्वारका मे रह कर भगवान श्रीकृष्ण की सेवा म उत्साह पूवक लगे रहते है, उनका तो कहना ही क्या। द्वारका मे रहने वाल समस्त प्राणियो को जो गति प्राप्त होती है वह बडे बडे ऊध्व रता मुनिया को भी दुलभ है।

द्वारका सब क्षेत्रो और तीर्थों से उत्तम कही गयी है। द्वारका म जो होम, जप दान और तप किये जाते हैं, वे सब भगवान श्रीकष्ण के समीप कोटिगुना एव अक्षय होते हैं। पौराणिक ग्रथा मे—

द्वारका यात्रा की विशेष विधियाँ बताई है जैसे कि यात्रा के लिये प्रस्थान स पूव स्नान, ध्यान पूजा, पाठ करके, भगवान श्रीकष्ण का ध्यान करते हुए पृथ्वी पर शयन करके प्रात सभी स प्रसन्नता पूवक मिलकर—गीत वाद्य व मगल स्तुति के साथ द्वारका को प्रस्थान करे। लेकिन इसक ठीक विपरीत राजस्थान क पश्चिमी भाग के कुछ लोग द्वारका यात्रा बड ही रहस्यमय ढग स करते हैं। वे चुपचाप रात को बिना किसी को सूचना दिये अपनी यात्रा के लिये प्रस्थान कर देते है क्योकि उनके अनुसार इस योग से पुण्य लाभ अधिक होता है।

द्वारका म पश्चिम और दक्षिण मे एक बडा खाल है, जिसम समुद्र का जल भरा रहता है। गोमती नाम से विख्यात इस स्थान के कारण ही इस द्वारका को गामती द्वारका कहते हैं। गोमती के उत्तर तट पर नौ घाट हैं जिनमे सगम घाट, नारायण घाट गऊ घाट और वासुदव घाट आदि प्रमुख हैं। यही पर द्वारकाधीश का मुख्य मदिर है, जिसे रणछोडजी का मन्दिर भी कहते है। यह मदिर एक परकोटे के भीतर बना है तथा इसके लिये गोमती की ओर से 56 सीढियाँ चढ कर जाना पडता है। सात मजिल के शिखर युक्त इस मदिर की चार दिशाओ मे चार द्वार है। रणछोडजी के मदिर पर पूरे थान की ध्वजा फहराती है इसीलिये ये ध्वजा विश्व की सबसे बडी धम ध्वजा है।

मदिर मे मुख्य पीठ पर श्री रणछोडराय की श्यामवण चतुभुज मूर्ति है। मदिर के पूव घेरे क भीतर दक्षिण मे जगद्गुरु शकराचाय का शारदामठ अवस्थित है। श्रीरणछोडजी के मुख्य मन्दिर के अतिरिक्त इस पुण्य क्षत्र मे अनेक देवी देवताओ क भव्य एव दर्शनीय मदिर बने हुए हैं।

कहते हैं—भगवान श्रीकृष्ण ने विश्वकर्मा द्वारा समुद्र म जिसे कुश स्थला द्वीप भी कहते ह द्वारका पुरी बनवाई थी और मथुरा से सभी यादवो को यहाँ ले आये थे। मुख्य द्वारका के समुद्र मे डूब जाने के बाद यहीं आग चलकर वज्रनाभ ने, रणछोडराय के मन्दिर की स्थापना की। गोमती द्वारका

से लगभग 23 किलोमीटर दूर कच्छ की खाडी मे एक छोटा सा द्वीप है जो बेट द्वारका के नाम से विख्यात यात्रियो का दर्शनीय स्थल है ।

पश्चिमी रेलवे की अहमदाबाद दिल्ली रेलवे लाइन पर स्थित मेहसाणा स्टेशन से एक लाइन सुरेन्द्रनगर तक जाती है और सुरेन्द्रनगर से ही यात्रियो को द्वारका के लिये सीधी रेल मिल जाती है ।

भारत के विभिन्न जाति, धम और सप्रदाय के लोगो की आराध्य भूमि द्वारका भारतीय जनमानस की एकता का वह सगम है जहाँ युगनायक भगवान श्री कृष्ण की लीलाओ का यशोगान आज भी साकार है ।

देशनोक

राजस्थान मे जिस प्रकार रामदेवजी का मदिर धार्मिक एकता के लिये, पुष्कर का ब्रह्माजी का मदिर विशिष्टता के लिय, जैसलमेर का सूय मदिर कथा सूत्र के लिये, देलवाडा का मदिर कलाविज्ञो के लिये आकर्षण के केन्द्र हैं उसी प्रकार बीकानेर से 36 किलोमीटर दूर-देशनोक स्थित, करणीमाता का चूहो वाला मदिर अनोखा एव कुतूहल पूण तीथ है । देशनाक का यह मन्दिर, राजस्थान मे देवी पूजा के विभिन्न रूपो की जानकारी कराता है, साथ ही इनके राजकीय महत्व का परिचय भी देता है । आज भी बीकानेर के राजधरान में करणीमाता की पूजा 'कुलदेवी' के रूप म की जाती है । आये दिनो करणीमाता के मन्दिर मे आश्चय के सूत्र चूहो को लेकर काफी चर्चा रहती है । कोई कहता है इन चूहो मे बीमारी क्यो नही फैलती, कोई कहते ह इन चूहो को इतना अनाज व्यथ ही क्यो खिलाया जाता है ता कोई कहता है कि इन चूहो का भला करणीमाता से क्या सम्बन्ध है ?

हम यहाँ चूहा तथा करणी माता के मदिर के सदर्भ मे वैज्ञानिक वस्तु स्थिति की चर्चा तो नही करेंगे लेकिन इसके ऐतिहासिक स्वरूप पर कुछ प्रकाश अवश्य डालेंग ।

करणीमाता की पूजा विशेषकर राजस्थान के जाधपुर और बीकानेर जिलो मे की जाती है । करणीजी के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त मे जोधपुर राज्य के सुआपा गाव मे मेहोजी नामक चारण के घर इनका जन्म हुआ था । मेहोजी की इस सातवी कन्या का परचा जन्म से ही जाना और माना जाने लगा । कहते हैं एक दिन करणीजी अपने खेत

पर भोजन सामग्री लेकर जा रही थी कि रास्ते मे जेसलमेर के महाराज शेखो जा अपनी भूखी प्यासी सेना के साथ मिले। करणीजी ने अपने पास के पा भोजन से ही सारी सेना को तृप्त कर दिया और राजा का विपत्ति मे सहायता देने का वचन दिया। राजा युद्ध क्षेत्र मे पहुँच, पर उनकी सेना हार गयी। स्मरण करते ही करणी जी सिंह के रूप मे उनके रथ मे जुत गइ और राजा को विजय दिलाई। इसी प्रकार करणीजी के पिता को सप ने का लिया जो देखते देखते इनके कर स्पर्श से ही ठीक हो गया। आगे चलकर इनका विवाह साठिका गाव के दीपाजी के साथ हुआ, लेकिन इन्होंने सासारिक माग का नही अपनाया। इसी प्रकार जाधपुर के राजा जोधाजी अपने पिता से अलग हाकर आश्विन सुदी दसवी सवत् 1522 को नया शहर बसाने के लिये करणीमाता के पास आये। करणीजी ने इन्हे राजा होने का आशीर्वाद दिया। कुछ दिनो बाद ही बीकाजी ने बीकानेर बसाया तथा करणीजी की पूजा कुलदेवी के रूप मे की जाने लगी।

देशनोक मे करणीजी का स्थान अब भी नवरात्रो के दिनो मे बहुत बड मेले का रूप धारण कर लेता है, जहाँ कि दूर दूर के भक्त आकर उनसे अपनी मनोकामना के पूण हान की प्राथना करते है। कहा गया है—

बडकें डाढ बराह, कडक पीठ कमठ्ठरी।
धडक नाग धराह, बाघ चढे जद बीसहथ॥
करनल किणियाणीह धणियाणी जगल धरा।
आलस मत आणीह, बीसहथी लाजें बिडद॥
आई बिखमी वार, जे उपर करसी नही।
सरणाई साधार कुण जग कहसी करनला॥
सुणिया साद सतेज आई! आगल आवता।
जगदब अब क्यो जेज करी इती तैं करनला॥
देवी देसाणेह घर बीकाणे तू धणी।
जागण जोधाणेह, मानीजे मेहाम-घू॥

देशनोक की करणीमाता के परचे अब भी देखे जाते हैं। करणीजी के विशाल मदिर मे प्रवेश द्वार के भीतर जाते ही योगमाया के दर्शन होते हैं। स्वण के सिंहासन पर करणीजी की मूर्ति विराजमान है। उस मन्दिर म चूहे बहुत हैं, जो पवित्र और पुण्यभागा माने जाते है। विशेष प्रकार के इन चूहो का यहाँ 'काबा' कहा जाता है जो कि देवी के वाहन हैं। इसे चमत्कार की बात ही माननी होगी कि जब 1927 मे राजस्थान म भयकर प्लेग का

बीमारी फैली थी, तब देशनोक मे कहीं भी इसका प्रभाव न था। यहाँ चूहो की सख्या लाखो मे है, जो कभी मन्दिर के बाहर नही जाते। कहते हैं इनमे एक सफेद चूहा भी हैं, जिसके दर्शन यदा-कदा किसी भाग्यशाली को ही होते हैं। जिस प्रकार जयपुर राजघराना आमेर की शिला देवी, जोधपुर राजघराना चामुण्डा देवी और करोली राजघराना कैला देवी की पूजा करता है, उसी प्रकार बीकानेर का राजकीय तीर्थ—देशनोक का करणीमाता का मन्दिर है जो चूहो की अद्‌भुत उपस्थिति के लिये ससार विख्यात है। राजस्थानी लोक सस्कृति मे देवी भक्ति का महत्व तो है ही पर यहाँ के लोक साहित्य मे भी देवी के नाना गीत उत्साह और उमग से गाये जाते हैं। देवी के लिये गाये जाने वाली एक प्रसिद्ध चिरजा है—

करो दिल याद करणी ने मेटसी सोच महमाई।
साह की लाज समदरिये, जकी मा तूहि तिखाई॥

बखडी राव नोघण की कटक नवलाख जिमवाई।
सिंधा म राव सेखा की, जकी तू जेल कटवाई॥ करो

कानिया दुष्ट करनी कू मगेतू मौत मरवाई।
कपा रिडमाल पै कीनी, धरा बीकाण बगसाई॥ करो

आखू म्है आपने अरजी, सगत तूं राख सरणाई।
दास दुरगादान देवल ने, सदा आनद बगसाई॥ करो

देलवाडा

अणहिलवाडा को नष्ट भ्रष्ट कर तथा सोमनाथ को खण्डहर की दशा मे छोडकर महमूद गजनवी अपने दश को वापिस पहुच भी न पाया था कि आरासर और आबू के पहाडा पर फिर से हथौडे और टाँकी की आवाजें आन लगी। प्राचीन गुजर प्रदेश की इस घाटी मे एक ओर जहाँ भय एव दुख की गूज उठती वही दूसरी तरफ शान्त, ध्यान मग्न एव स्थिरासन तीर्थंकरो के लिये पहले से अधिक शोभायमान देवालय तैयार हो जाते। जैन तीथकरो के पावन कला मन्दिरो की शृखला मे आबू या अर्बुद पवत का देलवाडा मन्दिर

आता है, जिसमे कोई पाँच मन्दिर हैं। इसमे पहला मन्दिर विमलशाह द्वारा निर्मित विमलवसाही है जो आदिनाथ या ऋषभदेव को समर्पित है। दूसरा मन्दिर लूनावसाही है जिसका निर्माण तेजपाल और वास्तुपाल बंधुओं ने करवाया था। तीसरा मन्दिर पितलहाडा है, चौथा मन्दिर चौमुखा या खेनरासाही है और पाँचवाँ मन्दिर भगवान महावीर का है जो कि दो सौ वर्ष पूर्व ही बना है। यह देलवाडा शब्द देहलवाडा का संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ है देवालयों का स्थान। इसीलिये इस मन्दिर समूह को यह नाम दिया गया। आबू पर्वत के मुख्य बाजार को पार कर अब हम मन्दिरों के पास पहुँचते हैं तो सर्वप्रथम दर्शन कर पाते हैं विमलवसाही, मन्दिर के, जिसको 1031 ईस्वी मे बनवाया गया था। इसके निर्माता विमलशाह गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के मन्त्री थे। कर्नल जेम्स टाड के अनुसार—निःसन्देह यह भारत वर्ष के सभी मन्दिरों मे उत्कृष्ट है और ताजमहल को छोड़ कर कोई भी ऐसी इमारत नहीं है, जो इसकी समानता कर सके, जैनों के इस गौरव युक्त स्मारक की समृद्धिपूर्ण सुन्दरताओं का वर्णन करने मे लेखनी समर्थ नहीं है। विमलशाही, अणहिलवाडा का व्यापारी था। निर्माण काल में आबू शैव और वैष्णवों के अधिकार मे था तथा वे नहीं चाहते थे कि यहाँ कोई अन्य धर्मसूत्र स्थापित हो, अत विमलशाह ने अम्बिका देवी की आराधना स्वरूप अपार धनराशि देकर तत्कालीन मन्दिर दवद्रोही राजा धारावर्ष से मन्दिर बनाने की आज्ञा प्राप्त की थी।

कहीं-कहीं यह भी उल्लेख मिलता है कि विमलशाही ने यह भूमि आबू के परमार राजा धंधुक से ली थी। ग्यारहवीं शताब्दी मे भुवनेश्वर प्रणाली के मन्दिरों का निर्माण प्रमुखता से था, अत यह जैन मन्दिर भी भुवनेश्वर प्रणाली पर ही बना। संगमरमर से बने इस मन्दिर की कुल लागत एक सौ पचासी करोड तीन लाख रुपये उल्लिखित है, जो विवादास्पद कम एवं विचारास्पद अधिक है। चौकोर चौक के बीच एक सौ अस्सी फीट लम्बे और एक सौ फीट चौडे इस मन्दिर में अन्दर की तरफ किनारे कोठरियाँ हैं। यहाँ खम्भे और ऊंची वेदिका है जिस पर चौबीस जिनेश्वर में से किसी एक की मूर्ति स्थापित है। यहाँ अट्ठावन कक्ष हैं जिन पर बारीक कलाचित्रों का अंकन है, इनमे महाभारत तथा रामायण और विभिन्न मत मतान्तरों के कथा रूपों का चित्रण विशेष प्रिय है। कमल फूल के नाना रूपों से मूर्तिच्छादित यह मन्दिर हिन्दू स्थापत्य का ऐसा बेजोड नमूना है जहाँ आदिनाथ की मूर्ति है जिसकी आँखों मे हीरे चमकते हैं और माला मणियों से बनी हुई है। कक्ष के बाहर मुख्य मूर्ति की तरफ अश्वारूढ विमलशाह की मूर्ति है, जिसके पीछे

उसका भतीजा बैठा हुआ उन्हें कुछ सौंप रहा है। यही वे दस गजारोही मूर्तिया है जो यूरोपीय राजाओ की श्रद्धा की प्रतीक है।

दूसरा मन्दिर वास्तुपाल–तेजपाल का है, जिसे नेमिनाथ या लूणवसहि का मन्दिर भी कहते है। बारह सौ इकतीस ईसवी मे बनवाये इस मन्दिर पर कहते हैं एक सौ पच्चीस करोड तीन लाख रुपये की लागत आई। इस मन्दिर की बनावट भी विमलशाह के मन्दिर की भाति ही है—जिसमे गुम्बजदार सभामण्डबट अगल-बगल मे छोटे छोटे जिनालय और हस्तिशाला है। इसकी दीवारो पर भी जैन धम की अनेक कथाएँ चित्रित है। मुख्य मन्दिर के द्वार के दोनो ओर बडी बारीकी से, बने दो ताक है जिन्ह दोराणी जेठानी क गोखले कहते हैं। इस मन्दिर के शिल्पी का नाम शोभनदेव बताया जाता है। देलवाडा का तीसरा मन्दिर पारसनाथ मन्दिर या चतुर्मुख मन्दिर है। इस मन्दिर क गुम्बद सीधे सादे ह, पर उनकी सादगी मे भी एक आकषण बना हुआ है। कहते है यह मन्दिर सोलहवी शताब्दी मे बनवाया गया था। इसी तरह चौथा मन्दिर भगवान महावीर का है जो केवल दो शताब्दी पूव बना था।

कलात्मक धम दशन के ऐसे सग्राहक जैन, बौद्ध और हिन्दू धम के, लिये फग्युसन, ह्वेनसाग, जम्सटाड, किनलाक फाब्स और आकबिशप ने महत्वपूण बातें कही ह। ऐसे जैन मन्दिर समूह के प्रागण मे झरने, घाटिया, फल, वनस्पति, चट्टानें, वन अनाज के खेत, अगूर की बेलें और उजडे हुए किले और भूरी पत वाली दीवारें पर्यटको का गभीरता से स्वागत करती है।

तिरुपति

तिरुपति, आध्रप्रदेश का सबसे अधिक ख्याति प्राप्त, भगवान वेंकटेश्वर का वष्णव मन्दिर है, जिसे उत्तर भारत में प्राय 'तिरुपति बालाजी' के नाम से जाना जाता है। जहां सांपो के देवता आदि शेष, शेषनाग के सात मस्तको की प्रतीक, शषाचलम पवत माला के बीच 'तिरुमलै' की चोटी पर भगवान श्री निवास अर्थात वेंकटेश्वर अवस्थित हैं। पौराणिक कथाओ के अनुसार— मरुपवत की समूह घाटियो के मध्य ये मन्दिर चारो युगो म समान श्रद्धा भाव से आराधित रहे है। सतयुग मे वृषभाचल, त्रेतायुग मे अजनाचल,

द्वापर युग मे शेषाचल एवं कलियुग मे वेंकटाचल के रूप मे मान्य, तिरुपति मन्दिर ब्रह्माड पुराण, स्कन्द पुराण, भविष्य पुराण और महाभारत में अनेकानेक कथा प्रसगो सहित उल्लिखित है—

श्री निवास परा वेदा श्री निवास परामखा।
श्री निवास परा सर्वे, तस्मादन्यन्न विद्यते ॥

अर्थात — सभी वेद, भगवान श्रीनिवास का ही प्रतिपादन करते हैं। यज्ञ भी श्री निवास की ही आराधना के साधन हैं। अधिक क्या सभी लोग श्री निवास के आश्रित हैं उनसे भिन्न कुछ नही।'

ब्रह्माड पुराण मे एक कथा वर्णित है कि—वृषभासुर नामक एक महान शिवभक्त था, जो दक्षिण तिरुपति मे रहता था। यह सदैव ऋषि मुनियो को सताया करता था। तभी एक दिन उसने एक पवत को ऊपर उठते देखा और इस आश्चय के जनक की तलाश म, वह घर से निकल पडा।

तलाश करते करते उसे जगल मे भगवान मिले। वृषभासुर ने इन्हें ही *पवत का नियोजक समझ युद्ध के लिये ललकारा। घमासान युद्ध म भगवान न विश्वक सेना की सहायता से वृषभासुर की समस्त सेना को* पराजित कर दिया। लेकिन माया की सहायता से वृषभासुर ने तत्काल ही नई सेना तयार करली। जब भगवान ने 'चक्र के द्वारा शत्रु सहार करना प्रारम्भ किया तो वृषभासुर समझ गया कि ये तो भगवान नारायण है, और इनके हाथो मृत्यु प्राप्त करना तो पुण्य काय है, तो उसने प्रभु से मृत्युदान की प्राथना की। चक्रयुद्ध मे भगवान नारायण ने उसे मार डाला। तभी से प्रभु *यहाँ 'वृषभासुरहारि'* के रूप मे पूज्य ह।

कहत हैं यहाँ साक्षात भगवान शेष पवत रूप मे स्थित हैं। प्रमाण म उल्लेख है कि प्राचीनकाल मे प्रहलाद तथा राजा अम्बरीष, पवत को नीचे म ही प्रणाम कर चले गये थे क्योकि भगवत्स्वरूप पर्वत पर वे नही चढे। प्रमुख वष्णव सत श्री रामानुजाचाय के अनुसार—परम ब्रह्म परमात्मा सवव्यापी हैं जिनका केन्द्र वैकुण्ठ कहलाता है जहाँ सभी श्रेष्ठ और सर्व ज्ञानयुक्त हैं। केन्द्रा का केन्द्र *तिरुपति ही श्री वकुण्ठम् है जहाँ भगवान वैंक्टेश्वर निवास करते है।*

अन्य मन्दिरो की भाँति तिरुमलै पवत पर कोई दूसरा मन्दिर नही है। श्री बालाजी का मन्दिर तीन परकोटा से घिरा है। इन परकोटो म गोपुर बने है जिन पर स्वण कलश स्थापित हैं। यही विरज कूप एव पुष्प कूप हैं। भगवान क मन्दिर के सामने स्वण मढित स्तम्भ हैं, सभामण्डल हैं। यही पास मे है

'हुडी' नामक बद हौज, जिसमे यात्री वकटेश्वर भगवान को अर्पित करने लाये द्रव्य एव आभूषण आदि डालते है । मन्दिर के द्वार पर जय-विजय की मूर्तिया है । पूरब दिशा की ओर मुँह किये वैंकटेश्वर स्वामी की मूर्ति श्याम वण ह, जिसमे वैंकटेश्वर स्वामी शख, चक्र गदा, पद्म लिये खडे है ।

श्री बालाजी की मूर्ति म एक स्थान पर चोट का चिह्न है, जिसके सबध मे कहा जाता है कि एक भक्त प्रति दिन भगवान के लिये दूध ले जाता था । वृद्ध होने पर जब उसे दूध लाने मे कष्ट होने लगा, तब भगवान स्वय जाकर चुपचाप उसकी गाय का दूध पी जाते थे । गाय को दूध न देते देख वृद्ध न छिपकर चोर का पता लगाना चाहा । जब एक दिन भगवान सामान्य वेश म ही दूध पीने आय तो छिपकर खडे वृद्ध भक्त ने उन्हें चोर समझ कर डडा मारा । वही ठडा लगने का चिह्न मूर्ति म है ।

तिरुपति बालाजी के भक्त दक्षिण भारत मे करोडो की सख्या म हैं । उत्तर भारत म वैष्णव सम्प्रदाय के हजारो ब्राह्मण, मारवाडी आदि भी वहाँ दशन के लिये जाते हैं ।

कुछ लाग ये भी मानते है कि ये पहले शैव मन्दिर था और इस मदिर म आज जो मूर्ति हैं—वह शैव वीरभद्र की मूर्ति थी । वीर वैष्णवो ने इसे बलात् विष्णु मन्दिर घोपित कर दिया । आध्र के सामाजिक इतिहास मे उल्लेख मिलता है कि पहले यहाँ कुछ भक्त जन उपवासपूवक यात्रा करते थे । कुछ मुँह मे ताला लगाकर चलते थे ताकि कही धोखे से भी मौन भग न हो जाये । कुछ शीर्षासन कर मन्दिर पहुँचते तो कुछ सिर के बाल कटवाकर, अर्पित करते थे ।

इस मन्दिर को आय क बारे मे ये बात निश्चित रूप से जानी जाती है कि अग्रेजो की 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' को कोई एक लाख रुपये सालाना की आय हाती थी । आज वैंकटश्वर मन्दिर की आय से वैंकटेश्वर विश्वविद्यालय कायरत है ।

तिरुपति बालाजी, आध्र का जीवत, धनी मन्दिर है । तिरुपति जाने हतु दिल्ली मद्रास रेलवे लाईन पर रेनीगुटा स्टेशन से जाना पडता है । या मद्रास, कालहस्ती कांची एव चेगलपट आदि से बस द्वारा भी यहाँ पहुँचा जा सकता है ।

पाडिचेरी

जिस प्रकार अजमेर धार्मिक एकता की प्रतीक नगरी है, वाराणसी मत-मता तरो की नगरी है और मदुरई चित्रो की नगरी है उसी प्रकार दक्षिण भारत मे मद्रास राज्य के पडोस मे पाडिचेरी, अध्यात्मसाधना की परिचायक नगरी है। स्वतन्त्र भारत मे इस बस्ती का विलय एक नवम्बर 1954 ई को हुआ था। इससे पूव प्रशासनिक रूप मे इस बस्ती पर फ्रासिसी लोगो का अधिकार था। भारत मे फ्रासिसी उपनिवेशो की समाप्ति के बाद भी इस बस्ती मे फ्रासिसी सभ्यता के प्रभाव चिन्ह हैं।

पाडिचेरी मे इस समय मुख्य रूप से दो भाषाएँ बोली जाती हैं—तमिल तथा फ्रासिसी। पाडिचेरी की जनसख्या लगभग तीन लाख उनहत्तर हजार उन्यासी (3,69 079) है। इस बस्ती का क्षेत्रफल चार सौ उन्यासी (479) वग किलोमीटर है। भारत के अन्य राज्यो की भाँति यहाँ जनतान्त्रिक शासन व्यवस्था है। 30 सदस्यो की विधान सभा के इस क्षेत्र का सम्पूर्ण राजकाज मन्त्रिमण्डल चलाता है। हाँ यहा पर राज्यपाल का पद न होकर उपराज्यपाल का पद ही है। फ्रास के मतानुसार 1663 ईसवी मे जो पाँच फ्रासिसी बस्तियाँ स्थापित की गइ उनमे पाडिचेरी सबसे बडी है जिसे कि प्रसिद्ध फ्रासिसी राजनयिक डूप्ले की ऐतिहासिक असफलता का साक्षी माना जाता है। डूप्ले ने भारत के अग्रेजी साम्राज्य को नीचा दिखाने का स्वप्न इसी बस्ती मे देखा था।

पाडिचेरी की कहानी 1674 से शुरू होती है जब कि मद्रास के पास डचो ने स थोम के किलेबन्द नगर से फ्रासिसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एजेंट मार्टिन को खदेड दिया था, लेकिन मार्टिन ने अपनी पराजय स्वीकार नही की और बजाय फ्रास लौटने के वह मद्रास से कोई सौ मील दक्षिण पाडिचेरी मे अपने पैर जमा लिये। यही नगर फिर समृद्धिशाली व्यापार का केन्द्र बन गया। इसके बाद यह नगर कई बार अग्रेजो के अधिकार मे आया, लेकिन अन्त मे अग्रेजो ने इसे फ्रासीसियो को लौटाना ही उचित माना।

पाडिचेरी मे चार प्रशाशित प्रदेश है जिनमे पहला है करकल दूसरा है माहे, तीसरा है कोरा मण्डल और चौथा है चन्द्रनगर। इनमे करकल नगर की स्थापना 1739 मे एम० डयूमा ने की थी और माहे का क्षेत्रफल भादगढ के राजा से प्राप्त हुआ था।

स्वतन्त्रता पूर्व पाडिचेरी का बदरगाह एक स्वतन्त्र बन्दरगाह था, तथा विदेशी व्यापार से सम्बद्ध होने के कारण तस्करो का केन्द्र समझा जाता था। स्वतन्त्रता सग्राम के दिना मे इस बस्ती का सबसे अधिक लाभ भारत के क्रातिकारियो ने उठाया। सन् 1930 के आसपास पान्डिचेरी का चन्द्रनगर ही क्राति कारी आदोलन का गढ़ था। महर्षि अरविन्द और प्रसिद्ध तमिल कवि सुब्रमण्यम भारती का अग्रेजी गुप्तचरो से मुक्तिपाने के लिये पाडिचेरी मे ही निवास हुआ था।

पाडिचेरी मुख्यत दो भागो मे बँटा है। एक भाग फासिसी ढग पर बसाया गया है जिसमे चौडी सडकें, एक दूसरे को काटते हुए, सघन पेडो से आच्छादित हैं। हर चौराहे की एक सडक पर, समुद्र की तरफ मुह किये डूप्ले की प्रतिमा है। साथ ही नगर का दूसरा भाग अल्पविकसित और पुरानापन लिये है।

पाडिचेरी का आधुनिक चर्चा रूप 'अरविन्द आश्रम' के कारण है। प्रारम्भ से ही यह आश्रम हजारों देशी और विदेशी अध्यात्म प्रेमियो का केन्द्र रहा है। श्री अरविन्द ने 25 वष तक इसी आश्रम म साधनामय जीवन बिताया था।

पाडिचेरी मे ही एक और सस्था है 'फ्रासिसी इस्टीट्यूट' जा भारत फास की समृद्ध पुरातत्व सामग्री का सग्राहक है। यहाँ पर सौ से अधिक ऐसी दुलभ पुस्तकें हैं जिन्ह कि फ्रासिसी लेखको ने भारत के सदभ मे लिखा है। साथ ही इसमे डेढ हजार दुलभ सस्कृत ग्रन्थों की पाडुलिपियाँ हैं। इसके अतिरिक्त पाडिचेरी मे गणेश मन्दिर, शिवमन्दिर एव श्री वरदराज पेरूमाल वैष्णव मन्दिर भी दर्शनीय और प्राचीन है। पाडिचेरी के पास ही विल्लियनूर नामक स्थान है जहाँ पर कि श्रीत्रिकामेश्वर का विशाल मन्दिर स्थित है।

अत भारत की ऐसी गौरवमय नगरी को यदि श्रेष्ठ अध्यात्म नगरी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

पालिताना

जैन सस्कृति मे पाँच पवित्र पवतो की महिमा आती है जिनके कि नाम गिरनार आबू, शत्रुजय, शेपकूट अथवा चन्द्रगिरी और सम्मेत है। इन पच तीर्थों म शत्रुञ्जय का माहात्म्य, अत्यधिक महत्वपूण है। गुजरात राज्य के

भावनगर स्थान से 56 किलोमीटर की दूरी पर पालिताना नामक स्थान है जिससे कि डेढ किलोमीटर की दूरी पर है—पवित्र शत्रुजय तीर्थ। समुद्र की सतह से 1066 फीट ऊँची है शत्रुजय पर्वत की चोटी। चारो तरफ पर्वत श्रृंखलाओ से घिरी यह शत्रुजय पर्वत की चोटी, जैनियो के चौबीस तीर्थकरो मे से प्रथम आदिनाथ की तपस्या स्थली मानी जाती है। पालिताना नगर से शत्रुजय पर्वत का मार्ग वृक्षो की लम्बी कतार कुएँ, तालाब और छोटे छोटे मन्दिरों से घिरा है। रास्ते के इन छोटे छोटे चैत्यो मे तीर्थकरो के पवित्र पद चिह्न अंकित है। रासमाला के लेखक अलेक्जेण्डर किनलाक फार्म्स के अनुसार—इस पर्वत के दो शिखर हैं जिनको एक घाटी पृथक करती है। इस घाटी का बहुत सा भाग देवालयो बगीचो तथा लम्बी छतो से युक्त है। इसके चारो तरफ तोपें रखने के स्थान हैं और ये परकोट कई छोटे छोटे किलों मे विभक्त है तथा बहुत से मन्दिर तो स्वत ही किले जैसे बन गये हैं। दक्षिण शिखर पर कुमारपाल और विमलशाह द्वारा बनवाये हुए मध्यकालीन मन्दिर है, जहाँ खोडियार देवी की महिमा से पवित्र तालाव के पास ही जन तीर्थकर ऋषभदेव की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है जिसके चरणो म चट्टान पर एक बल की मूर्ति खुदी हुई है। शत्रुजय पर्वत के उत्तर शिखर पर एक अत्यन्त प्राचीन देवालय है—जिसके लिये कहा जाता है कि इसे दन्तकथाओ मे प्रसिद्ध सम्प्रति राज ने बनवाया था। पालिताना के शत्रुजय पर्वत पर पुराने मन्दिर तो कम है पर आधुनिक मन्दिर अपने 'वृन्द' के नाम से पहचाने जा सकते हैं। हिमालय से कन्याकुमारी तक और सिन्धु नदी से पवित्र गंगा नदी तक के क्षेत्र में शायद ही कोई ऐसा स्थान बचा हो, जहाँ से कि इन मन्दिरो पर बहुमूल्य भेंट न आई हो। भव्य परकोटो से घिरे तथा अनेक रास्तो एव प्रागणो वाले, आधे महल तथा आधे किला जैसे बने संगमरमर के ये जैन मन्दिर एकान्त विशाल पर्वत पर इतने भव्य और भले लगते हैं जिसका कि वर्णन करना भी सभव नही लगता। यहाँ प्रत्येक मन्दिर म भगवान आदिनाथ, अजीतनाथ तथा अन्य तीर्थंकरो की एक या अनेक मूर्तियाँ विराजमान हैं। चाँदी के दीपको के मन्द प्रकाश, अगरबत्तियो की महक और दर्शनार्थ उत्सुक श्रद्धालु स्त्रियो के समवेत स्वर से गूजती पालिताना की शत्रुजय घाटी, सही माने मे स्वर्ग का प्रतिरूप लगती है। पश्चिम मे गिरनार और उत्तर म सीहोर के आसपास वल्लभीपुर के धार्मिक इतिहास के बीच 'शत्रुजय पर्वत जैन मत के अनुसार सभी तीर्थों मे अग्रणी और निर्वाण के साथ सबध जोड़ने वालो के लिये विवाह मण्डप के समान है। कहते है—अग्रेजो के पवित्र स्थान आयोना की तरह प्रलयकाल म भी पालिताना की इस धर्म पर्वतिका का नाश नही होगा।

शत्रुजय पर्वत पर मन्दिरो का इतिहास बहुत प्राचीन है। सौराष्ट्र के

राजा शिलादित्य की आज्ञा से वल्लभीपुर के धनेश्वरसूरि रचित 'शत्रुजय माहात्म्य' के अनुसार—यहाँ पहले पहले भरत के छोटे भाई बाहुबली के पुत्र सोमयशा ने ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया। आगे चलकर विदेशी आक्रमणो मे ये मन्दिर नष्ट भी हुए पर जैन श्रावको एव धम रक्षक राजाओ की प्रेरणा से ये पुन बन कर पूजित हुए।

इतिहास जेम्स टाड के 'पश्चिमी भारत की यात्रा' प्रसगो के अनुसार पालिताना, पल्लीकाग का निवास स्थान है। पालिताना का शत्रुजय पवत भगवान आदिनाथ को अर्पित है जिनके मन्दिर का जीर्णोद्धार 421 ईसवी म हुआ था। इस गर्वोन्नत शत्रुजयशिखर के कोई चौबीस नाम हैं तथा एक सौ आठ शिखर इसको गिरनार पवत से सयुक्त करते हैं। जैन भूगभ वेत्ताओ के अनुसार तो पालिताना का यह पर्वत, आबू और तरिंगी तक फैला हुआ है तथा सीहोर एव वल्ल पवत शृखलाओ से सम्बन्धित है। शत्रुजय महात्म्य' के अनुसार—

शत्रुजय पुण्डरीक सिद्धि क्षेत्र महाबल।
सुरशैलो विमलाद्रि पुण्य राशि श्रिय पदन॥

यहाँ पर पहली इमारत भरत ने दूसरी घुन्धवीय ने, तीसरी ईशानेन्द्र ने, चौथी महेन्द्र ने, पाँचवी ब्रह्मेन्द्र ने, छठी भवनपति ने, सातवी नगर चक्रवर्ती ने, आठवी विन्त्र इन्द्र ने, नवी चन्द्रयशा ने, दसवी चक्रायुध ने, ग्यारहवी राजा रामचन्द्र ने, बारहवी पाण्डव बधुओ ने, तेरहवी काश्मीर के व्यापारी जावदशाह ने, चौदहवी अणहिलवाडा के राजा सिद्धराज के मन्त्री बहिदेवमेहता ने, पद्रहवी दिल्लीपति के काका सुमरा सारङ्ग ने सवत 1371 मे और सोलहवी चित्तौड के मन्त्री कर्माशाह डोसी अर्थात देवताओ के दास' ने सवत 1578 मे बनवाई थी।

इस पर्वत पर आदिनाथ का मन्दिर बाहुबलिका मन्दिर, रत्नघोर, चौमुखी, सतनाथ आदि मन्दिर यहाँ के प्रमुख दशनीय स्थल हैं जिनके कि साथ भारतीय धम सस्कृति का एक लम्बा इतिहास जुडा है। प्रसिद्ध प्रेमगाथा 'सदयवत्स सावलिगा भी इसी भूमि की प्रसगकथा है जो यहाँ घर घर मे कही सुनी गयी है। पालिताना प्रारम्भ से ही गोहिलवशीय शासन का अग तथा स्मारक, शिलाओ, देवालयो, एव ऐतिहासिक मूल्यो की रक्षा का स्थान रहा है।

इस प्रकार पालिताना के निकट पवित्र शत्रुजय पवत पर अवस्थित जैन मन्दिर एव कलात्मक स्थान, हम सब के लिये दशनीय एव पुण्यलाभा हैं।

पुष्कर

महाभारत मे लिखा है कि तीन लोको मे मृत्यु लोक महान है और मृत्यु लोक मे देवताओ का सबसे प्रिय स्थान पुष्कर है। चारो धाम की यात्रा करके भी यदि कोई *पुष्कर स्नान नही करता तो उसके सभी पुण्य व्यर्थ हो जाते हैं।*

रत्नगिरि पवत, नीलगिरि पवत, सोनचूडा पवत और मारवाड की प्रमुख नदी लूनी के उद्गम नाग पवत के मध्य अवस्थित तीर्थराज पुष्कर—अजमेर से सात मील दूर देवताओ की यज्ञस्थली के रूप मे जाना जाता है।

पुष्कर उत्पत्ति के सबध मे एक कथा है—

एक बार ब्रह्माजी ने यहाँ पर यज्ञ किया। उन्हे ही यज्ञ की मुख्य आहुति देनी थी। ब्रह्मा जब आहुति देने आसन पर बैठे तो उनकी पत्नी सावित्री कहीं आस पास दिखाई न दी। काफी खोजबीन पर भी सावित्री का पता न चला। शुभ मुहूत बीता जा रहा था अत ब्रह्मा ने रास्ता जाती गायत्री नाम की गूजरी लडकी को साथ बैठाकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। इसी समय वहा सावित्री अपनी सखियो सहित आ पहुँची। ब्रह्मा के पास गूजरी को बैठे देख—सावित्री रूठकर वहा से चली गइ और रत्नगिरि मे समा गईं। उस स्थान से उसी समय एक झरना फूटा जो अब भी सावित्री झरने के नाम से प्रसिद्ध है। यही आगे चलकर सावित्री मन्दिर की स्थापना की गई। 9 वी शताब्दी मे मण्डोर पर राजा नाहडराय का राज्य था। एक बार वे शिकार खेलते इस झरने तक आये। प्यास से व्याकुल राजा ने ज्योही अपन हाथ जल म डुबोये, उनका कोढ दूर हो गया। राजा ने जल को शुभ मानकर वहाँ एक सरोवर खुदवाया जो कि आगे चलकर पुष्कर के रूप मे जाना जाने लगा।

पुष्कर झील की स्थापना के सम्बन्ध मे कई धारणाएँ प्रचलित हैं। कुछ कहते हैं—ब्रह्मा ने सृष्टि यन के लिये उपयुक्त स्थान की खोज हेतु अपना कमल धरती पर फेंका। कमल की तीन पखुडिया तीन स्थाना पर गिरी जो कि ज्येष्ठ पुष्कर, मध्य पुष्कर और छोटे पुष्कर के रूप मे स्थापित हुए।

पुष्कर मे छोटे बडे कोई 300 मन्दिर हैं। परन्तु उनमे 5 प्रमुख मन्दिर ब्रह्माजी, सावित्रीजी, बदरीनारायणजी, वराह और शिव आत्मेश्वर के हैं।

ब्रह्माजी के मन्दिर का पुन निर्माण सवत् 1866 मे सिंधिया के मन्त्री ओसवाल गोकुलचन्द पारख ने करवाया था।

वराह का मन्दिर अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज ने 12 वी शताब्दी मे बनवाया था। 150 फीट ऊँचा और हिन्दू शिल्पकला से परिपूण वराह मन्दिर को जयपुर के राजा सवाई मानसिह ने पुन बनवाया और वराहजी की मूर्ति की स्थापना की थी।

बदरीनाथ के विशाल मन्दिर का अब केवल भू भाग ही रह पाया है।

आत्मेश्वर मन्दिर का निर्माण सवत् 1860 मे सिंधिया के सूबेदार गुमानजी राव ने किया था। सावित्रीजी का मूल मन्दिर अब नही है। वतमान मंदिर का निर्माण 16 वी शतान्दी मे जोधपुर महाराज अजीतसिह के पुरोहित ने करवाया था।

पुष्कर मे इनके अतिरिक्त बाद के बने बिहारीजी का मन्दिर, रामबैकुठ मन्दिर, रगजी का मन्दिर और जयअप्पा का महादेव मन्दिर भी प्रमुख हैं। जिस प्रकार पुष्कर मे मन्दिरो की बहुतायत है, उसी तरह यहा करीब 46 घाट हैं जिनमे—कपालमोचनघाट, यज्ञघाट, बदरीघाट, रामघाट, गौघाट, ब्रह्म घाट और कोटितीथ घाट मुख्य हैं।

प्रति वष पुष्कर मे कार्तिक सुदि एकादश से पूर्णिमा तक स्नान पव का मेला लगता है। जिसमे सम्पूण भारत से लाखो तीथ यात्री आते हैं। धार्मिक एकता का प्रतीक पुष्कर फलो के लिये भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। बादशाह जहाँगीर ने और पादरी हेबर जोयही ने यहाँ के अगूरो की तुलना भारत के श्रेष्ठ अगूरो से की थी।

पुष्कर भारत का प्राचीनतम तीथ है, जिसका उल्लेख—हम साँची के बौद्ध स्तूपो मे ईसा से दो शताब्दी पूव के प्राप्त लेखो, सीकर के हर्षनाथ मन्दिर के विक्रम सवत् 1030 के शिलालेख, मेवाड के श्रृगी ऋषि स्थान पर सवत् 1485 के शिलालेख, एव विक्रम सवत् 982 के पुष्कर के महाराजा दुर्गाराज के शिलालेख मे मिलता है।

इनके अतिरिक्त चार वेद और वायुपुराण, गरुडपुराण, वराहपुराण के अलावा कश्मीर के कवि जयानक के पृथ्वीराज विजय, हमीर महाकाव्य, कालिदास के रघुवश और शकुन्तला महाकाव्य मे पुष्कर का उल्लेख हमे प्राप्त होता है।

अगस्त्य, भर्तृहरि, कण्व और विश्वामित्र ऋषि की तपोभूमि पुष्कर, अप्सरा मेनका का स्नान सरोवर पुष्कर, भारत की धार्मिक परम्पराओ का

वह प्रेरणा स्थल है, जहाँ सभी भेद भावो को भुलाकर भारत के धर्मावलबी एकत्रित होते है। इतिहासवेत्ता कर्नल टाड के अनुसार पुष्कर सरोवर की पवित्रता से तिब्बत के मान सरोवर के सिवाय और कोई सरोवर तुलना नही कर सकता। यदि प्रयाग तीर्थ राज है तो पुष्कर सर्वतीर्थ स्थानो का सम्राट है।

बौद्ध गया

ऋग्वेद मे वर्णित भगवान विष्णु के चरण चिन्हो से पावन गया तीर्थ से कोई नौ किलोमीटर की दूरी पर भगवान बुद्ध की तपस्यास्थली है, जिसे कि इतिहास बौद्ध गया के नाम से जानता है। वैदिक साहित्य मे गया के आसपास के सभी क्षेत्र को धर्म भूमि के रूप मे स्वीकारा गया है। गया तीर्थ पास होने के कारण ही इस स्थान को बौद्ध गया कहते हैं। 29 वर्ष की उम्र मे जब राजकुमार सिद्धार्थ अपना घर छोडकर आये तो उन्होने यही पर पीपल वृक्ष के नीचे बैठ कर तपस्या की थी। यही उन्हे फिर 35 वर्ष की उम्र मे बोधिसत्व प्राप्त हुआ था। वे बुद्ध तथागत और शाक्यमुनि कहलाने लगे थे। यहीं से बाद भगवान बुद्ध ने पहली बार सारनाथ मे धर्मोपदेश दिया था। अत भारत का यह प्रागण भगवान बुद्ध की धर्मयात्रा का प्रेरक प्रतीकरूप माना जाता है। कहते हैं यह पीपल का बोधि वृक्ष ससार का पुराना और पूजित कथा केन्द्र है। बौद्ध परम्परा के अनुसार इस पेड को रानी तिष्यरक्षिता द्वारा नष्ट कर देने पर सम्राट अशोक द्वारा पुनर्स्थापित किये जाने का उल्लेख है। लेकिन चीनी यात्री ह्वेनसाग के अनुसार बोधि वृक्ष को बगाल के राजा-शशाक द्वारा नष्ट कर देने पर मगध के राजा पूर्णवर्मा द्वारा पुनर्स्थापित किया गया था। इस बोधि वृक्ष का तल, ससार का मध्य बिन्दु और बौद्ध सिंहासन कहलाता है। यही पास मे भगवान बुद्ध का विशाल मन्दिर है तथा जिसके चारो तरफ अनेक विहार चैत्य और स्मारक स्थापित हैं। धर्मयात्री ह्वेनसाग के लेखन मे, आज जिस आकार और शक्ल मे बौद्ध गया का मन्दिर स्थापित है वह सातवीं शताब्दी ईस्वी मे भी था। यह महाबोधि मन्दिर कोई 160 फुट ऊँचा है और उसमे भूमि स्पर्श करती मुद्रा मे भगवान बुद्ध की एक मूर्ति स्थापित है। इसी बौद्धगया तीर्थ के आसपास नालन्दा, पाटलि-

पुल, वैशाली, सारनाथ और राजगिर आदि भगवान बुद्ध की धम परिक्रमा के चर्चित स्थान हैं।

बौद्ध गया आज के बुद्ध धर्मानुयायियो के लिये सर्वोत्तम पविव्रता का क न्द्र है। नेपाल, बर्मा, जापान, लका और चीन से अनगिन श्रद्धालु भक्त यहा बडी कामना से आते हैं। तीन सौ बावन से तीन सौ उन्यासी ए० डी० के बीच, यहाँ पर एक मठ का निर्माण करवाया गया था, जिसमे लगभग एक हजार महायान भिक्षुको की स्थाविर शाला चलाने की बात ह्वेनसाग ने भी कही है। वायु पुराण मे तो बुद्ध को भगवान विष्णु का ही अश मानकर बोद्धि वृक्ष की पूजा हेतु कहा गया है। बोद्धि वृक्ष के पास ही एक आम का पेड है जिसकी पिण्ड पूजा, मृत पीढी की मुक्ति पूजा के समान समझी जाती है।

यात्रा वणन के अन्तर्गत फाहियान ने भी बौद्ध गया के लिय लिखा था कि नगर के भीतर सुनसान और उजाड है। पास ही मे वह स्थान है जहाँ लडकियो ने बुद्ध देव को खीर दी थी। यहीं से पूर्वोत्तर मे आधे याजन पर एक कदरा पडती है जहाँ बोधिसत्व पालथी मार कर बैठे थे। बुद्धदेव के परिनिर्वाण से सम्बन्धित चारो महास्तूप के स्थान ह उन्ह सब जानते चले आ रहे हैं तथा कोई विपयण नही हुआ। य चार महास्तूप हैं—बुद्ध का जन्म स्थान, बोधि प्राप्ति स्थान, धमचक्र प्रवतन स्थान और परिनिर्वाण स्थान।

अत बोधि प्राप्ति का स्थान बौद्ध गया, धर्म तीर्थो का ऐसा अश है जिसे समय की सीमाओ मे नही बांधा जा सकता। बिहार राज्य में स्थित 'बौद्ध गया तीथ उन सबको खुला निमत्रण है जो सत्य और अहिंसा म आस्था रखत हैं। जहाँ आज भी यह स्वर जीवत है—

बुद्ध शरण गच्छामि
सघ शरणम् गच्छामि
धम्म शरण गच्छामि

बदरीनाथ

चार धाम, सप्तपुरियाँ तथा द्वादस ज्योतिर्लिंगो वाले देश भारत म तीर्थों की महिमा का अपना स्थान है। वेद पुराण, उपनिषद सवत्र जिनका उल्लेख है और जो कोटि कोटि कण्ठा मे रस बस गये है, ऐसे तीथराज बदरीनाथ की महिमा कहने सुनने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति मानी जाती है।

महाभारत के अनुसार, बदरीनाथ ही परमतीथ है। वही जीवो क स्वामी परमेश्वर है जिन्हे जानकर शाक, मोह और चिन्ता तुरन्त मिट जाती है। वराहपुराण मे वर्णित बदरी क्षेत्र की उत्पत्ति की कोई कथा नही है। यहाँ नर नारायण आश्रम के अतिरिक्त नारद शिला, मार्कण्डेय शिला, गरुड शिला, वाराही शिला, नारसिंही शिला, कपाल तीथ, ब्रह्म तीथ, वसुधरा तीथ, पच तीथ, सोम तीथ, ब्रह्म कुण्ड, मदन तीथ, दण्डपुष्करिणी, गगा सगम, धम क्षत्र आदि कई प्रसिद्ध धार्मिक स्थल हैं।

अलकनदा नदी के किनारे बदरीनाथ के मन्दिर मे श्री बदरीनाथजी की मूर्ति शालिग्राम–शिला मे बनी ध्यानमग्न चतुर्भुज मूर्ति है। कहा जाता है कि पहली बार यह मूर्ति देवताओ ने अलकनन्दा मे नारद कुण्ड से निकालकर स्थापित की थी। देवर्षि नारद उसके प्रधान अचक थे। उसके बाद बौद्धो के प्राबल्य के कारण यह मूर्ति बुद्ध मूर्ति मानकर पूजी जान लगी। बौद्ध तिब्बत लौटते समय मूर्ति को अलकनन्दा मे फेंक गय, लेकिन शकराचाय ने पुन मूर्ति को खोजकर, मन्दिर मे प्रतिष्ठित करवाया।

बदरिकाश्रम मे बदरीनाथजी के दाहिन कुबेर की पीतल की बनी मूर्ति है। उसके सामने उद्धवजी हैं तथा बदरीनाथजी की उत्सव मूर्ति है। उद्धवजी के पास ही चरण पादुकाएँ हैं। बायी ओर नर नारायण की मूर्ति है, इनके समीप ही श्रीदेवी और भूदेवी हैं।

लोक भावना का प्रतीक ये पुण्यधाम भारतीय साहित्य और सस्कृति स इस तरह जुडा हुआ है कि इसके माहात्म्य की चर्चा अब नाना रूपों मे की जान लगी है। बदरीनाथ मन्दिर के सिंह द्वार से 4 5 सीढी उतर कर शकराचार्य मन्दिर है। इससे 3 4 सीढी नीचे, आदि केदार का मन्दिर है। यहाँ

नियम यह है कि आदि केदार के दर्शन करके ही बदरीनाथजी के दर्शन किये जाँय। आदि केदार से नीचे तप्तकुण्ड अर्थात् अग्नितीर्थ है। इसके आगे गरुड, नारद, मार्कण्डेय, नरसिंह और वाराही नामक पंच शिला है। तप्तकुण्ड से लगभग 300 गज आगे चलकर अलकनंदा नदी के किनारे कपालमोचन तीर्थ है, जहाँ यात्री पिण्डदान करते हैं। इसे ब्रह्मकपाल तीर्थ भी कहते हैं, क्योंकि जब शंकरजी ने ब्रह्मा का पाँचवाँ मस्तक कटुभाषी दोष के कारण काटा, तब वह उनके हाथ से चिपक गया। जब समस्त तीर्थों में घूमते शंकर यहाँ आये तब वह हाथ से चिपका कपाल स्वतः छूटकर यहाँ गिर पड़ा था।

हिमालय की बर्फीली घाटियों के बीच स्थित इस पुण्यधाम के आसपास वृक्षों का नाम नहीं है, किन्तु यहाँ से कुछ दूरी पर ऊँचे-ऊँचे भोजपत्र के वृक्ष घनी संख्या में अवश्य है।

अधिक हिमपात के कारण बदरीधाम के पट 15 मई के लगभग खुलते हैं तथा दीपावली तक खुले रहते हैं लेकिन वैशाख के प्रारम्भ से श्रावण के अन्त तक बदरीनाथ की यात्रा सुविधापूर्ण रहती है।

यों तो बदरिकाश्रम जाने के अनेक मार्ग हैं। किन्तु अधिकतर यात्री ऋषिकेश, यमुनोत्तरी (टिहरी होकर या देवप्रयाग होकर) गंगोत्तरी, केदारनाथ होते हुए बदरीनाथ जाते हैं। इस यात्रा में स्थान-स्थान पर खान पान व आवास की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। पुण्यलाभ से प्रेरित-बदरीधाम की दुर्गम यात्रा में यात्री जितना कम सामान अपने साथ ले जायें उन्हें उतनी ही अधिक सुविधा रहती है। मार्ग में अपरिचित फल, पुष्प या पत्तों को खाना सूँघना, व छूना हानिकारक भी हो सकता है। यात्रा के दौरान पर्वत प्रदेश के झरनों का जल छानकर कुछ देर बर्तन में स्थिर कर ही पीना चाहिए।

बदरीधाम हिमालय का पवित्र प्रांत तथा गंगा-यमुना के दोनों ओर की ये भूमि अनादिकाल से परम पावनी मानी गई है क्योंकि यह सम्पूर्ण भूमि ही तीर्थ स्वरूपा है।

मडोर

राजस्थान की सप्तरगी धरती का इतिहास, यहाँ की कला सस्कृति एव शौय का प्रथम गायक है, जिसके कण-कण मे, हमे विजय बलिदान और विकास की सुगध आती है। यहाँ के हर स्थान का अपना अलग महत्व है। जिस प्रकार उदयपुर झीलो के लिये, जैसलमर कलात्मक जाली झरोखा के लिय जयपुर अपनी गुलाबी सरचना के लिये, आबू प्रकृति-सौंदय के लिये, केवलादेव घना पक्षी विहार के लिये, चित्तौड ऐतिहासिक कथा वस्तु के लिये सब विख्यात है उसी प्रकार मारवाड की प्राचीन राजधानी मडोर अपने उद्यानों के लिये बहुचर्चित है। इतिहासकारो का यह निष्कष रहा है कि राजस्थान मे आमेर चित्तौड, मडोर आदि जितनी भी पुरानी राजधानियाँ है वे बहुरूपी कथा लोक की मूक साक्षी हैं। एक समय था जब मारवाड, भारतवर्ष के छोटे बडे सात सौ दशी रजवाडो मे एक उन्नत राज्य माना जाता था।। नौ कोठी' अर्थात नौ प्रमुख केन्द्रो का समूह मारवाड' तत्कालीन राजपूताने का सबस बडे क्षेत्रफल वाला राज्य था, जहाँ न जाने किननी सस्कृतियो ने अपनी परिभाषा मे परिवर्तन किये। ऐसे मारवाड की नई राजधानी जोधपुर से आठ किलोमीटर की दूरी पर है—पुरानी राजधानी मडोर।

चारण एव भाटो की दन्त कथाओ के अनुसार यह भी सुना जाता है कि अति प्राचीन काल मे मडोर का मन्दोदर नामक राजा था, उसी ने इसे बसाया था। इसी मन्दोदर नामक राजा की लडकी मदोदरी थी, जिसका विवाह लकापति रावण से हुआ था। लेकिन प्राचीन शिलालेखो के अनुसार मडोर पर पहले नागवशी क्षत्रियो का राज्य था। यही कारण है कि इस राज्य के बहुत से स्थानो के नाम मे 'नाग शब्द जुडा है, जसे नागौर, नागकुण्ड, नागादण्डी आदि। आज तक भाद्र बदि पचमी को होने वाला नाग का मेला इसी ऐतिहासिकता को प्रमाणित करता है। साथ ही ईसा की तीसरी शतों म बना मडोर का किला भी भोगी शैल पर है। भोगी शैल अर्थात नागपवत के माहात्म्य मे लिखा गया है कि जनमेजय के सपयज्ञ से बचे हुए नाग यहाँ आकर रहे थे, अत इसका नाम नाग पवत पडा। यही पास मे मडलेश्वर

महादेव का मदिर है, जो कथानुरूप माडव्य ऋषि का आश्रम रहा है। इन्ही माडव्य ऋषि के नाम पर यह माडव्यपुर जिसका कि अपभ्रंश मडोर या मडोरवर है। सवत 700 के आसपास मडोर पर पडिहारो का राज्य होना पाया जाता है। राजा बाक्षक के सवत 894 के शिलालेखानुसार यहाँ पर मडता के परिहार (परिहार, प्रतिहार) राजा ताता ने अपने छोटे भाई भोज को राज्य सौंपकर तपस्या की थी।

इसके साथ-साथ मडोर दुग म अवस्थित कृष्ण की बाल लीलाओ एव गप्त लिपि वाले एक तोरण के स्तम्भो से यह भी ज्ञात होता है कि यहा पहले गुप्त साम्राज्य रहा है। लेकिन कनल टॉड, मुहतानैणसी और कवि राजा श्यामलदास के अनुसार मडोर पर गेहलोतो के प्रभुत्व की बात भी भुलाई नही जा सकती।

मडोर के इतिहास मे नाहडराव परिवार का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसका सिन्ध से लगाकर बगाल की हद तक कुल भारतवप का राज्य था तथा जिसने पुष्कर तीथ की झील की मरम्मत कराई थी। इन्हीं की सातवी पीढी मे ईन्दा परिहार हुए, जिसके कि वशज ईन्दा खाँप से प्रसिद्ध हैं। इन्ही के लिये कहा गया—

> चूडो चँवरी चाड, दियो मडावर दायजे।
> इन्दारो उपकार, कमधज कदै न बीसरै॥

अर्थात—ईन्दो के उपकार को राठोड कभी न भूलेंगे, क्योकि ईन्दा ने चूँडा जी को अपनी पुत्री ब्याह कर मडोवर दहेज मे दिया था। यही राठोड चूडा (विक्रम सवत 1434) राव जोधाजी (विक्रम सवत 1402) के पूवज थे जिन्होने जाधपुर बसाया था।

मडोर की इस ऐतिहासिक कथा भूमि का प्रामाणिक गवाह यहाँ का गढ है जिसमे आज भी भूले बिसरे चित्रो को साकार दखा जा सकता है। किले पर बना दो खण्डीय जैन मन्दिर और हिन्दू तीथ पच कुण्ड है जहाँ पाच कुण्ड बने हैं। यही पर राठौड राजाओ के बडे अर्थात देवल हैं जिनमे राव गाँगा के देवल पर नक्कासी का काम देखते ही बनता है। राव मालदेव के समय से परिवर्तित यहाँ की श्मशान भूमि, अब मोती सिंह के बगीचे के पास है जहाँ अन्य छतरियो म महाराजा अजीतसिंह की विशाल एव भव्य छतरी है, जिसमे भारतीय वास्तुकला के पारम्परिक रूप को आका जा सकता है। छतरी के पास ही है, तानापीर' की दरगाह, जिसके चदन के किवाड हैं तथा जहाँ हर वष मेले मे लाखो भक्त लोग इबादत करने आते हैं। मन्दिर मस्जिद एकता की इस प्राचीन पुरी मडोर म, जो नागाद्री अर्थात नागादरी नदी के

किनारे बसी है—अनेक स्मारकों के अतिरिक्त महाराजा अभयसिंह के समय का 'तैंतीस करोड देवता' का देवालय है, जिसमे एक ही चट्टान को काटकर 16 बडी बडी मूर्तियाँ बनाई गई हैं, जिनमे अधिकाश मारवाडी के लोक देवताओ (पाबूजी, रामदेवजी, हडबूजी, मेहाजी, गोगाजी, जाम्भा, मल्लिनाथजी, गुसाईजी, जालधरनाथ) की हैं। इन मूर्तियो की लम्बाई चौडाई एव ऊचाई का क्रम, राजाओ की ऋषि सिद्धि के अनुसार बढता गया, जो बहुत रोचक लगता है। इन मूर्ति मचो के पास ही एक गुफा है, जिसमे कि नाहडराव प्रतिहार की मूर्ति खुदी है।

मडोर आने के बाद, रावण की चँवरी, एक थभिया महल एव बालसमद आदि को देखकर हर व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि क्या रेगिस्तान के एतिहासिक प्राचीन राज्य मारवाड की राजधानी इतनी खूबसूरत हो सकती है।

माडु

जिस प्रकार राजस्थान का इतिहास किलो और दुर्गों की कहानियों से भरा पडा है उसी प्रकार मध्यप्रदेश भी भारतीय सस्कति एव गरिमा के विविध आख्यानो का प्रेरक स्थल है। चर्चा के इसी क्रम मे माडु का किला बेजोड गाथाओ का स्थान है जो मालवा मे एक 2100 फीट ऊँची पहाडी पर धार कस्बे से लगभग 36 किलोमीटर दूर है।

एक फहरिस्त के अनुसार आदिवासी राजपूत ने, परताबचन्द की मृत्यु के बाद इसे बनवाया था जो फारस के बादशाह खुशरू परविश का समकालीन था। टॉड के अनुसार यहाँ आगे चल कर परमारो की राज्य सत्ता बनी।

माडु को मडपिका और मडपनगर भी कहा जाता है, जो एक समय गुर्जर प्रतिहार शासको की राज्य भूमि थी। मालव की प्रधान कथा भूमि माडु का वैभव राजा मजु और भाज से भी दूर पास जुडा हुआ है, जिससे इस रूप नगरी को ख्याति के नये आयाम मिले है। माडु मे मुस्लिम शासन से पूर्व के बहुत से कथा चिह्न हमे आज नहीं मिलते। 1304 ईसवी मे मालवा पर एन उल मुल्क मुल्तानी का अधिकार हुआ जिसमे माडु को अपनी राजधानी बनायी। बाद मे यहाँ पर अल्पखाँ, दिलावर खाँ तथा अनेक खिलजी बादशाहो की हुकूमत रही। कहते हैं दिल्लीपति हुमायूँ ने बहादुरशाह को माडु मे

शरण लेने पर परास्त कर माडु पर अधिकार किया जिसे आगे चलकर शेरशाह ने हुमायू से छीन लिया था। शेरशाह का एक सेनापति था सुजात खान जिसके बयाजिद खान नाम का एक लडका था। इतिहास मे यह बाजबहादुर के नाम से जाना जाता है। यह स्वतत्र पठान शासक मालवा का अतिम सुल्तान था जिसने 1554 ई० से 1564 ई० तक उल्लेखनीय राज्य किया। बाजखान, सगीत, शिकार और ललितकलाओ का शौकीन था। बाजखान का विवाह रूपमती नाम की एक राजपूत लडकी से गहरे प्यार भरे वातावरण मे हुआ था। रूपमति बहुत बहुत सुदर थी। सारगपुर मे जन्मी यह लडकी अपनी उन्मादभरी मधुर आवाज के लिये विख्यात थी। एक बार की बात है रूपमती एकात मे किसी पेड के नीचे बैठी गा रही थी। तभी बाजबहादुर उधर से गुजरा। रूपमती की मोहक स्वरगीतिका सुनकर वह उसके प्रेम मे बँध गया। लेकिन रूपमती एक परम्परावादी हिन्दू लडकी थी अत उसने मालवा के सुल्तान बाजबहादुर से विवाह पर आनाकानी की। लेकिन कुछ समय बाद बाजबहादुर के असीम प्यार को देखकर रूपमती ने एक शत पर शादी की बात मान ली। रूपमती प्रतिदिन नमदा नदी के किनारे पूजा किया करती थी। अत रूपमती ने कहा कि वह यदि नमदा के जल को माडु क पहाडी किले तक ले आये तो विवाह हो पायेगा। विश्वास कीजिये, मालवा का सुल्तान बाजबहादुर नमदा का जल माडु क़िले के 1200 फीट ऊँचे स्थान तक ले आया और वहा एक कुण्ड बनवाया जिसका कि नाम रूपकुड रखा गया।

इस घटना से कवि जगन्नाथ द्वारा मुस्लिम महिला से शादी करने पर गगा नदी का जलस्तर काव्य पाठ से बढा दिया गया यह बात याद हो आती है। इसके बाद तो रूपमती और बाजबहादुर का जोडा देश भर मे विख्यात हो गया। अब वे दोना गीत लिखते और ललितकलाओ में ही अपना अधिकतर समय बिताते। प्रेम और उमग की इस अवस्था का पता जब दिल्लीपति अकबर को चला तो उसने अपने सेनापति आदमखान को सेना लेकर माडु पर आक्रमण करने भेजा। बाजबहादुर लडता लडता माडु छोडकर भाग गया। कहते है रानी रूपमती को आदमखान ने गिरफ्तार कर लिया। इतिहास कहता है कि रूपमति ने अपने को नापाक इरादा से बचाने के लिए, जहर खाकर आत्म हत्या कर ली।

रूप की रानी रूपमती—राग भूपक कल्याणी की बेहद शौकीन गायिका थी, जो नापाक इरादो के खण्डहरो मे आज भी बिखरी सी लगती है।

माडु के इस किले मे अनेक मस्जिद, महल और भव्य स्थल हैं जो दशको का पठान वास्तुकला की याद दिलाती है। आज भी अनगिन दरवाजे, हिंडोला-

महल, जहाज महल, बाजबहादुर का महल और रूपमति की दीर्घा बीते समय की मादकता के मुखरित साक्षी हैं।

माडु के किले मे कोई 10 दरवाजे, दिलावरखाँ और होशांग की भव्य मस्जिद तथा महमूद का विजय स्तम्भ भी पर्यटको के आकर्षण का केन्द्र है।

यही पर बाद मे राणाकुम्भा ने माडु पर अधिकार किया तथा इस विजय की खुशी मे चित्तौड का विजय स्तम्भ बनवाया। शहशाह अकबर और जहाँगीर भी आये, पर कहते हैं कि रूपमती और बाजबहादुर के बाद माडु की रंगीन तबियत कभी नही देखी गई।

आज भी माडु के भव्य प्रासाद भावुक प्रेम की ऐसी बानगी हैं जिसे देख कर सूखा मन सहसा हरिया जाता है।

मदुरई

तमिलनाडु राज्य की द्वितीय विशालतम नगरी है मदुरै। त्रिचनापल्ली तुत्तीकोरिन रेलमार्ग पर स्थित मदुरै, तिरुचि से 138 किलो मीटर दूर है। अब तो यह एक आधुनिक नगरी है, पर यहाँ के कई प्राचीन मन्दिर और प्रासाद, द्रविड मूर्तिकला एव वास्तु कला के सर्वोत्तम और प्रतिनिधि नमूने के रूप मे जाने जाते हैं। मदुरै नगरी का वर्णन 'मदुरैक्काची' नामक काव्य मे कवि मागुडी मरुदनार ने इस प्रकार किया है—मदुरै का द्वार पर्वत की तरह ऊँचा है, जिसके दोनो तरफ रक्षक देवताओ की मूर्तिया लगी हैं, जिन पर यहाँ के नर नारियो द्वारा तेल चढाते रहने के कारण वे काली पड गई है। पडोस मे बहती वैगै नदी के पाट की तरह इस नगर की सडकें चौडी और भव्य हैं। पुहार चोल राजाओ की राजधानी रहने के कारण यह नगरी सभी धर्मावलम्बियो के लिये आराधना का केन्द्र रही। 'शिलप्पधिकारम' और 'मणिमेखलै' महाकाव्य यहा के जन जीवन की सम्पूर्ण जानकारी के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। अन्य सभी चर्चा योग्य भूमिकाओ को छोडकर 'मीनाक्षी मन्दिर' यहाँ के उन परिचयों मे से है, जिसकी ख्याति देश में ही नही, विदेशो मे भी फैली हुई है। 22 बीघा भूमि पर निर्मित मीनाक्षी मन्दिर मे कुल मिलाकर 26 गोपुर हैं। गोपुर द्रविड मन्दिर कला की विशिष्टताओ म गिने जाते हैं। मन्दिर का सबसे ऊँचा गोपुर दक्षिण दिशा का, और सबसे सुन्दर, पश्चिम दिशा का है। बडे गोपुर तो ग्यारह मंजिल ऊँचे हैं। मन्दिर का प्रवेश पूर्वी गोपुर से है। इस मन्दिर मे दो मूर्तियाँ

हैं—एक भगवान सुदरेश्वर अर्थात शिव की तथा दूसरी उनकी सहभागिनी मीनाक्षी की। मीनाक्षी मन्दिर का भीतर का रुचिकर भाग हजार स्तम्भो वाला भवन है, जो सोलहवी शताब्दी मे बनवाया गया था। मन्दिर के बाहरी ओर की इमारत मे एक सगीत स्तम्भ है, जिसमे छोटे छोटे कई सीधे पत्थर लगे हैं और जिनको बजाने पर सगीत की ध्वनि नि सृत होती है। मूर्तियो के सामने वाले भाग को कम्बाथडी मण्डप कहते हैं, तथा मन्दिर के सामने वाले मण्डप को 'बसन्त मण्डप' कहते हैं। यह 17 वी शताब्दी मे तिरुमल नायक द्वारा बनवाया गया। इसमे सपाट छत का एक बरामदा है, जिसके तीनो पाश्व मे आने जाने के मार्ग हैं। इस मण्डप के स्तम्भो पर अकित मूर्तिकला का चित्रण मनोहारी है। पूर्वी गोपुर से मन्दिर मे प्रवेश करने पर नगार मण्डप आता है, फिर अष्ट शक्ति मण्डप है जिसके स्तम्भो पर आठ लक्ष्मियो की मूर्तियाँ छत का आधार बनी है। इससे आगे चलकर है मीनाक्षीनाकयम् मण्डप, अधेरा मण्डप और 'पोत्तामरै कुलम्' अर्थात् स्वण पुष्करणी सरोवर, जहा भगवान शकर की 64 लीलाओ के चित्र है। सरोवर के आगे है 'पुरुष मृग मण्डप' जिसके सामने ही है मीनाक्षी देवी के निज मन्दिर का द्वार। मीनाक्षी देवी की मूर्ति बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से शोभित है। मन्दिर का शिखर स्वण मण्डित है। यही पास मे है सुदरेश्वर मन्दिर जिसमे ताण्डव नृत्य रत शिव अर्थात नटराज की चाँदी से लिपटी मूर्ति है। मीनाक्षी मन्दिर के अहाते मे ही कारैकालअम्मा, सुब्रह्मण्य, दुर्गाजी, गणेशजी आदि के मन्दिर हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, अनसूयाजी, पाच पाण्डव, स्वामी कार्तिक, वीरभद्र, अघोरभद्र, हनुमानजी, सरस्वती और गगा की आकषक मूर्तियो के साथ-साथ उन असख्य मीनाक्षी भक्तो की मूर्तियाँ भी हैं जिन्होने इस मन्दिर के इतिहास को अपनी साधना से उल्लेखनीय बनाया।

मीनाक्षी मन्दिर के सबध मे अनेक आख्यान कहे-सुने जाते हैं, जिनका सबका उल्लेख यहा सम्भव नही है। उत्सवो की नगरी मदुरै मे चैत्र महीने मे मीनाक्षी-सुदरेश्वर विवाहोत्सव के समय रथ यात्रा भी होती है। वैशाख मे आठ दिन तक बसन्तोत्सव मनाया जाता है, आषाढ मास मे मीनाक्षी देवी की विशेष पूजा होती है। श्रावण मे शकर की लीलाओ का स्मरणोत्सव मार्ग शीर्ष आर्द्रा नक्षत्र मे नटराज का अभिषेक, पौष पूर्णिमा को मीनाक्षी देवी की रथ, यात्रा, तथा फाल्गुन मे मदन-दहनोत्सव' के उत्सव इनमे प्रमुख कहे जाते हैं। सुदरेश्वर के भक्त पाण्डय नरेश मलयध्वज और रानी काचनमाला की शिव-सुदरेश्वर से विवाहित कन्या मीनाक्षी का यह मन्दिर दक्षिण भारत के प्रमुख कला मन्दिरो मे है जिसका बहुपक्षिय दशन लाभ मदुरा, मदुरै, मदुरई या

मदुरैई पहुँच कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

सागर मे जल बहुत है
गागर मे जल एक, —
दुनिया मे मन्दिर घने
पर 'मीनाक्षी' एक।

मथुरा

मुक्ति कहै गोपाल सों, मेरी मुक्त बताय।
ब्रज रज उडि माथे पर मुक्ति मुक्त हो जाय॥

नारद पुराण, वाराह पुराण और पद्म पुराण मे वर्णित ऐसी पावन ब्रज भूमि की केन्द्रस्थली मथुरा के इतिहास मे चार नाम मिलते हैं—मधुपध्न, मधुपुरी, मधुरा तथा मथुरा। इन सभी नामो का सबध मधुदैत्य से है, जिसे मारकर शत्रुघ्नजी ने ऋषियो का क्लेश दूर किया था। भगवान श्री कृष्ण की जन्म भूमि एव लीलाभूमि होने के कारण इसे नगरी के सदभ मे कहावत तक चली आ रही है— तीन लोक से मथुरा न्यारी।

ऐसी अनादि रास भूमि के सबध मे एक बार देवर्षि नारद ने, सृष्टि के प्रारम्भ मे स्वायम्भुव मनु के पौत्र ध्रुव को बतलाते हुए कहा था 'पुण्य मधुवनयत्र सानिध्य नित्यदाहरे'। जहाँ श्रीहरि नित्य सन्निहित रहते हैं—ऐसी मथुरा पहले शत्रुघ्नजी तथा उनके वशजो की राजधानी थी। आगे चलकर महाभारत के अनुसार शूरसेन जनपद की राजधानी भारत की सप्त महापुरियो मे गणित मथुरा, 325 से 185 ईसवी पूव मे मौर्य एव 185 से 63 ईसवी पूव मे शुग साम्राज्या मे सम्मिलित बताई जाती है, साथ ही ये भी कहा जाता है कि सम्राट आशोक के गुरु उपगुप्त मथुरा ही के निवासी थे।

ऐतिहासिक महत्व के साथ साथ मथुरा का धार्मिक महत्व भी है। शुरू से ही यहाँ हिन्दुओ, बौद्ध और जैनो की धमपरायणता का प्रभाव रहा है। गगा-यमुना के दोआव मे बसी मथुरा स प्राप्त अनेक मूर्तिया, शिलालेखो तथा मृण्मूर्तियो से यह पता चलता है कि यहाँ कभी कला का स्वर्ण युग था। श्रावस्ती, साची और सारनाथ को यहा से विशिष्ट मूर्तियाँ बनकर जाती थीं, साथ ही विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, दुर्गा, सरस्वती आदि की मूर्तियो का आविर्भाव भी यहीं से माना जाता है।

गुप्तकाल म तो मृण्मूर्तिया से मकान सजाये जाते थे तथा भगवान श्रीकृष्ण

के भाई बलराम को शेष का अवतार मानने के कारण यहा नागा की पूजा बहुतायत से की जाती थी।

यक्ष प्रतिमाओ, वेदिका शिलापट्टो, ईरानी शैली एव यूनानी प्रभाव की मूर्तियाँ, बौद्ध प्रभावी धमचक्र और स्तूप, कुषाण वेषिय सूर्य्य मूर्ति, और गाधार कला की अनेक दीपकर जातक चित्रित मूर्तियो मे उद्बोधित मथुरा के लिये महमूद गजनवी ने कहा था—"यहा हजारो मन्दिर तथा प्रासाद है। इनमे बहुत से सगमरमर के बने हैं जिनको बनाने मे करोडो दीनार खच हुये होंगे तथा सकडो वर्ष बनाने मे लगे होंगे," परन्तु ये सब कुछ अब यहा नष्ट हो गया लगता है। उत्तर प्रदेश मे आगरा के निकट स्थित मथुरा रेल एव सडक की यातायातीय सुविधाओ से जुडा है। यहा यमुनाजी के किनारे कोई 24 मुख्य घाट हैं, जिनमे विश्राम घाट मुख्य है। कहते हैं यहा कस वध के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने विश्राम किया था। मथुरा से चारो तरफ 4 शिव मन्दिर हैं। जहाँ, आज केशव देव का कटरा है, वहाँ कहते है प्राचीन मथुरा थी। द्वारिकाधीशजी का मन्दिर नगर का सब से प्राचीन मन्दिर है, जिसकी सेवा पूजा वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार होती है। इस के अतिरिक्त-वाराह मन्दिर, गोविन्दजी का मन्दिर और अनेक जैन देवस्थल यात्रियो के लिये दर्शन के केन्द्र है।

मथुरा का नाम लेते ही सहसा राधा और कृष्ण की लीलाओ का चित्र मानस मे उभरता ह लेकिन अब धीरे धीरे वह पुरातन सप्तरगी स्वरूप पिघलता जा रहा है। यह वही मथुरा है जिसके लिये वाराह पुराण मे कहा गया है कि—'जो मथुरा क प्राप्त होने पर उसकी प्रदक्षिणा करता है समझो उसने सातो द्वीपवाली पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली।'

महामाध्या प्रयागे तु यत् फल लभते नर।
तत् फल लभते देवि मथुरायां दिने दिने॥

अर्थात्—महामाघी के दिन प्रयाग मे जो स्नानादि का फल है वह मथुरा मे प्रतिदिन सामान्यतया प्राप्त होता रहता है।

राजमहेन्द्रवर

आंध्र प्रदेश के सांस्कृतिक विशिष्टता संपन्न प्राचीन नगरों में राजमहेन्द्रवर बहुत प्रसिद्ध है। इस नगर का निर्माण पूर्वी चालुक्य वंश के प्रथम अथवा द्वितीय अम्मुराजु ने ई० सन् 921 और 970 के बीच कराया था। यह नरेश 'राजमहेन्द्रवर' कहलाते थे। इसलिये इस नगर का नाम राजमहेन्द्रवर पड़ा था जो अंग्रेजों के जमाने में बिगड़ कर 'राजमंडी' हो गया। राजमहेन्द्रवर सन् 1020 के करीब तत्कालीन पूर्वी चालुक्य राजराजा नरेन्द्र के द्वारा वेंगी राज्य की राजधानी बनाया गया जो पूर्वी समुद्र के किनारे उत्तर में विशाखापट्टणम से लेकर दक्षिण में गुंटूर तक फैला था। इसी समय से लेकर तेलुगु या आंध्र भाषा के साहित्य का क्रमिक इतिहास उपलब्ध होता है। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान का कार्य कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के द्वारा प्रारम्भ हुआ था जिसे कि राजराजा नरेन्द्र के समय में सन् 1022 और 1061 के बीच में पर्याप्त बल मिला, जिससे आंध्र जनता वैदिक संस्कृति का पुनरुद्धार करने में समर्थ हो सकी। श्री राजराजा नरेन्द्र महाराजा भोज के समकालीन थे और संस्कृत की चंपू रामायण के प्रसिद्ध लेखक थे।

आंध्र भाषा के साहित्य का प्रारम्भ ज्ञात रूप से राजमहेन्द्रवर के महाराजा राजराजा नरेन्द्र के समय से माना जाता है। उन्होंने अपनी राजभाषा के विद्वत्कवि नन्नय भट्ट के द्वारा व्यास महाभारत का आंध्रानुवाद कराया, इसी पवित्र राजमहेन्द्रवर नगर में नन्नय भट्ट आंध्र भाषा के आदि कवि माने जाते हैं।

इस प्रकार आंध्र के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के महान कार्य का पवित्र क्षेत्र होने के कारण राजमहेन्द्रवर का वैशिष्ट्य बहुत बढ़ गया है। नन्नय के बाद श्रीनाथ को जो प्रसिद्ध शैव कवि थे, रेड्डी वंश के वीरभद्रा रेड्डी के द्वारा इसी नगर में आश्रय मिला। श्रीनाथ ने यहीं काशी खण्ड की रचना कर वीरभद्रा रेड्डी को समर्पित किया। श्रीनाथ, पिन्नकोट, पद्मन्न आदि कवियों ने अपने काव्यों में राजमहेन्द्रवर का सुंदर वर्णन किया। आधुनिक काल में भी साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से इस नगर का महत्व अक्षुण्ण बना हुआ है। आधुनिक आंध्र साहित्य के बहुमुखी प्रतिभाशाली साहित्यकार श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु जी का यह कार्य क्षेत्र रहा है। श्री वीरेशलिंगम् जी ने अपना संपूर्ण साहित्यिक जीवन इसी नगर में बिताया और धार्मिक, सामाजिक तथा

साहित्यिक दिशाओ मे अभूतपूर्व सुधार करके समूचे आंध्र को एक नया जीवत दृष्टिकोण प्रदान किया है, जिसके फलस्वरूप आंध्र के जातीय जीवन मे समयो पयोगी बहुत बडा परिवर्तन आ गया है। आंध्र नाटको के विकास मे भी राजमहेन्द्रवर का प्रमुख स्थान है। यहाँ हिन्दू नाटक समाज और चितामणि थियेटर नामक मडलियाँ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे ही स्थापित हुई थी जिन्होंने आंध्र रगमच के विकास म बडा योगदान दिया।

राजमहेन्द्रवर जिला, पूर्वी गोदावरी का एक प्रधान नगर है, जो मद्रास कलकत्ता रेलवे लाइन पर गोदावरी का पुल पार करते ही पडता है। इसके दो रेलवे स्टेशन हैं। एक गोदावरी और दूसरा राजमहेन्द्री। इस नगर की आबादी लगभग डेढ लाख की है। इस नगर मे एक शासकीय कला महाविद्यालय है। अल्यूमीनियम और कागज निर्माण के उद्योग यहाँ प्रधान हैं।

राजमहेन्द्रवर के साथ एक और रोचक कथा का सम्बन्ध जोडा जाता है। उसके अनुसार इसके शासक राज राजा नरेन्द्र के सारगधर नामक एक पुत्र था। जो सौतेली माँ के षडयन्त्र के कारण पिता के कोप का भाजन बना था। जिसके फलस्वरूप उसके हाथ पैर काट दिये गये थे, किन्तु बाद मे मत्स्येंद्रनाथ नामक सिद्ध की कृपा से फिर जुड गये थे। अब भी राजमहेन्द्रवर के बाहर सारगधर का टीला दिखाया जाता है। लोग कहते हैं कि यही सारगधर के हाथ पैर काट दिये गये थे। किन्तु इस कथा मे सत्य का अश नही है क्योंकि ऐतिहासिक शोध के आधार पर यह कथा कल्पित ठहरती है। यह घटना मालव देश मे घटी थी जो सदियो पहले राजाओ के नाम सादृश्य के कारण इस नगर के राजा के साथ जोड दी गई थी।

निश्चय ही पावन गोदावरी जल से पुनीत राजमहेन्द्रवर, आंध्र की सस्कृति और साहित्य के विकास मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

रामेश्वरम्

चारो दिशाओ के चारधामो मे रामेश्वरम् दक्षिण दिशा का धाम है। स्कन्दपुराण मे इसके लिये कहा गया है—भगवान राम द्वारा बधाये सेतु मे जो परम पवित्र हो गया हो, वह रामेश्वर तीर्थ सभी तीर्थों तथा क्षेत्रो मे उत्तम है। इस सेतु के दर्शन मात्र से ससार सागर से मुक्ति हो जाती है तथा भगवान विष्णु एव भक्ति तथा पुण्य की वृद्धि होती है। उसके कायिक, वाचिक, मान-

सिक तीनो प्रकार के कम सिद्ध हो जाते हैं इसमे कोई सशय नही। सेतु, श्री रामेश्वरलिंग तथा गध मादन पवत, इनके चिंतन मात्र से मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

ग्यारह मील लम्बा और सात मील चौडा ये समुद्री द्वीप—रामेश्वरम् पहले भारत की मुख्य भूमि से मिला हुआ था, किन्तु किसी प्राकृतिक कारण से अब ये पानी के बीच द्वीप के रूप मे अवस्थित है।

भारत के द्वादस ज्योतिर्लिगो मे रामेश्वरम् की गणना है। भगवान राम ने इसकी स्थापना की थी। कहते हैं जब भगवान राम यहाँ पधारे, तब उन्होने पहले उप्पूर मे गणेशजी की प्रतिष्ठा की। नवपाषाणम् मे उन्होने नवग्रहपूजन और स्नानादि किया। इसके उपरान्त, वे एक स्थान पर एकान्त मे बठे और फिर रामेश्वरम् जाकर रामेश्वर-स्थापन का पूजन किया।

भगवान राम ने यहा जो सेतु बनवाया था वही अपार वानर सेना को समुद्र पार लका तक ले गया था। उसकी चौडाई देवीपत्तन से दभशयन तक थी। दवीपत्तन को ही सेतु मूल कहते है। ये सेतु सौ योजन लम्बा था, कहते हैं जिसे भगवान राम ने लका से लौटते समय धनुष की नोक से तोड दिया था। इस प्रकार रामनाद अर्थात रामनाथपुरम् से धनुष कोटि तक का यह पूरा क्षेत्र परम पावन है। भगवान राम की लीला भूमि यह क्षेत्र, पहले गध मादन के नाम से विख्यात था, किन्तु कलियुग के प्रारम्भ म यहाँ का गन्धमादन पवत पाताल मे चला गया। रामेश्वरम् ऐसा पावन धाम है जहा देवता बार बार आते है, अत इसे देव नगर भी कहते हैं। अपनी तीथ यात्रा मे बलदेवजी भी यहा आये थे और पाण्डव भी आये थे। देवता, ऋषिगण और महापुरुषो की श्रद्धाभूमि रामेश्वरम् महर्षि अगस्त्य की तपोभूमि भी रही है।

रामेश्वरम् जाने के लिये यात्रियो को पहले मद्रास धनुषकोटि रेल लाईन पर स्थित स्टेशन, पाम्बन् तक जाना होता है। पाम्बन् से ही रामेश्वरम् को सीधी रेल व्यवस्था है। रामेश्वरम् भाषा सस्कृति और वैचारिक एकता का सगम है जहाँ उत्तर, दक्षिण और पूव पश्चिम के लोग अपार सख्या म आते हैं अत हिन्दी भाषा यहा सभी द्वारा जानी समझी जाती है।

रामेश्वरम् पहुचकर यात्री पहले लक्ष्मण तीथ जाते हैं जहाँ कि लक्ष्मणश्वर शिव मन्दिर है जिसकी कि स्थापना लक्ष्मणजी ने की थी। लक्ष्मणतीर्थ से स्नानादि कर यात्री सीता तीथ जाते हैं, इसके उपरान्त रामतीर्थ है जहाँ एक बडे मन्दिर मे श्रीराम लक्ष्मण और जानकी का श्री विग्रह है। रामतीथ से आगे चलकर 20 बीघे भूमि के विस्तार मे श्री रामेश्वर मन्दिर अवस्थित है। मन्दिर के चारों ओर ऊँचा परकोटा है। पूव और पश्चिम मे ऊँचे गोपुर हैं। यहाँ पश्चिम द्वार से मन्दिर के भीतर जाने पर माधव तीथ नामक सरोवर

बना है, जिसके एक आगन मे अनेक नामरूपा कूप बने हुए है। चक्रतीथ, सूयतीर्थ, चन्द्रतीथ, गगातीथ, यमुनातीर्थ और गयातीथ आदि के बाद श्री रामेश्वरम् मन्दिर के सम्मुख स्वणमडित स्तम्भ के पास ही विशाल श्वेतवर्णा नन्दी की मूर्ति है।

श्री रामेश्वरम् मन्दिर के सामने छडो का घेरा लगा है, यहा तीन द्वारो के भीतर श्री रामेश्वरम् का ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है। इनके ऊपर शेष नाग के फणो का छत्र है। यहाँ केवल गगोत्तरी या हरिद्वार से लाया गया जल ही चढाया जा सकता है, अन्य नही। श्री रामेश्वरम् की परिक्रमा पर यहाँ कई देव प्रतिमाओ के दर्शन होते हैं, जिन्ह देखकर भारतीय वास्तु कला के मूल स्वरूप का पता चलता है। मन्दिर के भीतर कोई 22 तीथ है। श्री रामेश्वर मन्दिर मे या तो उत्सव चलते ही रहते हैं, पर महाशिवरात्रि, वैशाखपूर्णिमा, नवरात्रोत्सव आदि उनमे प्रमुख है। प्रत्येक प्रदोष को श्रीरामेश्वर की उत्सव मूर्ति वृषभवाहन पर मन्दिर के तीसरे प्राकार की प्रदक्षिणा मे निकलती है।

प्रसिद्ध रामझरोखा, श्रीरामेश्वर मन्दिर से कोई सवा किलोमीटर दूर है। सभी वण विवादो से परे भारतीय जनमानस की आस्था का प्रतीक ये तीर्थ धाम-रामेश्वरम् रामकथा का वह स्वर्णिम पृष्ठ है, जिसका माहात्म्य आने वाली पीढी को नया विश्वास देगा।

लाल किला

शायद भारत ही दुनिया का एक मात्र ऐसा देश है, जहाँ का अधिकाश इतिहास पत्थरो पर अकित है। उन पाषाणो मे एक ऐसा स्वर मुखरित है जो समय के साथ और अधिक मुखर होता जाता है। बीते युग के परिवतनो के साक्षी है—भारत के दुग, गढ और किले। इन सबमे 'लाल किले' का नाम तो भारत के स्वतन्त्रता सग्राम से इस तरह जुडा है कि आज भी हम इसके प्राचीर पर लहराते 'तिरगे' से अपनी आजादी एव अस्तित्व को आँकते हैं।

ऐसी वैभवशाली मुगलकाल के परिचायक लालकिले का निर्माण बादशाह शाहजहाँ ने करवाया था। जिस प्रकार शाहजहाँ का बनवाया 'ताजमहल' दुनियाँ मे सफेद प्रेम की जीती जागती निशानी है, उसी प्रकार— लालकिला' भी स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रस्तावना पत्र पर–रक्ताक्षर के रूप मे जाना जाता है। यहाँ आज भी दीवाने आम, खास महल शीशमहल, मोती मस्जिद, अदालत खाना और मीना बाजार के धुधले रगो को देखकर शक्ति एव सुषमा के

समन्वय का आनन्द प्राप्त किया जाता है। लेकिन दिल्ली जाने पर कुतुब मीनार, लोदी गुम्बद, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, जन्तर मन्तर, इंडिया गेट, जामा मस्जिद, राजघाट, अशोकस्तम्भ, सूरज कुण्ड, सफदरजंग गुम्बद आदि स्थानो को देखकर भी जो–'लालकिला' नही देख पाता, निश्चय समझें दिल्ली दर्शन अधूरा ही रह गया है। सभी तरफ से एक हरी दूब की पट्टी मे लिपटा लालकिला जमुना नदी के किनारे अवस्थित है। हर साल 15 अगस्त को भारत के प्रधानमन्त्री लालकिले की प्राचीर से ही झंडा फहराकर राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित करते हैं।

लालकिले के मुख्यद्वार से पूर्व पानी की नहर को पारकर भीतर जाने पर चारो तरफ मेहराबदार दालान हैं, जहां कहते हैं कभी मीना बाजार लगता था। यहां पहले शाही सेवा मे ही सुनार, रंगसाज, बढई, दर्जी और जुलाहे रहते थे जो मखमल और कामखवाब की पगडियाँ बनाते थे, जनाने पाजामे के लिये जरी के कमरबन्द बनाते थे। सबसे अच्छी बात ये थी कि इन चुने हुए पेशेवरों का काम पुश्तैनी चला करता था। दीवानखाने के सुंदर नक्काशी का काम उखडा उखडा सा है जिसके लिये कहा जाता है कि इस सारी सम्पत्ति को अंग्रेजो ने लूटा और नष्ट किया। जहाँ दीवारो पर, पहले मोहरें, चाँदी के रुपये और मोती मानक जडे थे वहाँ आज केवल गड्ढे ही देखे जा सकते हैं। आगे है—बालाखाना, जहाँ चबूतरो पर कभी शहनाईयाँ और नफीरियां बजा करती थी। नक्कारखाने के दरवाजे के सामने, सहन के आगे एक बडा दालान है, जिसकी छतों पर सुनहरा काम है, यही हवादार खुले स्थान पर 6 फुट ऊँचा और एक फुट चौडा शहनशीन बना हुआ है, यहीं दोपहर के वक्त बादशाह सलामत आकर बैठा करते थे।

पास ही है अदालतखाना जहाँ बैठकर बादशाह जनता को न्याय बाँटते थे। इन सब के साथ ही लालकिले का जनाना हिस्सा भी है जिसमे उजड बागो और सूखे भिन्न भिन्न फूलो के नाम के प्रतीक फव्वारो को देखकर— शाहजहां की मनोहर कथा का पता लगता है। लाल किले का नाम हम सब— आये दिनो समाचार पत्रो मे पढते रहते है। किसी विदेशी अतिथि का राजकीय सम्मान भी यहीं होता है।

लालकिले की चहार दीवारी, लाल रेतीले पत्थरो की बनी है इसलिये यह लालकिला कहलाता है। लेकिन शाहजहाँ तथा औरंगजेब के समय मे इसे किला ए मुबारक' या 'भाग्यदुर्ग' कहा जाता था।

8 अप्रैल 1648 को यह ऐतिहासिक किला बनकर पूरा हुआ, जिसमे लगभग नौ करोड रुपये का खर्च आया। ये लालकिला ही है जिसने कवियों को प्रेरणा दी बादशाहो को शक्ति दी तथा जनता को विश्वास दिया।

लद्दाख

भारत पर चीन के, 1962 में हुए आक्रमण के समय, आप सबने लद्दाख का नाम बहुत सुना होगा। लद्दाख, जम्मू और कश्मीर राज्य का सीमावर्ती जिला है, जिसकी तीन तहसीलें हैं—करगिल, जान्सकर और लेह। सीमावर्ती जिले का कुल क्षेत्रफल 44,000 (हजार) वर्गमील है।

जान्सकर, लद्दाख, मुस्ताग और क्यूनलुन नामक हिमालय की पर्वत श्रेणियों के मध्य फैला ये जिला—नदियों, झीलों और बौद्ध विहारों का पुण्य स्थल है, जहाँ वृक्ष को पूजा जाता है। अधिक हिमपात, नीरस एवं शुष्क भूमि होने के कारण यहाँ का जन जीवन मेहनत तथा परिश्रम का जीवन है। 9 000 (हजार) फीट से 15,000 (हजार) फीट तक की ऊँचाई पर बसे लद्दाखी गाँवों की राजधानी लेह' है।

लद्दाख के वर्तमान निवासी—तीन प्रकार के वर्गों से उत्पन्न माने जाते हैं। इनमें से दो, दद और मौन आर्य थे, तीसरे जो कि संख्या में अधिक थे, मंगोल वर्ग के थे। लेह और जान्सकर के निवासी अधिकतर बौद्ध हैं, करगिल तहसील के निवासी शिया मुसलमान हैं।

मौन लोगों ने जो कि शायद कश्मीर घाटी से आये थे, यहाँ गाँव और विहार बनवाये। पश्चिम से आए दद लोगों ने सिन्धु नदी के किनारे किनारे बस्तियाँ बसाई। ज्ञात हो मौन और दद दोनों ही बौद्ध थे। जहाँ मौन लोग कला और कृषि में पूर्ण थे, वहाँ दद लोग अच्छे योद्धा थे। उन्होंने ही लद्दाख में पोलो का खेल प्रचलित किया था।

सातवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच यहाँ बौद्ध भिक्षु आये, जिसकी वजह से यहाँ बौद्ध धर्म को बढ़ावा मिला। दसवीं शताब्दी में यहाँ मंगोल जाति के लोग आये। इस प्रकार लद्दाख का शेष कश्मीर घाटी के साथ राज-नैतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध प्रगाढ़ होता गया।

वीरता एवं धर्म की ये धरती अपने जीवन काल में कई युद्ध देख चुकी है। आठवीं शताब्दी में चीनियों का आक्रमण, सोलहवीं शताब्दी में मध्य एशिया के तुर्कों का हमला, 1681 और 1683 में मंगोलों और तिब्बतियों का आक्रमण इनमें प्रमुख है। 1957 में चीन की अक्साई चिन प्रदेश में की गई घुसपैठ, भारत चीन सीमा विवाद की मुख्य घटना है। जिसने लद्दाखियों

को सुरक्षा और सगठन की नई दिशा दी और वे देश रक्षक सैनिक के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लडे। लद्दाख धार्मिक सहनशीलता का एक अनूठा उदाहरण है।

हर लद्दाखी का अपना धम होता है चाहे एक परिवार मे तीन भाई हो और वे किसी भी धम को मानते हो। किन्तु लद्दाख के अधिकाश लोग बौद्ध हैं। यहा के हर गाँव मे बौद्ध विहार हैं जिसे गोम्पा कहा जाता है। इसका बौद्ध पुरोहित लामा कहलाता है। लामा मूँछ और दाढी साफ रखते हैं, वे लाल या पीली टोपी पहनते है जो इनके सम्प्रदाय की प्रतीक होती है। लद्दाख के बौद्ध मुख्यत रक्तवण सम्प्रदाय के हैं, जिसकी नीव महान भारतीय तांत्रिक महायान बौद्ध धम के रूप मे डाली गई थी। दो दलो मे बँटे एव गोम्पा मे रहने वाले भिक्षु ही, खेती, किराया वसूली, भिक्षादानसग्रह एव आध्यात्मिक तथा धार्मिक गतिविधियो को देखते हैं। लेह का प्राचीनतम प्रमुख गोम्पा 'हिमिस गोम्पा है जो लेह से 25 मील दूर 12,000 (हजार) फुट की ऊँचाई पर स्थित है। लद्दाखी बौद्ध जीवन मे लोकगीतो, मेला और त्योहारो का विशेष स्थान है। किसी भी सावजनिक समारोह मे नृत्य, मल के समय गोम्पा मे खेले जाने वाले नाटय, बहुत ही मोहक एव सगीतमय होते हैं। गोम्पाओ मे बने भित्तिचित्रो से मूर्तियो से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ वास्तुकला का विकास चरमस्थिति पर रहा होगा। लद्दाख की समस्त कला, भारतीयता के प्रभाव से पूण है।

लद्दाख मे तिब्बती साक्षरता काफी है। यहाँ की लिपि सातवी शताब्दी की देवनागरी से निकली है। मुख्यत यहाँ के लोग 'जौ' खाते हैं। चाय उनका प्रिय पेय है। 'सादा जीवन और उच्च विचार' के प्रतीक लद्दाखी निवासी मोटे लबादे और सिर पर भेड की खाल की टोपी पहनते हैं। अलकरण के शौकीन पुरुष अपनी पेटियो मे चाकू, चकमक पत्थर, तम्बाकू चाय की थैली और लोहे का चमकदार पाईप आदि लटकाये रहते हैं।

स्त्रियाँ काली ऊन की जाकेट और रगो के पट्टीदार ऊनी फ्राक पहनती हैं जो घुटनो से नीचे तक होते है। उनके ऊपर, भेड की खाल के चोगे पर लोहे व पीतल की टँकी सुईयाँ, बालो से पास-फीरोजाटँकी पट्टियाँ जो कमर तक लटकती रहती है, बहुत ही सुन्दर लगती हैं। बहु पति की प्रथा अब यहाँ समाप्त हो चली है। लद्दाखियो के विवाह की रस्म बडी दिलचस्प है। मिसाल के लिये, वर कन्या के घर नही जाता अपितु वर का पिता और निकट सम्बन्धी कन्या को आकर ले आते हैं। बौद्ध विहारो मे ब्रह्मचारी लामाओ की अधिक सख्या के कारण यहाँ जन-सख्या तो नही बढी है, पर शिशुजन्म का अवसर खुशी का अवसर होता है, जब मुख्य लामा बच्चे का नामकरण करता है।

याक और गाय के मेल से उत्पन्न 'ज्यो' को जमीन जोतने के काम मे लाया जाता है। ऊपरी इलाके की फसलो मे जौ, ज्वार, बाजरा, मटर, गेहूँ और निचले इलाका मे खुबानी, अखरोट शहतूत और सेब मुख्य हैं। लद्दाख की प्रमुख व्यापारिक वस्तु ऊन है तथा मुख्य आजीविका खेती है।

लद्दाख, भारत का राजमुकुट है, जो सडकें, सिचाई एव वृक्षारोपण की विभिन्न विकास योजनाओ के अन्तर्गत सामाजिक, सास्कृतिक एवं राजनैतिक सुधारवाद मे सलग्न है। तिब्बत के साथ लद्दाख के सम्बन्ध अब चाहे न रहे हो, पर वहाँ का बौद्ध सास्कृतिक जीवन आज भी अपने म उत्थान एव ऐतिहासिकता के वे सभी पक्ष सँजोये है, जो उसे विरासत मे मिले हैं।

सारनाथ

राष्ट्र चिन्ह 'अशोक स्तम्भ' से आप सभी परिचित हैं, आप जानना चाहेंगे कि ये स्तम्भ कहाँ है और इसे किसन बनवाया था। यह अशोक स्तम्भ, सारनाथ में आज भी देखा जा सकता है। ये सम्पूर्ण स्तम्भ एक ही पत्थर का बना है। इस पर सिंहा की चार मूर्तियाँ हैं। सिंहो के निचले भाग मे एक उलटे कमलनुमा, सोलह पखुरियो का फलक है, जो चौकी का काम देता है, इस पर चारो दिशाओ मे भागते हुये हाथी बैल, घोडे तथा सिंह चित्रित हैं। प्रत्यक पशु के आस पास चौबीस आरियो का बना 'धम चक्र' है। ये चार पशु बुद्ध के जीवन की चार मुख्य घटनाओ के प्रतीक हैं। अशोक स्तम्भ की परिचायक नगरी सारनाथ के लिये ही एक बार भगवान बुद्ध ने अपने महा परिनिर्वाण से पूर्व कहा था कि श्रद्धावान आय श्रावण को विराग की वृद्धि हेतु इन चार स्थानो के दशन करने चाहिए। वे चार स्थान हैं—(1) लुम्बिनी वन, जहाँ तथागत का जन्म हुआ, (2) बोध गया, जहाँ उन्होने ज्ञान प्राप्त किया, (3) ऋषिपत्तन मृगदाव अर्थात् सारनाथ, जहाँ उन्होंने प्रथम धर्मोपदेश दिया, और (4) कुशीनगर, जहाँ उन्होंने अनुपाधिशेष निर्वाण मे प्रवेश किया। इनके अतिरिक्त श्रावस्ती, साकाश्य, मगध और वैशाली को मिलाकर आठ स्थान ऐसे हैं जो बौद्ध साहित्य मे अट्ठ महाठानानि या आठ महास्थान कहलाते हैं।

सारनाथ, ज्ञान-नगरी वाराणसी के उत्तर पूरब सडक पर 8 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यही भगवान बुद्ध ने बौद्ध धम की नवज्योति

प्रज्वलित की। 'सारनाथ' नाम अधिक प्राचीन नहीं है। जनरल कनिंघम के अनुसार इस नाम की उत्पत्ति 'सारङ्गनाथ' यानि मृगा के नाथ गौतम बुद्ध से हुई, जहाँ बौद्ध ग्रंथों में इस स्थान का उल्लेख ऋषिपत्तन या मृग दाव के रूप में मिलता है। एक जातक कथा के अनुसार—एक बार बुद्ध तथा उनके अनुयायियों ने मृग योनि में यहाँ जन्म लिया था। बनारस के राजा को अबाध रूप से शिकार खेलने से रोकने के लिए, मृगों को वध के लिये एक एक कर भेजने का प्रबंध मृगराज यानि बोधिसत्व ने किया था। एक बार मृगराज एक गर्भिणी के बदले स्वयं वध हेतु राजा के पास चले गए, कहते हैं—इस त्याग से राजा बहुत प्रसन्न हुआ, और उसने सभी पशु पक्षियों को अभयदान दे दिया, और उस अरण्य में मृगों को निडर घूमने के लिए छोड़ दिया। तभी से ये स्थान मृगदाव कहलाने लगा।

सारनाथ के भग्नावशेषों को देखकर आज भी ये लगता है कि ये स्थान कभी कला और संस्कृति का प्रमुखतम केन्द्र रहा होगा। वाराणसी से सारनाथ की ओर आने पर एक ऊँचा भग्न स्तूप दिखाई पड़ता है, जिसे आजकल चौखण्डी कहते हैं। यही वह स्थान है, जहाँ बुद्ध 528 ई० पूर्व अपने पाँच बिछुड़े शिष्य अलार और कौदिन्य आदि से मिले थे। ये अठकोणी स्तूप, अब तो 84 फीट ऊँचा है, जो ईंटों का बना हुआ है। ह्वेनसांग के अनुसार इसकी ऊँचाई 300 फीट थी। आगे चलकर मुख्य स्थान के पास पहुँचते ही एक आठवीं शती का बना संघाराम है, जहाँ पहले भिक्षु रहा करते थे। इससे आगे बढ़ने पर हमें धर्मराजिक स्तूप के खण्डहर मिलते हैं, जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था। यहाँ से कोई बीस गज दूर स्व० अनागरिक धर्मपाल तथा भारत की महाबोधि सभा के प्रयत्न से 1931 ईसवी में बना नवीन मूलगंध कुटी विहार है, जो एक भव्य इमारत है। इसकी दीवारें बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं से चित्रित हैं। यहीं है धर्मचक्र जिनविहार जिसे कन्नौज पति गोविन्दचन्द्र गाहड़वाल की बौद्ध रानी कुमार देवी ने बनवाया था। पास ही में है प्रसिद्ध धमेक स्तूप, जिसकी चर्चा आपने अवश्य सुनी होगी। 143 फीट ऊँचा और 93 फीट घेरे वाला यह विशालकाय ठोस स्तूप कुशाण काल में बना था कहते हैं यहीं पर बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को दीक्षित किया था। इसके शिलापट्ट लोहे की कड़ियों से जुड़े हैं, पत्थरों पर सुन्दर फूल और कलापूर्ण सजावट का काम किया हुआ है। धमेक स्तूप के पास ही एक जैन मन्दिर है, जो जैन धर्म के संस्थापक महावीर के तेरहवें पूर्वज श्रेयांस नाथ द्वारा यहाँ पर संन्यास लेने तथा यहीं पर स्वर्ग यात्रा प्राप्त करने की याद में बना है। इस मन्दिर के पास ही, घेरे में गंगा, यमुना, शिव पार्वती, गणेश, ब्रह्मा, नवग्रहों आदि की मूर्तियाँ और महावीर, आदिनाथ, शान्तिनाथ,

अजितनाथ आदि की दर्शनीय जैन मूर्तियाँ बनी हैं।

मृगदाव के पास ही प्राचीन बौद्ध संघाराम के ढंग पर संग्रहालय बना हुआ है, जिसमे यहाँ की खुदाई से प्राप्त सामग्री रखी गई है। संग्रहालय मे बुद्ध के जीवन की विभिन्न स्थितियो के चित्र तो है ही साथ ही रेतीले पत्थर की बनी बुद्ध की वह मूर्ति भी यहाँ है—जिसमे वे धर्म चक्र-प्रवर्तन की मुद्रा मे बैठे धर्मोपदेश देते दिखाई देते है। नीचे चौकी पर पाँच भिक्षु दिखाये गये हैं—बीच मे धर्मचक्र तथा मृगदाव को जतलाने के लिये एक चक्र तथा दो मृग दिखाये गये है। इसके अतिरिक्त तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर, बारहवी शताब्दी ईसवी के मध्य बनी मौर्य, शुंग, कुशाण और गुप्तकाल की वे अनेक मूर्तियाँ यहाँ संग्रहीत हैं—जो सारनाथ के धार्मिक, सांस्कृतिक और कलात्मक स्वरूप का परिचय आज भी देती हैं। अलग अलग काल की भिन्न-भिन्न शैलियो मे चित्रित मूर्तियाँ—भगवान बुद्ध के उस आध्यात्मिक जीवन पर प्रकाश डालती है जिसका प्रभाव आज भी संसार के बहुत बडे जनमत पर है। जैनग्रथो में जिसे सिंहपुर कहा गया है ऐसा 'अतिशयक्षेत्र' सारनाथ आज बौद्ध धर्म का आधारभूत केन्द्र है, जिस पर भारत को सचमुच गर्व है।

साँची

भगवान बुद्ध की वाणी से सिक्त, धर्म एवं कला के विभिन्न स्वरूपो की कहानी आपने सुनी होगी। आप मे से बहुतो ने साधना के उन स्थानो को देखा भी होगा, जहाँ कभी—'बुद्धं शरणम् गच्छामि' का घोष-निरन्तर रहता था। अब मैं आपको मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के पास बसे गाँव भिलसा लिये चलता हूँ, जहाँ कि सात मील दूरी पर स्थित है—साँची, स्तूपो की धरती।

साँची का प्रारम्भिक इतिहास तीसरी शती ई० पू० से मिलता है, जब कि युवराज अशोक उज्जैन का शासक था। विदिशा की शाक्य कुमारी अर्थात् अपनी पत्नी के कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी होने पर उसने पूजा के लिये विदिशा-गिरी पर एक बड़ा स्तूप बनवाया। यही बाद मे विहार और स्मारक बने। अशोक के बाद शुंगो ने अशोक के स्तूप पर दोहरी शिलाएँ लगवाई तथा दो अन्य स्तूप यहाँ बनवाये। पश्चिमी भारत में मिले स्मारको मे सबसे प्रसिद्ध, बड़े स्तूप के चार तोरण हैं, जो आन्ध्रकाल के प्रतीत होते हैं।

सांची का बडा स्तूप कोई 120 फीट व्यास का है। स्तूप के चारो तरफ ऊँची मेधि है, जो प्रदक्षिणा पथ का काम देती है। इस मेधि पर पहुचने के लिये दोहरी सीढियाँ हैं। तले पर दूसरा परिक्रमा पथ है—जिन्हे वेदिकाओ ने घेर रखा है। वेदिकाओ पर इनके दान देने वालो के नाम अंकित हैं। स्तूप अर्ध गोलाकार है, जो ऊपर जाकर मिल जाता है शिखर पर छत्र है जिसको चौकोर वेदिका ने घेर रखा है। छत्र के दण्ड को सम्भालने हेतु चौकोर हर्मिका है, जो स दूकनुमा और 18 फीट ऊँचा है। कहते हैं कभी इसमे भगवान बुद्ध के अवशेष रखे थे।

स्तूप के चार दिशाओ मे चार बडे तोरण अनेक दृश्यो से अंकित हैं। प्रत्येक तोरण दो चौकोर स्तम्भो से बने हैं जो 14 14 फीट ऊँचे हैं। तोरण के शिखर पर बौद्ध चिन्ह, धर्मचक्र, त्रिरत्न, सिंह, हाथी आदि बने हैं। तोरण के दोना स्तम्भो और वडरियो आदि पर जातक कथाएँ और बुद्ध के जीवन की मुख्य घटनाएँ अंकित हैं। ये सारे उभरे चित्र सजीव तथा बारीकी से चित्रित है। तोरणो पर भी दान देने वालो के नाम अंकित हैं, लेकिन इन पर भरहुत की तरह मूर्तियो के विषय निर्देशक लेख नही हैं।

साची के तोरण यद्यपि पत्थर की रचनाएँ है, लेकिन इनकी बनावट पूरी तरह काठ के नमूनो की नक्ल पर है। इस काल मे बुद्ध की मूर्ति पूजा नही होती थी अत चित्रण मे प्रतिमा के स्थान पर साकेतिक चिन्हो का प्रयोग किया गया है। बुद्ध के जीवन की मुख्य पांच घटनाएँ—जन्म, महल से अभि यान, निवाण, प्रथम उपदेश और परिनिर्वाण को चारो तोरणो पर व्यापकता से दिखाया गया है। इन क्रमिक चित्रो को देखकर सहसा बुद्ध की जीवन यात्रा का वृतचित्र साकार होने लगता है।

धमचक्र एव मृगदाव के अतिरिक्त सहायक दश्यो मे यहाँ बल, घोडा सिंह, हाथी, बकरी, ऊँट, मोर, हस और कमल, आदि चित्रित हैं। सम्राट अशोक की सपरिवार बौद्ध भक्ति एव राजा शुद्धोधन से सम्बधित अनेक चित्रावलियाँ—साची स्तूप के कलात्मक गौरव की अभिवृद्धि करती हैं। इन तोरण आकृतियो मे वे सभी समसामयिक गतिविधियाँ लक्षित हैं, जिन्हें देखते देखते आँखें नही थक्ती।

साची पहाडी पर इस बडे स्तूप के चारो तरफ कई प्राचीन स्तूप बने हैं, जिनमे कुछ गुप्तकाल के भी हैं। स्तूपो के अतिरिक्त स्तम्भ और मन्दिर भी है जिनमे अशोक की लाट जो कभी सिंह प्रतिमा युक्त थी, ऐतिहासिक सदभ की दष्टि से सूत्र रूपा है।

बौद्ध धम के प्रचार की प्रमुखता से प्रेरित इन कला खण्डो मे धमनिर पेक्षता एव सामाजिक व्यापकता को कलाकारो ने अपनाया है, इसी कारण

सांची के स्तूप, भरहुत मे स्तूपो की तरह ही महत्वपूण माने जाते है ।

युद्ध, शोभापात्राओ, राजप्रासादो, झोपडियो, गजलक्ष्मी, इन्द्र, यक्ष, यक्षणियाँ, नाग और मोटे पेटवाले बौनो के चित्रो से अकित स्तूपपुरी सांची मे 1950 मे एक विहार आधुनिक कलाढग पर बनवाया गया है।

सांची को देखकर हम अनजाने ही ये स्वीकार करने लगते है कि स्तूप की ये ईंटें और तोरण के ये चित्र गत समय के जीवित अवशेष हैं।

साबरमती

भारत के गुजरात राज्य मे साबरमती नदी के किनारे स्थित साबरमती आश्रम गाँधी जी द्वारा देश को स्वतन्त्र कराने के लिये यहाँ शुरू किय गय अहिंसा तथा सत्य के अनूठे प्रयोगो की गाथा का एक मात्र साक्षी है।

आरम्भ मे कोचरात्र (अहमदाबाद) मे 1915 मे सत्याग्रह आश्रम के नाम से यह स्थापित किया गया था। परन्तु 1917 मे यह वर्तमान स्थान पर स्थापित किया गया और कई वर्षों तक राष्ट्रीय गतिविधियो का केन्द्र बिन्दु रहा।

यह ही वह स्थान है, जहाँ से माच 1930 मे गाँधी जी ने नमक पर शुल्क लगाने के विरोध मे ऐतिहासिक डाँडी यात्रा आरम्भ की थी। जन चेतना की प्रतीक इस डाँडी यात्रा ने साम्राज्यवाद की शक्ति से भिडने के लिये लोगो म साहस पैदा किया। सरकार ने इस लोकप्रिय आन्दोलन को दबाने की चेष्टा की तथा इनमे भाग लेने वालो की सम्पति जब्त कर ली। इस सम्बन्ध मे गाधी जी ने निराले ढग से प्रतिक्रिया व्यक्त की। जिन लोगो की सम्पत्ति जब्त की गई उनके प्रति सवेदना व्यक्त करने के लिये उन्होने सरकार के सामने अपना आश्रम भी जब्त कर लेने का प्रस्ताव रखा, परन्तु सरकार ने आश्रम पर अधिकार नही किया। इस पर गाधी जी ने आश्रमवासियो को आश्रम छोड कर कैरा जिले (गुजरात) मे बोरखाद के समीप रस गाँव चलने को कहा। परन्तु इससे पहले कि यात्रा आरम्भ होती उन सब को पहली अगस्त 1933 को गिरफ्तार कर लिया गया।

इस प्रकार गाँधी जी ने 18 वर्ष पूव त्याग की भावना से स्थापित किये गये अपने प्रिय आश्रम को उसी भावना से भग कर दिया।

आश्रम कुछ समय तक निजन पडा रहा। बाद मे यह निणय किया गया

कि आश्रम को हरिजन तथा पिछड़े वर्ग के लोगो के कल्याण के लिये शक्षिक तथा सबधित सस्थान खोलने के लिए किसी सस्था को सौंप दिया जाये।

गाँधी जी की मृत्यु के तुरन्त बाद ही उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिये एक राष्ट्रीय स्मारक निधि प्रारम्भ की गई। गाँधी जी से सबधित सबसे अधिक महत्वपूण 'ऐतिहासिक' स्थान होने के नाते गाधी स्मारक निधि ने साबरमती आश्रम को, जहा से उन्होने भारतीय जनता का माग दशन किया, स्मारक के रूप मे सरक्षित करने का निणय किया।

इस प्रकार 1951 मे साबरमती आश्रम सरक्षण तथा स्मारक न्यास के रूप मे अस्तित्व मे आया। उस समय से यह सस्था गाँधी जी के निवासस्थान 'हृदय कुज', 'प्राथना मैदान', 'उपासना भूमि' और 'मगन निवास' के सरक्षण की दिशा मे काय कर रही है।

12 वष तक कस्तूरबा और बापू का निवासस्थान 'हृदय कुज' आज भी गाधी जी के सादे किन्तु आदर्श जीवन की जीती जागती यादगार है।

'हृदय कुज' के समीप ही गाँधी स्मारक सग्रहालय है। स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने 10 मई 1963 को इसका उद्घाटन किया था।

सग्रहालय मे गाँधी जी से सबधित पत्र, तस्वीरें तथा अन्य लेख व पत्र रखे है। इसके अलावा 'यग इडिया' 'नव जीवन' तथा 'हरिजन' पत्र पत्रिकाओं मे प्रकाशित उनके लेखो की 400 से अधिक पाडुलिपियाँ, देश तथा विदेश मे प्राप्त लगभग 100 अभिनन्दन पत्र तथा उनके जीवन बचपन से लेकर मृत्यु तक के अनेक चित्र रखे हुये हैं। सग्रहालय में एक पुस्तकालय शाखा है। इस शाखा मे सहयोगी स्वर्गीय महादेव देसाई द्वारा सकलित 3000 पुस्तकें हैं। सग्रहालय की मुख्य विशेषता गाँधी जी द्वारा तथा गाँधी जी को लिखे गए 30,000 पत्रों की सूची है। इन पत्रो में से कुछ छोटी छोटी फिल्मो के रूप मे तथा कुछ मूल रूप मे रखे गये हैं।

सग्रह के लिये वस्तुएँ आती ही रहती हैं अत आयोजको को इस बात का ध्यान है कि आवश्यकता पडने पर उसका विस्तार किया जा सके। जसे-जसे सग्रह मे वृद्धि होती जायेगी सग्रहालय का विस्तार भी होता जायेगा। आशा है प्रत्येक पीढी आश्रम तथा उससे सबधित सस्थाओ मे अपना योगदान कर उसे और अधिक समृद्ध बनायेगी।

सोमनाथ

पौराणिक आख्यान के अनुसार इस भूमि पर 108 शिव क्षेत्र हैं, द्वादश ज्योतिलिङ्ग हैं और अष्ट शिव मूर्तियाँ हैं, लेकिन इन सब मे समान रूप से चर्चित है सोमनाथ मन्दिर। प्राचीन सौराष्ट्र प्रदेश, काठियावाड का यह शैव-तीर्थ आधुनिक गुजरात प्रदेश की ऐतिहासिक कथा वस्तु का सूत्र रूप है। सोमनाथ पाटन प्रभास क्षेत्र में विराजमान है, जहाँ लीलापुरुषोतम भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने यदुवश का सहार तथा जरा नामक व्याध के बाण से अपना पाद-पद्म वेधन कराकर अपनी नरलीला सवरण की थी। कहते है—दक्ष प्रजापति ने अपनी सत्ताइस कन्याओं का विवाह चन्द्र देव के साथ किया था, परतु चन्द्रमा का अनुराग उनमें से, एक मात्र रोहिणी से था, अत अन्य कन्याओ को बडा कष्ट रहता था। कन्याओ की शिकायत पर दक्ष ने चन्द्रमा को बहुत समझाया, पर वह नही माना, इस पर दक्ष ने शाप दिया कि जा तू क्षयी हो जा। फलत सुधाकर का सुधावर्षण का कार्य रुक गया। सारा चराचर त्राहि त्राहि कर उठा। अन्त मे देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर पितामह ब्रह्मा ने कहा कि वे प्रभास तीर्थ क्षेत्र में मृत्युजय भगवान की आराधना करें, तभी चन्द्रमा रोगमुक्त हो सकेगा। ऐसे सोम तीर्थ, सोमनाथ की ही यह कृपा है कि आज भी चन्द्रमा पूणमासी के दिन पूण कला युक्त होकर चमकता है। इसके सोमतीर्थ कहलाने का कारण मात्र यही है कि सबसे पहले चन्द्रमा ने भगवान शिव से वरदान पाकर शिवलिंग यहाँ स्थापित किया।

श्रीमद्भागवत, महाभारत, स्कन्द पुराण एव अन्य पुण्य ग्रथो में इस तीर्थ की बहुत महिमा गाई गई है। गुजरात के इतिहास की प्रतिपादक पुस्तक 'रासमाला' मे इतिहासज्ञ अलेक्जेंडर किनलाक फार्म्स लिखते हैं कि सौराष्ट्र के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर वेरावल का छोटा सा अखात है। इसी अखात की दक्षिणी सीमा बनाता हुआ—छोटा सा भू भाग है—देवपट्टण अथवा प्रभास नगरी। यही दो मील के घेरे म फैले किले म प्रसिद्ध महाकालेश्वर अर्थात् सोमनाथ मन्दिर है, जिसके खण्डित स्वरूप को देखकर इसकी अनुपमता का पता लगाया जा सकता है। जिस सोमनाथ मन्दिर के गगनचुम्बी शिखर पर फहराता भगवा ध्वज, द्वारमण्डप, रगमण्डप, शकु के आकार का गुम्बज और साथ के अनेक छोटे छोटे मन्दिर भगवान की शोभा बढा रहे थे, इस पर ईसवी

सन् 1024 के सितम्बर मास मे महमूद गजनवी ने आक्रमण किया था। क्योकि गजनवी की लडाई हिन्दुओ राजाओ से न होकर हिन्दू देवताओ से थी, गजनवी ने सोमनाथ मन्दिर की कुबेर राशि को लूटा। उसने पवित्र शिवलिंग को भी तोडना चाहा, लेकिन उसे इसमे सफलता नही मिली। महमूदगजनवी के विध्वस के बाद राजा भीमदेव ने पुन प्रतिष्ठा करा सोमनाथ मन्दिर का पवित्र कराया। ईसवी सन् 1168 मे विजयेश्वर कुमारपाल ने, जनाचार्य हेमचन्द्र सूरि के साथ सोमनाथ की यात्रा कर मन्दिर का सुधार किया। प्राचीन मन्दिर के ध्वसावशेष पर ही स्वाधीन भारत के सपूत सरदार वल्लभ भाई पटेल की प्रेरणा से सोमनाथ मन्दिर के निर्माण का पुनीत काय पुन शुरु हुआ, जो अब पूरा हो चुका है। उसमे नवीन लिंग विग्रह के साथ—भगवान सोमनाथ के मूल मन्दिर की रूप गाथा को शत प्रतिशत चित्रित करने का प्रयास हुआ है।

स्कन्द पुराण का सातवाँ खण्ड प्रभास खण्ड ही है, जिसम इस प्रभास तीर्थ गिरनार पर्वत, द्वारिकापुरी, और अर्बुद या आबू पवत की महिमा का वणन है। ऋग्वेद के अनुसार—प्राचीन सरस्वती, हिरण्या एव कपिला नदी के सगम पर मृत्यु की आकाक्षा, भगवान सोमनाथ के चरणो मे अपण की प्राथना ही है जिसे अनेक ऋषि, मुनियो एव सिद्ध लोगो ने पाया। कहते हैं, यहीं पर सिद्धो को पशुपति योग की प्राप्ति हुई थी। ऐसे पावन तीथ तक पहुँचने के आज तीनो माग सुलभ हैं। चाहे हम रेल द्वारा जूनागढ़ होकर जायें या हवाई तथा समुद्री माग स बम्बई होकर महा—सोमनाथ ताथ जायें, सभी म एक अनुपम सुख की प्राप्ति होगी। गुजरात की धम भावना का सबसे सशक्त स्वरूप है, जयसोमनाथ, जिसकी गौरव गाथा—देश विदेश एव सभी शिव भक्तो द्वारा भावोन्मादित होकर गाई जाती है। इन सबके अतिरिक्त सोमनाथ के दशनीय स्थल हैं—अग्निकुण्ड, अहल्या बाई का मन्दिर, बाणतीथ, यादवस्थली भालक तीथ, प्राची त्रिवेणी जहाँ कि हिरण्या, सरस्वती और कपिला नदिया समुद्र में मिलती हैं।

श्री शैलम्

भारतवर्ष अर्थात आर्यावर्त पवित्र मन्दिरो, पावन नदियो और पर्वतो की धरती है। यहाँ के निवासियो के हर कार्य मे धार्मिक भावना का समन्वय हो चुका है। यहाँ लोग केवल भावुकता मे ही आध्यात्म की चर्चा नही करते अपितु उसका एक लम्बा इतिहास है। भारत के कोने-कोने मे जो मन्दिर हैं इनमे केवल भक्ति धारा का ही प्राधान्य नही है वरन इनमे कला एव साहित्य की उल्लेखनीय भाव भूमिकाएँ अकित है। चाहे आसाम राज्य का कामाख्या देवी मन्दिर हो या गुजरात राज्य का सोमनाथ मन्दिर, मद्रास राज्य का मीनाक्षी मन्दिर हो या कश्मीर राज्य का मार्तण्ड मन्दिर, सब मे एक सूत्र बद्धता है, प्रेरक पावनता है। इन मन्दिरो के भीतर प्रवेश करते ही, जिस अनुपम शाति एव ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, वह भारतीय मन्दिरो की विशेषता है, देन है। दक्षिण भारत का ऐसा ही गौरवमन्दिर है—श्री शैलम, आन्ध्रप्रदेश का उल्लेखनीय धर्म रूप है। आंध्रप्रदेश के घने जगलो मे नल्ला मलाई पहाडियो के मध्य, कुरनूल जिले के नदी कोटकुर तालुके मे स्थित श्री शैलम् मन्दिर विजयवाडा के निकट है। श्री शैलम पहुँचने के लिए दो रास्ते हैं—एक तो नन्दयाल रेल स्टेशन से पैदल चलकर या फिर आन्ध्रप्रदेश की प्राकृतिक सम्पदा के बीच से पेंड्डा चेरूवू से दोरनाल होते हुए।

श्री शैलम का महत्त्वपूर्ण मन्दिर, 'रिषमेगिरी' ,नामक पर्वत पर है, जो दक्षिण भारत की गगा, कृष्णा नदी के दक्षिणी किनारे पर है। यह श्री शैला या श्री पर्वत के नाम से भी जाना जाता है, जो भगवान शिव के नाना रूपो मे से एक है। यह मन्दिर हिन्दू तथा बौद्ध लोगो द्वारा मान्य है। महाभारत के वन पर्व मे श्री शैलम का उल्लेख भगवान शिव द्वारा पार्वतीजी के सग श्री पर्वत पर निवास के रूप में आता है। श्री आदि शकर की धर्म यात्रा मे भी श्री शैलम का नाम सम्मिलित है। यह शैल शिखर भारत के द्वादश ज्योतिर्लिगो मे से एक मल्लिकार्जुनलिंग को धारण किये है।

भगवान आदिशकर के शब्दो मे—

गायत्री गरूड्ध्वजा गगनगां गान्धर्व गानप्रिया।
गम्भीरा गजगामिनी गिरिसुतां गन्धाक्षनालड्क्नाम ॥

गगा गौतमगर्गं सनतपदा गा गोमती गोमती।
श्री शैलस्यलवासिनी भगवती श्री मातर भावये॥

श्री शैलम का स्थल महात्म्य बहुत रोचक है। कहते हैं राजा चन्द्रगुप्त की कन्या चन्द्रावती, प्रतिदिन जस्मीन के फूलो की माला यहाँ भगवान को अर्पित किया करती थी तथा अपने को भगवान शिव से विवाही समझती थी। यह उल्लेख 16 वी शताब्दी के एक शिलालेख में विस्तार से वर्णित है।

शिलालेखानुसार—वर्षों पहले वीर राजा चन्द्रगुप्त को चन्द्रावती नामक एक कन्या थी। जो सदैव भगवान शिव की आराधना किया करती थी। यह अधिकतर जगलो म मवशियो क साथ रहती थी। एक बार राजकुमारी ने देखा कि सभी गाय तो दूध देती हैं, पर एक काली गाय दूध नही देती। पूछताछ पर पता चला कि यह काली गाय अपने भ्रमण काल म ही दूध देती है। एक बार इस काली गाय ने, काले पत्थर पर दूध की कुछ बूँदें गिराई। इन्ही बूदो से एक लिंग का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ दिनो बाद यह सारी बात भगवान शिव ने राजकुमारी चन्द्रावती को सपनो मे अवतरित होकर बत लाई। यही पर फिर आगे चलकर श्री शैलम के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण हुआ। शिव भक्ति का यह केन्द्र यहाँ की छेछू जाति मे बहुत विख्यात है। कहते हैं भगवान शिव, शिकार करने यहाँ आते थे। शिकार यात्रा क दौरान भगवान शिव छेछ जाति की एक महिला से प्रेम करने लगे तथा उससे शादी कर ली। तब से यह स्थान छेंछू मल्लिह के नाम से भी जाना जाता है।

बौद्ध यात्री फाहियान और ह्वेनसाग के कथालेखो में श्री शैलम का वर्णन, बौद्ध धम की महायान शाखा क पुत्र की बात है, जो श्री शैलम की प्राचीनता का प्रतिपादन करती है। चौदहवी शताब्दी मे वारगल के काकतीय राजा प्रतापचन्द्र मे लेकर विजयनगर के महाराजा द्वारा मन्दिर की साज सज्जा हेतु किये प्रयत्न इस बात के प्रमाण हैं कि श्री शैलम मन्दिर दक्षिण भारत म शिव भक्ति का प्रमुख स्रोत रूप रहा है।

दक्षिण भारत की मन्दिर कला की भाँति श्री शैलम मन्दिर भी 500 फीट चौडे और 600 फीट लम्बे क्षेत्र मे कई मन्दिरो का सुन्दर समूह है। यहाँ मन्दिर मे प्रसिद्ध भगवान नटराज' शिव की मूर्ति है तथा दीवारो पर पौराणिक आख्यानो का सूक्ष्मतम अकन हैं।

श्री शैलम नाना रूपो, के नायक भगवान शिव का मन्दिर आध्र प्रदेश का अमुखतम मन्दिर है जो सभी धर्मानुरागियों के लिए मुक्ति का आमन्त्रण है।

हरिद्वार

भारतीय धम जगत मे हरिद्वार को गगाद्वार, कुशावर्त और मायापुरी आदि कई नामो से जाना जाता है। पद्मपुराण मे हरिद्वार के लिये कहा गया है—

स्वर्गद्वारेण तत तुल्य गगाद्वार न सशय ।
तत्राभिषेक कुर्वीत कोटितीथ समाहित ॥

लभते पुण्डरीक च कुल चैव समुद्धरेत् ।
तत्रैकरात्रिवासेन गोस हस्रफल लभेत ॥

सप्तगगे त्रिगगे च शक्रावर्ते च तपयन् ।
देवान् पितृश्च विधिवत् पुण्येलोके महीयते ॥

तत कनखले स्नात्वा त्रिरात्रो पोषितो नर ।
अश्वमेघमवाप्नोति स्वर्गलोक च गच्छति ॥

अर्थात्—हरिद्वार स्वग द्वार के समान है, इसमे सशय नही। वहाँ जो एकाग्र होकर कोटितीर्थ मे स्नान करता है, उसे पुण्डरीक यज्ञ का फल मिलता है। वह अपने कुल का उद्धार कर लेता है। वहाँ एक रात निवास करने से सहस्त्र गोदान का फल मिलता है। सप्तगगा, त्रिगगा और शक्रावर्त मे विधि-पूवक देवर्षि पितृ तपण करने वाला पुण्य लोक मे प्रतिष्ठित होता है। तदन तर कनखल में स्नान करके तीन उपवास करें। यो करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है और स्वगगामी होता है। शिवालिका की तलहटी मे गगानदी के किनारे बसी यह नगरी सप्तपुरियो मे से एक है। जहाँ प्रति बारहवें वर्ष जब सूय और च द्र मेप मे और वृहस्पति कुम्भ राशि मे स्थित होते है तब कुम्भ का मेला लगता है। उसके छठे वर्ष अधकुम्भी होती है। हिमालय से लगभग 320 किलोमीटर वह कर आने के बाद गगा नदी यहाँ खुले मैदान मे बहती है। कहते हैं यही पर भगवान शिव ने अपनी जटा मे गगा को स्वर्ग से धरती पर भागीरथ द्वारा लाने पर रोका था। यह भी कहते हैं कि भागीरथ के पूवज सागर पुत्र यही पर कपिल ऋषि के श्राप से मारे गये थे, जि हे पाथे दिलवाने हेतु भागीरथ ने तपस्या की। इसी कारण गगा नदी भागीरथी भी कहलाई। भीष्म पितामह के दादा प्रतिपा ने यही गगा के लिये आशीर्वाद वचन मे कहा था कि मैं इसे अपनी बेटी की तरह समझता हूँ।

एक बार अजुन भी इस गगाद्वार हरिद्वार पर कुछ दिनो के लिये ठहरे थे । यही पर गगा मे नहाते समय एक दिन अजुन को नागराज कौरव्या की कन्या उल्लूपी जबरन घमीट कर ले गई और अपने से विवाह का आग्रह किया था । शैव भक्त इस स्थान को हरद्वार कहते है और वैष्णव भक्त हरिद्वार । मुगल बादशाह जहाँगीर ने हरिद्वार को भगवान शिव की राजधानी कहा था तो चीनी यात्री ह्वेनसाग ने इसे गगा के पूर्वी किनारे बसी मयूर पखी नगरी कहा था । यही पर गगा कई धाराओ मे बँट कर बहती है ।

हरिद्वार मे गगानदी की चौडाई लगभग डेढ क्लिोमीटर है जो अब कई पुलो से सुविधापूर्वक पार की जाती है । हरिद्वार मे गगानदी के किनारे अनेक मन्दिर और महात्म्य है । गगाद्वार अर्थात हर की पैडी, कुशावर्त, बिल्वकेश्वर, नीलपवत तथा कनखल यहाँ के पाच प्रमुख तीथ हैं जिनके स्नान तथा दशन से सुनते है पुनजन्म नही होता । हर की पैडी पर ही भगवान शिव, ब्रह्मा और विष्णु निवास करते हैं तथा यही राजा विक्रमादित्य के भाई भतृ हरि ने तपस्या की थी । हर की पैडी, हरिद्वार का सबसे महत्वपूण तीथ केन्द्र है । जहाँ धर्म की अनेक लीला देखते ही बनती है । दूसरे प्रमुख तीथ कुशावर्त घाट पर दत्तात्रय ऋषि ने तपस्या की थी और यही पर पडो की भीड, देश के अनक भागो से आये शोकाकुल पिण्डदानी यजमान भक्तो द्वारा अस्थि विसर्जन एव पितृ तर्पण सपन्न कराती है । कथाओ मे उल्लेख मिलता है कि यहाँ पिण्डदान देने से पुनजन्म नही होता ।

इसके अतिरिक्त रामघाट, विष्णु घाट, श्रवणनाथ, गणेश घाट, नारायणी शिला, काली मन्दिर, चण्डी देवी, अज्जनी, दक्षेश्वर महादेव, सती कुण्ड, कपिल स्थान, भीमगोडा, सन्तधारा, चौबीस अवतार आदि आसपास के अनेक नामधारी दशन धाम हैं जिनके साथ भारतीय धर्म सस्कृति का उज्जवल इतिहास किसी न किसी रूप मे जुडा हुआ है । हरिद्वार के पास मायापुर गाँव है जहाँ मायादेवी, भैरव और नारायण के तीन मन्दिर हैं । राजा दक्ष ने जहाँ तपस्या की थी और सती पावती ने दाह किया था ।

हरिद्वार का चप्पा चप्पा पौराणिक कथा गीतो से भरा हुआ है । धर्म की सभी सम्भावनाएँ यहाँ पर फली फूली और देश के कोने-कोने तक परिचित हुई । हिमालय के सभी तीर्थों का आदश प्रवेश द्वार हरिद्वार ही बतलाया जाता है । ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, देव प्रयाग, रुद्रप्रयाग, उत्तर काशी, यमुनोत्तरी, गगोत्तरी, त्रियुगीनारायण, धल्लेश्वर, जोशीमठ, केदारनाथ और बद्रीनाथ आदि अनेक रमणीक भक्ति धामो की यात्रा आप हरिद्वार से प्रारम्भ कर सकते हैं । हिमालय की ढलान पर मुस्कराते यह तीथ भारतीय लोक

जीवन के गौरवशाली अग हैं जिन्हे हम किसी भी प्रकार अपने से अलग कर नहीं देख सकते।

अधिकतर लोग हरिद्वार का नाम इसीलिये जानते हैं कि वहाँ उनके पूवजो का अस्थि विसर्जन होता आया है, लेकिन इसके विपरीत हरिद्वार आधुनिक प्राकृतिक सम्पदा का भण्डार भी है। आज हरिद्वार उत्तर प्रदेश का ही परिचित स्थान नहीं है अपितु देश के बाहर विदेशो मे भी 'गेट वे आफ हिमालया' के रूप मे जाना जाता है।

पाटलिपुत्र

पूर्वी भारत के औद्योगिक महानगर कलकत्ता से लगभग 500 किलोमीटर की दूरी पर बिहार की राजधानी पटना है। यही पटना भारतीय सस्कृति जगत मे पाटलिपुत्र के नाम से विख्यात है। एक समय यह प्रसिद्ध मगध शासको का बहुरूपी नगर था। इसके अतिरिक्त पाटलिपुत्र अथवा पटना को कुशमपुर और पुष्पपुर भी कहा जाता है। एक कथा के अनुसार—पाटलि, विश्वामित्र मुनि की बहिन थी तथा उसकी इच्छा पर महाज्ञानी कौदिन्य ने पाटलि शहर का जादू से निर्माण किया था। फिर आगे चलकर 480 ईसा पूव इतिहास प्रसिद्ध अजातशत्रु ने इस शहर का पुनर्निर्माण किया। इतिहास के अनुसार सम्राट अजातशत्रु को लिच्छवी शासको से सदैव सघपरत रहना पडा था।

सम्राट अजातशत्रु की पुरानी राजधानी राजगृह प्रतिरक्षा की दष्टि से इतनी महत्वपूण न थी, अत अजातशत्रु नदी के किनारे अपनी नई राजधानी बनाना चाहता था। इसीलिये अजातशत्रु ने गगा नदी के किनारे पाटलिपुत्र की आधारशिला रखी। जब भगवान बुद्ध अपने परिनिर्वाण से कुछ समय पूव नालन्दा से वैशाली जा रहे थे तो माग मे अजातशत्रु के आमत्रण पर भोजन के लिये रुके थे। यही उन्होने कहा था यह पाटलिपुत्र नगर आगे चलकर आय सस्कृति का मुख्य नगर बनेगा।

पाटलिपुत्र अथवा पटना बिहार का कथा नगर है। भगवान बुद्ध की उपदेश भूमि होने के कारण इसका अपना अतिरिक्त महत्व भी है। राजगृह, नालन्दा, वैशाली, बोधगया आदि सभी प्रमुख तीथ इसके आस पास ही हैं।

सम्राट चन्द्रगुप्त के समय मे मैगस्थनीज ने अपने वणन मे गगा के किनारे बसी इस नगरी का उल्लेख जहाँ पालिबोथ्र (Palibothra) के नाम से किया है वही चीनी लोगो ने इसे कुसुमोपोलो के नाम से पुकारा है।

महाकवि कालिदास ने भी अपनी कृति रघुवश मे मगध सम्राटो की राजधानी का यशोगान किया है। सम्राट अशोक का कार्यक्षेत्र भी पाटलिपुत्र रहा है। यही अशोक महान ने पचपहाडी पर पवित्र स्तूपो का निर्माण कराया था फिर समुद्रगुप्त के समय मे पाटलिपुत्र का वैभव और बढा। बाद म जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाग ने नेपाल स लौटते हुए यहाँ की यात्रा की थी तब यह नगर कन्नोज के शासक हप के अधीन था।

कहते हैं भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद पालि परम्परा के अनुसार तीन सगीति अर्थात परिषदो का आयोजन हुआ था। राजगृह और वशाली के बाद पाटलिपुत्र मे आयोजित तीसरी परिषद मे धार्मिक एकता की लोक व्याख्या निर्धारित की गई तथा प्रसिद्ध पालि ग्रथ त्रिपिटक' का सयोजन किया गया था। जैन धम के प्रवतक भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी भी यहाँ से बहुत निकट है। अपने जीवन म अनगिन बहुचर्चित शासको की गौरवमयी गतिविधियो को सजोये हुए पाटलिपुत्र नगरी सिक्खो के दसवें धम गुरू की जन्मस्थली भी है। यही महाराज रणजीतसिंह ने गुरु कृपा से हरमिन्दर का निर्माण करवाया जो सिक्खो का पवित्र दर्शन धाम है। इसके अतिरिक्त पाटलिपुत्र अथवा पटना प्रसिद्ध खगोल शास्त्री आर्य भट्ट की जन्म भूमि भी है। सम्राट चन्द्रगुप्त के गुरू चाणक्य और पाणिनि सूत्र के रचनाकार कात्यायन भी पाटलिपुत्र मे ही अपनी विख्यातता को प्राप्त हुए थे।

आधुनिक बिहार की राजधानी पटना अथवा प्राचीन पाटलिपुत्र धर्म पयटन एव व्यापार-पर्यटन का ऐसा नगर है जहाँ जाकर मन को असीम आनन्द और गौरव का अनुभव होता है। दिल्ली हावडा रेल लाइन पर स्थित आधुनिक पटना के लिये ही दशकुमारचरितम् के रचियता दडिनी ने लिखा था—

> अस्ति समस्त नगरी निकपायमाणा। शश्वदगण्यपण्य-
> विस्तारित मणिगणादि वस्तु जात व्याख्यात रत्नाकर
> महात्म्या। मगध देश शेखरी भूता पुष्पपुरी नाम नगरी।

रणकपुर के जैन मन्दिर

भारतीय सस्कृति के कलात्मक धर्मोत्थान मे जैन आचार्यों की प्रेरणा उल्लेखनीय विषयवस्तु रही है। रणकपुर के जैनमन्दिर इस सदर्भ मे युग विशेष की परिचयधारा के मूल हैं। राजस्थान की बहुरूपी झाकियो के इस प्रसग से शासक और शासित एक सूत्र मे बँधे लगते हैं। रणकपुर गाँव, राजस्थान के पाली जिले मे अरावली पर्वत शृखलाओ के मध्य दिल्ली अहमदाबाद रेल लाइन पर फालना स्टेशन से लगभग 22 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। 'वीरविनोद' के अनुसार विक्रम सवत 1490 मे मेवाड के महाराणा कुभकुण अर्थात कुभा का इस क्षेत्र पर अधिकार था, लेकिन आग चल कर रणकपुर गाँव मारवाड राज्य के अधीन रहा। राणकपुर राणपुर और रणकपुर के नाम से परिचित यह मन्दिरमय गाँव महाराणा कुम्भा की कलारुचि का श्रेष्ठतम उदाहरण है। चित्तौड का कीर्ति स्तभ, कुम्भलमेर का किला, कुभश्यामजी का मन्दिर, अचलगढ, बसतगढ़ का किला तथा एकलिगजी का जीर्णोद्धार कुम्भा की जीवन यात्रा क ऐसे बोलते पडाव है, जहाँ मूर्तियों के माध्यम से सस्कृति को जीवित रखा गया। सगीत, कला और साहित्य के पारखी महाराणा कुम्भा द्वारा प्रेरित एव निर्मित सभी मन्दिर प्रस्तर के ह।

नागर शैली से अलकृत, ऊँची पीठ पर अवस्थित तथा सोनाणा और सेवाडी के पत्थर से निर्मित इन मन्दिरो म गर्भगृह, सभामडप, अधमडप, प्रदक्षिणा-पथ एव आमलक शिखर की प्रधानता है। जैन-मन्दिरो के निर्माण की दृष्टि से भी यह समय बहुत ही रोचक रहा। सवत 1496 की बात है। जब पोरवाल-जातीय सघपति धरणाशाह ने 99 लाख की लागत से एक तिमजले चतुमुख जिनप्रासाद का निर्माण करवाया था। धरणाशाह भूतपूव सिरोही राज्य मे नन्दीपुर गाव के थे। वे समसामयिक राजनीतिक परिस्थिति वश बाद मे 'मेदपाट प्रदेश' के अन्तगत मालगढ नामक गाँव मे रहन लगे थे। जब महाराणा कुम्भा ने यह सुना कि धरणाशाह सपरिवार मालगढ मे आ बसे तो उन्होंने विश्वासपात्र सामतो के माध्यम से धरणाशाह को सभा मे बुला कर अच्छा मान सम्मान दिया।

कहते हैं जिनेश्वर उपासक धरणाशाह ने एक रात स्वप्न मे 'नलिनीगुल्म' विमान देखा, तभी उसने इस आकृति का जिनप्रासाद बनवाने की प्रतिज्ञा की। दूर-दूर से चतुर शिल्पियो को बुलवाया गया और प्रारंभिक चित्र तयार किये गये। इनम से मुडारा गाँव के देपाक नामक शिल्पी ने 'त्रैलोक्यदीपक' नामी इस मन्दिर का सही स्वप्नचित्र तैयार किया, अत उसे ही धरणाशाह ने प्रमुख कारीगर बनाया। धरणाशाह ने धूमधाम से धरण विहार नामक चतुर्मुख आदि नाथ जिनालय की सवत 1495 मे नीव डाली। सवत 1498 म यह पूरा हुआ।

सेवाडी प्रस्तरो से बना इस मन्दिर का चतुष्क 48 हजार वर्गफुट का है जिस पर 24 रगमण्डप, 184 भूगृह, 85 शिखर और 1444 सुन्दर स्तभ हैं। चार दिशाओ मे प्रवेश के चार विशाल दरवाजे हैं, जिनसे करीब 25 सीढियाँ चढ कर मन्दिर की प्रथम भूमिका आती है। आदिनाथ त्रैलोक्यदीपक मन्दिर के चारो द्वारो के साथ एक बडा मन्दिर है। इस प्रकार यहाँ के मन्दिर समुदाय म 84 देवकुलिकाए (मठियाँ) हैं, जिनकी निर्माण कला देखने दूर-दूर से अनेक भक्त और पयटक आते है। सोमसौभाग्य काव्य' से पता चलता है कि रणकपुर के इस मन्दिर प्रतिष्ठान मे धरणाशाह की कुमकुम पत्रियाँ पाकर कोई 52 बड सघ और 500 साधु आय थे। मन्दिर के मध्य भाग मे चतुर्मुख देवकुलिका है, जिसकी जघा पर बनी मूर्तियाँ बडी मनोरम हैं। स्त्री मूर्तियाँ प्राय नृत्यमय है तथा कानो मे कुडल एव हाथो म कगन पहने हैं। छह हाथ वाली भैरव की मूर्ति के साथ साथ यहाँ नग्न देवी-प्रतिमाएँ और शृगाररत नर्तकियो के रूप भी देखे जा सकते ह। देवकुलिका के चारो तरफ रग मडपों मे बाँसुरी टेरती, घुघरू बजाती, नृत्य करती आठ पुतलियाँ और 16 नर्तकियाँ हैं। स्तम्भो पर हाथी, सिह, घोडे और फूलबेल अकित हैं तथा इस 'त्रलोक्य दीपक मन्दिर के पूर्वी कोण म धर्मानुरागी धरणाशाह की, हाथ मे माला, सिर पर पाग (पगडी) और गले मे उत्तरीय पहने मूर्ति है। रणक के इस विशाल मन्दिर-समूह म देव प्रतिमाओ के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण शिलालेख भी हैं जिनसे तत्कालीन इतिहास को जानने म मदद मिलती है। इतिहासज्ञ फग्युसन के अनुसार—'उत्तरी भारत म कोई अन्य मन्दिर ऐसा नही देखा गया है जो इतना सुन्दर और सज्जित हो। कर्नल जेम्स टाड ने अपने पश्चिमी भारत के यात्रावर्णन मे स्पष्ट रूप से रणकपुर के कला-वैभव को देखने की तीव्र लालसा व्यक्त की है। एसा सवमान्य रणकपुर तीथ राजस्थान मे गोडवाड क्षेत्र के पच तीर्थों (घाणेराव, नाडलाई, नाडोल, वरकाणा और रणकपुर) मे एक है। 17 वी शताब्दी की 'हीर विजयसूरि, नामक कृति म तो यहाँ तक कहा गया है—

गढ़ आबू नवि फरसियो, न सुणियो हीर नो रास।
रणकपुर नर नवि गयो, तिण्ये गर्भावास॥

अर्थात, जिसने रणकपुर की यात्रा नही की उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है। इसी तरह समयसुन्दरजी के 'यात्रा स्तवन' के अतर्गत वर्णन मिलता है कि रणकपुर आदिनाथ प्रभु का पावन धाम है—

राणपुरइ रलि आमणऊ रे लाल श्री आदीसर देव। मन मोहयऊ रे।
उत्तगतोरेण देहराउ रे लाल, निरखीजई नितमेव। मन मोहयऊ रे।
चन्द्र चौस मडप चहूँ दिसइ रे लाल, चहुमुख प्रतिमा चार। मन मोहयऊ रे।
त्रलोक्यदीपक देहराउ रे लाल, समवडि नहिं को ससार। मन मोहयऊ रे।

भगवान आदिनाथ का यह चौमुखा त्रैलोक्यदीपक मन्दिर पहले सात मन्जिल मे बनने वाला था, पर कारणवश न बन सका। यहा यह भी उल्लेखनीय होगा कि मन्दिर मे विभिन्न जनतीर्थ तीर्थकर और कला साहित्य सम्बन्धी चित्राकन के साथ साथ मिथुन युग्म मूर्तिया भी है।

इस भव्य मन्दिर के निर्माता धरणाशाह के सम्बन्ध मे एक रोचक कथा सुनने मे आती है। कहा जाता है कि एक दिन धरणाशाह ने घी मे पडी मक्खी निकाल कर जूतो पर रख ली। यह कृत्य किसी शिल्पी ने देख लिया। शिल्पियो को शका हुई कि ऐसा कजूस भला इतना बडा जिनालय कैसे बनवायेगा। परीक्षा के लिए शिल्पियो ने नीव खोदते समय धरणाशाह से कहा कि नीव पाटने मे सवधातुओ का प्रयोग होगा, नही तो इतना विशाल मन्दिर केवल प्रस्तर की दीवारो पर नही ठहर पायेगा। धरणाशाह ने देखते-देखते अतुल मात्रा मे 'सवधातु' एकत्रित करवा दी। इस पर शिल्पियो ने सोचा कि 'मक्खी' वाली घटना कृपणता की परिचायक नही अपितु बुद्धिमता की द्योतक थी।

रणकपुर का यह मन्दिर चतुमुख प्रासाद भी कहलाता है, क्योकि इसके चार कोणो मे चार शिखरबद्ध देवकुलिकाए है। चतुष्क ठीक बीचोबीच बना है, चार मेघमडप, चार रगमडप और प्रत्येक वेदिका पर चतुर्मुखी श्वेत प्रस्तर प्रतिमाएँ है या यो कहे कि इस मन्दिर की हर प्रतिमा और खड चतुर्मुखी है।

रणकपुर के इस मुख्य मन्दिर से कुछ दूरी पर प्रसिद्ध सूय मन्दिर है जिस मे सवत्त सूय सात घोडो पर सवार है। इसे महाराणा कुम्भा द्वारा निर्मित माना जाता है (पर इतिहास इस सम्बन्ध मे मौन है)। मन्दिर मे सूय के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश और गणेश की मूर्तियो के साथ-साथ युद्धरत हाथी भी दर्शाये गये है।

इस प्रकार रणकपुर का यह अलौकिक मन्दिर समूह महाराणा कुम्भा जैसे कलाप्रेमी और धरणाशाह-जैसे धर्मानुरागियो की यश गगा का पुण्यतीर्थ है जिस पर भारत के धमजगत को ही न ी कला, सगीत एव साहित्य के क्षेत्र को भी गव है।

धर्मगुरु

गौतम बुद्ध

भगवान बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व 623 मे हुआ था। इनके पिता शुद्धोधन शाक्य गणतन्त्र के प्रमुख शासक थे। माता महामाया कपिलवस्तु से अपने मायके देवदह जा रही थी, तब लुम्बिनी वन मे सुपुष्पित दो शाल वृक्षो के बीच मे बुद्ध का जन्म हुआ। ढाई सौ वर्ष बाद अशोक ने बुद्ध के जन्म स्थान पर एक स्मारक बनवाया जो इस घटना का साक्षी है।

बालक का नाम गौतम रखा गया, जबकि उन्हे सिद्धार्थ कह कर पुकारा जाता था। जन्म के सात दिन बाद ही माता का देहान्त हो गया। बचपन से ही गौतम एकात प्रिय, गम्भीर और मननशील थे। यह देख, इनके लिये तीन ऋतुओ के अलग अलग योग्य प्रासाद बनवाये गये। यशोधरा से इनका विवाह हुआ। गौतम को यशोधरा से एक पुत्र भी हुआ लेकिन इनका मन कभी पारिवारिक भूलभूलैया को नही जान पाया।

अत मे ये बोधगया के पास एक प्रदेश मे पहुँचे। 6 वर्ष पश्चात् इनके मन मे यह भाव जगा कि वे सबोधि प्राप्त करेंगे। सुजाता की खीर और घास काटने वाले की दी पूलियो को शुभ शकुन मानकर वे पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गये और यह सकल्प किया—

'चाहे मेरा धर्म मेरी नाडियाँ और मेरी हड्डियाँ गल जाय, मेरा रक्त सूख जाय, मैं इस मुद्रा से नही उठूगा, इसी आसन पर दृढ रहूगा, जब तक कि मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त न हो।'

परिनिर्वाण के बाद प्रथम एव द्वितीय शती मे बौद्ध धर्म, विस्तार की सम्भावनाओ के साथ साथ महत्वपूर्ण धर्म के रूप मे आगे आया। भारत ही नहीं, अपितु चीन, जापान, श्रीलका, बर्मा, इडोनेशिया आदि देशो मे भी इसका प्रचार प्रसार बढा। सघ एव सघयात्राओ के माध्यम से धीरे धीरे बुद्ध की वाणी धर्म सूत्र के रूप मे जन साधारण के जीवन का अग बन गई।

हद दानी भिक्खवे आमन्त याभिवो
वय धम्पा सखारा, अप्पमादेव सम्पादेयति ॥

अर्थात्—ओ भिक्खुओ ! सब वस्तुएँ नाशधर्मी है, इसलिये अप्रमादयुक्त होकर अपना प्रयाण स्वय प्राप्त करो।

भगवान बुद्ध के जीवन म दो पक्ष हैं—वैयक्तिक और सामाजिक। जो सुपरिचित बुद्ध प्रतिमा है वह एक तपस्यारत, एकाग्र और अन्तर्मुख साधु की योगी की प्रतिमा है जो कि आन्तरिक समाधि के आनन्द में लीन है। दूसरा पहलू वह है जहाँ वे मनुष्य मात्र के दुख से पीड़ित जीवन में प्रवेश कर उनके कष्टों का निदान कर 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' का सन्देश प्रस्तुत करना चाहते हैं।

सभी धर्मों का सार है मानव परिवर्तन। स्थूल ऐहिकता के बन्धना से आ मा की मुक्ति। बुद्ध, ज्ञान अथवा बोधि के परम प्रकाश द्वारा एक नव आध्यात्मिक अस्तित्व की प्राप्ति का आदेश चाहत थे। वे कहते—मैं मानता हूँ कि मनुष्य का सबसे ऊचा आदश वह स्थिति है, जिसमे न तो बुढ़ापा है न भय, न रोग न जन्म न मृत्यु न चिंताएँ हैं और जिसम कोई पुन पुन क्रिया न हो—

पदे तुम यस्मिन न जरा न भीनरुड न जन्म नवोपरमोन चाथय
तमेव मन्ये पुरुषार्थ मुत्तम न विद्यते यत्र पुन पुन क्रिया।

भगवान बुद्ध, एक ऐसा आध्यात्मिक अनुभव चाहते थे, जिससे सारी स्वार्थ भावना नष्ट हो जाए, उसके साथ ही साथ भय और वासना भी। वह परम आन्तरिक शान्ति की मनोदशा है जिसके साथ ही यह निष्ठा भी है कि आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पा ली गई है—यह एक ऐसी दशा है जिसे वर्णित नहीं किया जा सकता।

बौद्ध धर्म कोई नया या स्वतन्त्र धर्म बनकर शुरू नहीं हुआ। वह एक अधिक पुराने हिन्दू धर्म की ही शाखा था। इसे कदाचित हिन्दू धर्म से टूटी हुई या एक विद्रोही विचारधारा ही समझना चाहिए। जिस धर्म को बुद्ध ने धरोहर के रूप में पाया, उसके मौलिक पक्ष को मानते हुए इन्होंने उस समय में प्रचलित कई आचारों का विरोध किया। जैसे—वैदिक कर्मकाण्ड अर्थात् वे ऐसे सुख म आस्था नहीं रखते थे जो दूसरों को दुख पहुँचा कर प्राप्त किया गया हो।

यह अवतार सिद्धान्त हमारे धर्म का बार बार सुधार करके पूर्वजों के धर्म को कायम रखने में सहायक होता है। पुराणों में बुद्ध को विष्णु का नवम अवतार माना गया है। जयदेव की गीत गोविंद वाली अष्टपदी म विभिन्न अवतारों के उल्लेखों के अनुसार—

निंदसि यज्ञ विधेर, अहह श्रुति जातम्
सदय हृदय, दर्शित पशु घातम्
केशव धृत बुद्ध शरीर जय जगदीश हरे।

अर्थात्—श्रुतियो ने जिस यज्ञ विधि को बताया, जिसमे पशुघात होता था। ओ सहृदय ! तुमने उसकी निन्दा की। ओ केशव ! जो तुम अब बुद्ध के रूप मे अवतरित हुए, तुम्हारी जय हो। बुद्ध ने हिन्दुओ के सास्कृतिक दाय का उपयोग धम के कुछ आचारो को शुद्ध करने के लिये किया। बुद्ध अपूण को अब पूण करने धरती पर आय। साहित्य के माध्यम से सस्कृति को नया स्वर प्रदान किया गया। पालि भाषा मे लिखा त्रिपिटक ही पावन बौद्ध साहित्य का सबसे प्राचीन एव सम्पूर्ण उपलब्ध ग्रथ सग्रह है, जो तीन व्यवस्थित भागो मे विभाजित है। पहला—विनय पिटक, दूसरा सूत्र पिटक और तीसरा है–अभिधम्म पिटक। आगे चलकर हीनयान एव महायान पथ मे विभाजित बौद्ध धम एव साहित्य के अनुसार भगवान बुद्ध का जीवन सभी के लिये आकपण का केन्द्र रहा है—महासघिको की महावस्तु सर्वास्तिवादियो का ललित विस्तर, अश्वघोष का बुद्ध चरित, जातक भूमिका के रूप मे निदान-कथा तथा धर्म गुप्त का अभिनिष्क्रमण सूत्र।

इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूण बौद्ध ग्रथ 'धम्मपद' मे भगवान बुद्ध के वे धार्मिक वाक्य सग्रहित हैं, जिन्हें प्रत्येक भिक्षु कठस्थ रखता था। इस समय बौद्ध शिक्षण का अत्यधिक प्रसार था। यही कारण है कि उस समय बडे-बडे विहार, विश्वविद्यालय निर्मित हो सके, जिनमे हजारो अध्यापक और विद्यार्थी एक साथ रह सकते थे।

नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला, जगद्दल और ओदन्तपुरी की गरिमा से सभी परिचित हैं। शिक्षा के इन केन्द्रो मे देश विदेश के अनेक विद्वान अध्ययन हेतु आते। इसी हेतु इतिहास के बिखरे सूत्रो को एकत्रित करने मे आगे चलकर महत्वपूण योग मिला। वस्तुत बौद्ध शिक्षण का इतिहास बौद्ध मठ विहारो और भिक्षु सघो के इतिहास का ही एक पक्ष है जिससे इन विहारो के भीतर के बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया, सम्पूणता से व्यक्त होती है।

बौद्ध धम के जिस प्रभाव को सम्राट अशोक ने जीकान्तरित किया उसे बिम्बसार, आनन्द, मोद्गलायन, देवव्रत, उपालि, उदयन अनिरुद्ध, कनिष्क और हृष जैसे प्रतापी शासको ने भली भाति अगीकार किया था। कनिष्क के समय मे कल्हण रचित—राजतरगिणी एव हृष के समय मे रचित नागानन्द कृत रत्नावली और प्रियदर्शिका नामक कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जिनके द्वारा हम उस काल के बौद्ध स्वरूप को आसानी से पहचान सकते हैं।

इन सबके अतिरिक्त बौद्ध दशन के परिचायक पक्ष के रूप मे अनेक यात्रियो के सस्मरण भी उपलब्ध होते हैं जिनमे इस समय की स्थितियो

की सूक्ष्मता से जानकारी मिलती है। चीनी यात्री फाहियान के अनुसार गोमती बिहार का चित्र इस प्रकार है—

एक घंटे की आवाज पर तीन हजार भिक्षु भोजन के लिये एकत्रित हो जाते हैं। जब वे विहार की भोजनशाला में प्रवेश करते हैं तो उस समय उनका व्यवहार गम्भीर एवं शिष्टतापूर्ण होता है। नियमित क्रम में वे बैठ जाते हैं। सब मौन रहते हैं, उनके बर्तनों की भी कोई खनखनाहट नहीं होती। अधिक भोजन यदि वे परोसवाना चाहते हैं तो परोसने वाले को वे बुलाते नहीं बल्कि अपने हाथों से केवल संकेत कर देते हैं।

उस समय की एक अन्य व्यवस्था के लिये वह लिखता है—सारे देश में कोई जीव हिंसा नहीं करता। न कोई शराब पीता है, यहाँ तक कि लोग प्याज और लहसुन भी नहीं खाते—इस देश में सुअर और मुर्गियाँ नहीं पाली जाती, पशुओं का क्रय विक्रय नहीं होता, यहाँ के बाजारों में मांस बेचने वालों की दूकानें नहीं हैं और न शराब ही निकाली जाती है।

साहित्य एवं सामाजिक व्यवस्था के साथ साथ इस समय की मूर्तिकला भी अत्यधिक विकसित रही है। विशाल चैत्य बनवाये गये, स्तूप निर्मित किये गये जिसमें साँची और भरहुत मध्य भारत में, अमरावती और नागार्जुनकोण्डा दक्षिण भारत में, कार्ले और भुज पश्चिमी भारत में प्रमुख हैं। अजंता की कला को देखकर अब भी बौद्ध प्रभावी चित्रकला को जाना जा सकता है। इसी प्रकार का धर्म एवं कला प्रभाव अन्य धर्म प्रभावी देशों जैसे इंडोनेशिया बर्मा, श्रीलंका, थाईलैंड जापान, नेपाल, चीन, कंबोडिया में मिलता है।

बौद्ध संस्कृति को आज भी आसानी से लुम्बिनी, बोधगया, (बोधि स्थान) सारनाथ (धर्मचक्र प्रवर्तन स्थान), कुशीनगर (निर्वाण स्थान), श्रावस्ती, संकाश्य, राजगृह (जन्म स्थान), वैशाली (प्रिय स्थान), साँची, नालंदा, गिरनार, धाक, सिन्दसर, तलाजा, सान्हा, पावागढ, वल्लभी काम्पिल्य, भुज अजन्ता बिदिसा, नासिक अमरावती, नागार्जुनकोण्डा, नागपटटनम, और कांचिपुरम आदि की पुरातात्विक सामग्री से जाना जा सकता है।

भगवान बुद्ध चाहते थे कि एक नया स्वतंत्र मनुष्य विकसित हो, जो सब पूर्व मान्यताओं से स्वतंत्र हो, जो अपना भविष्य स्वयं बनाये जो अपना दीपक स्वयम् बने। उनका वाद मानव जाति और राष्ट्रीय सीमाओं से परे था। आज दुनिया के सभी मामलों में जो अव्यवस्था जान पड़ती है वह मनुष्यों की आत्मा के भीतर की अव्यवस्था व्यक्त करती है। क्योंकि इतिहास का विषय अब न यूरोप है, न एशिया, न पूर्व है, न पश्चिम, परन्तु उसका विषय सभी

देशो और काल खण्डो की मानवता है। प्रार्थना के अनुसार—

बुद्ध शरण गच्छामि।
धम्म शरण गच्छामि।
सघ शरण गच्छामि।

महावीर

ईसा से 6 शताब्दी पूर्व की बात है जब भारतवप मे अस्थिरता एव अनास्था का प्रभाव उत्कर्ष पर था, तब गगा की पूर्वी घाटी से एक सुधार आदोलन का जन्म जैन धम के रूप मे हुआ। इसके सूत्रधार नेता क्षत्रिय नेता थे जिन्होने इस चार सिद्धान्तो वाले धम को अपना लिया था। आज के बिहार की राजधानी पटना से कोई 40 किलोमीटर दूर ऐतिहासिक नगरी वैशाली के उपप्रात कुडग्राम मे भगवान महावीर का जन्म हुआ, जो कि चौबीसवें तीथकर के रूप मे धममच पर आये। ऋषभदेवजी के अनतर इन चौबीस तीर्थंकरो का क्रमबद्ध इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि किस प्रकार इस धम की रेखा लोकमानस का आधार बनी। महावीर स्वामी का पूवनाम वधमान था और इन्होने 30 वप की आयु मे ही अपनी नवजात कन्या प्रियदर्शना के आविर्भाव के अनतर अपने भाई को कौटुम्बिक भार सौंपकर सन्यास ग्रहण किया था। इन्होने बारह वप तक घोर तपस्या की और बहत्तर वप की आयु मे देवलोक ग्रहण किया। कहते हैं इनके जन्म से पूर्व ही ज्योतिषियो ने इनकी माता त्रिशिला से यह मत प्रगट किया था कि—आपका बालक झडे सा, दीपक सा, मुकुट सा, तिलक सा और छायादार पेड सा होगा जो पराक्रमी, नायक, एव चक्रवर्ती गुणा वाला धम सुधारक बनेगा।

सिद्धार्थ के पुत्र और नन्दिवधन एव सुदर्शना के भाई महावीर स्वामी अर्थात निगण्ठ या नातपुत्त का विवाह बसन्तपुर के राजा समरवीर की कन्या यशोदा से हुआ था।

पारिवारिक आस्था को त्यागने के बाद इनका सारा जीवन भ्रमण और साधना मे बीता। इनके नगे बदन पर कोई ईंट पत्थर फेंकता तो कोई अपमान करता, पर ये इससे कभी विचलित न हुऐ। बिहार मे राजगृह, भागलपुर,

मुगेर, बसाढ, जनकपुर, पूर्वी उत्तर प्रदेश मे बनारस अर्थात वाराणसी,
कौशाम्बी, अयोध्या, सहेट महेट और श्वेताम्बी, नालन्दा आदि स्थानो
कष्टपूर्ण यात्रा के बाद इन्हे 'महावीर' कहा जाने लगा। साथ ही इन्द्रियो
वश म कर सकने के कारण इन्हे 'जिन' भी कहा जाने लगा। आगे चल
मान्यताओ के विरोध स्वरूप जैन धर्म के दो रूप हमारे सामने आये श्वेताम्ब
और दिगम्बर। भगवान महावीर इसी दिगम्बर व्यवस्था के प्रेरक थे जिनके
चौबीस पुराणो मे कथित धर्म आज सभी को मान्य है। यह इनकी बारह वर्ष
की कठोर साधना का ही फल था कि जभिय गाँव मे, ऋजुबालिका नदी
के तट पर वैशाख सुदी दशमी के दिन केवल दर्शन अर्थात बोध प्राप्त हुआ।
भगवान महावीर के प्रमुख कथ्य है—जीवमात्र को पीडित नही करना
चाहिये, सत्य बोलना चाहिये, चोरी नही करनी चाहिये, सम्पत्ति का स्वामी
नही बनना चाहिये और जीवन मे अहिंसा का पालन करना चाहिये। मानव
स्वय अपनी स्वाधीनता या पराधीनता का विधाता है।
आत्मा के ऐसे मौलिक स्वरूप के प्रतिपादक भगवान महावीर के अनु
यायियो की सख्या कभी कम नही रही। उस समय की ऐतिहासिक नगरी
चम्पा, वैशाली राजगृह, मिथिला और श्रावस्ती के इतिहास को यदि हम
देखें तो पायेंगे कि इन चौबीसवें तीर्थकर की महिमा नाना रूपो में गाई गई
हैं। यही नही कि इनके शिष्यो मे साधारण जन ही थे अपितु कई राजकुमार
एव राजकुमारियाँ भी थी। भारत मे गुजरात के गिरनार, बिहार के पारस
नाथ और राजगृह, मैसूर के गोमतेश्वर, राजस्थान के श्री महावीरजी और
दिलवाडा मदिर इस बात के मूक साक्षी हैं कि भगवान महावीर का कौन
सा आध्यात्मिक रूप हजारो वर्ष बाद भी जन मच पर आराधित है। नदवश के
राजाओ चन्द्रगुप्त मौर्य, और लिच्छवी राजाओ द्वारा प्रसारित भगवान
महावीर के उपदेशो को बारह 'सुत्तो' मे गूथा गया है, जिसमे व्रत, अहिंसा,
अस्तेय अपरिग्रह और प्रतिक्रमण की विभिन्न प्रेरणाएँ कूट कूट कर भरी हैं।
उदयन, चदना, बिम्बसार, जामालि, जयन्ती, सुमनोभद्र, सुप्रतिष्ठ और
गोसाल नामक इनके दीक्षित धर्म प्रसारक थे, जिन्होने अणुव्रतो और सात
शिक्षाव्रतो के उपदेश को हर घर का मूलमत्र बनाया।

भीखणजी

सत्य और सिद्धान्तों की बात तो सभी करते हैं लेकिन बहुत कम लोग हैं जो उन पर आचरण को महत्व देते हैं। यही कारण है कि व्यक्ति कथनी से नहीं अपितु करनी से पहचाना जाता है। जैनधर्म में तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य भीखणजी ऐसे ही महामानव थे जिन्होंने इस संसार को ज्ञान और कर्म की दिशा बताई।

आचार्य भीखणजी का जन्म राजस्थान में पाली जिले के कण्टालिया गाँव में संवत 1783 की आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। आपके पिता का नाम शाहबलूजी तथा माता का नाम दीपाबाई था। बचपन से ही धर्म के प्रति श्रद्धा का भाव होने के कारण यह पारिवारिक बंधन को त्याग कर लोकोपकारी श्रावक जीवन बिताने लगे। अपने जीवन में भीखणजी ने जिन सामाजिक मर्यादाओं का स्थापन किया वह सब हमारे लिये अनुकरण की विषय हैं। कई लोग कहते हैं 'जीवों को मारे बिना धर्म नहीं होता। यदि मन के परिणाम अच्छे हों तो जीवों को मारने का पाप नहीं लगता' पर आचार्य भीखणजी कहते—जानबूझकर जीवों को मारने वाले के मन का परिणाम अच्छा कैसे हो सकता है। एक जीव को मारकर दूसरे जीव की रक्षा करना धर्म नहीं है। धर्म यह है कि अधर्मी को समझा बुझाकर धर्मी बनाया जाय। इसी तरह आचार्य भिक्षु ने कभी नहीं कहा कि मैंने कोई नया मार्ग ढूँढ़ा है अपितु उन्होंने यही कहा कि 'मैंने भगवान महावीर की वाणी को जनता के सम्मुख यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अतः दुनिया में कोई भी तत्व नया नहीं होता, नये का अर्थ है, पुराने का प्रकाश में लाना तथा उसे समय और साहित्य के नव बिन्दु में देखना।

आपका स्वर्गवास सिरियारी गाँव में भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। जन्म और मृत्यु के बीच आचार्य भीखणजी का सम्पूर्ण जीवन 66 वर्ष का रहा जिसमें इनके 25 वर्ष गृहस्थ, 8 वर्ष स्थानकवासी साधु और 44 वर्ष तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य रूप में बीते। आपने संवत 1808 की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी को बगड़ी गाँव में रुघनाथ जी से दीक्षा ग्रहण की तथा संवत 1815 में उदयपुर के राजनगर गाँव में बोधि प्राप्ति की। आचार्य भीखणजी द्वारा

तेरापथ की व्याख्या मे कहा कि जहाँ पाँच महाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौय, ब्रह्मचय और अपरिग्रह, पाँच समिति ईर्या भाषा, एषणा, आदान निक्षेप, उत्सग और तीन गुप्ति मन, वचन तथा शरीर, नामक तेरह नियम पाले जाते हैं वह तेरापथ है।

आचाय भीखणजी के अनुसार धर्म सयम मे है, स्वच्छदता मे नही। जो मनुष्य शास्त्र द्वारा दी हुई छूट से लाभ नही उठाता वह धन्यवाद का पात्र है।

इसी तरह जिसे भय लगता है, वह सग्रह करता है। जो विषयरत है वह अवश्य ही हिंसामय युद्ध करेगा। अहिंसा का अथ है मोक्ष और मोक्ष, सत्यनारायण का साक्षात्कार है। जो सत्य है वही सयम है और जो सयम है वही सत्य है। इसे भगवान महावीर की भाषा मे कहें तो—जो सम्यक है वही मौन है और जो मौन है वही सम्यक है।

आचाय भीखणजी आचार पर बहुत अधिक बल दिया करते थे। इनके अनुसार विचारो मे आग्रह या अपवित्रता तभी आती है जब व्यक्ति का आचार शुद्ध नही होता। अत आचारवान से मिलो तथा अनाचारी से दूर रहो।

एक बार की बात है जोधपुर राज्य के मत्री विजयसिंह जी आचार्यजी के पास आये। उन्होने आचाय से यह प्रश्न पूछा कि विश्व सादि सान्त है या अनादि अनन्त। आचार्य भीखणजी से अपने प्रश्न का सतोषजनक उत्तर पाकर मत्री ने कहा—आचायश्री आपकी बुद्धि कई राज्यो का सचालन करे एसी है। मत्री की इस प्रशसा मे भीखणजी कहने लगे—

बुद्धि वाही सराहिये जो सेवे जिन धम।
वा बुद्धि किण कामरी, जो पड़िया बाँधे कम॥

अर्थात्—वही बुद्धि सराहने योग्य है जो धम मे आचरण म लगे, एव मुक्ति का माग ढढे। वह बुद्धि व्यथ है जिससे बधन बढे।

आचाय भीखणजी का धमरूप लोकजीवन की समस्त सद्भावनाओं का ऐसा कीर्तिमान सग्रह है, जिसे सभी धम के लोग समाजोत्थान की विशिष्ट प्रक्रिया मानते हैं। जहाँ साहित्य के माध्यम से जनाचार्यों ने सामाजिक मूल्यों को बदला वहाँ, गाँव गाँव म घूमकर मानवीय मूल्यो का प्रतिपादन भी किया। समय के साथ आचाय भीखणजी के वचनो का महत्व दिन प्रतिदिन बढेगा।

मोइनुद्दीन चिश्ती

भारत मे प्रचलित सूफी सप्रदाय के अन्तर्गत चिश्तिया सप्रदाय का महत्व प्राय अधिक है। भारत मे इसके प्रथम प्रचारक थे, मोइनुद्दीन चिश्ती, जो मूलत सीस्तान अर्थात ईरान प्रदेश के निवासी थे और अनेक सूफी सतो के साथ ईराक, अफगानिस्तान, सीरिया आदि मे सत्सग करते हुए सवत 1249 मे भारत आ गये थे। आपने शहाबुद्दीन गोरी की सेनाओ के साथ ही भारत मे प्रवेश किया और कुछ दिना पजाब तथा दिल्ली मे रहने के बाद राजस्थान के ऐतिहासिक नगर अजमेर मे आकर रहने लगे। कहते हैं आप जब अजमेर आये थे तब आपकी आयु कोई पचास वर्ष की थी। यही सत्तानवे साल की आयु मे आपका देहान्त हुआ।

ख्वाजा साहिब का जन्म 536 हिजरी अर्थात 1136 ईसवी के अनुसार ईरान के चिश्त नामक स्थान पर हुआ था जो सजिस्तान के नाम से भी जाना जाता है। सम्पन्न परिवार के सदस्य होने के साथ-साथ प्रारम्भ से ही आप-उदारता, सरल स्वभाव और भक्तिभावना के प्रेरक रहे।

आप सूफी फकीरो मे सब प्रसिद्ध हुए, यही कारण है कि आपको भारत के सभी सूफियो ने 'आफताबे हिन्द' की पदवी प्रदान की। यही नहीं कि ख्वाजा साहिब के भक्तों में केवल मुसलमान ही हैं अपितु आपके अनन्य भक्तो मे भारत के हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, आदि अनेक जाति के लोग शामिल हैं। कहते हैं आपके अनेक हिन्दू भक्त, 'हुसैनी ब्राह्मण' कहलाये तथा बनिये जिनकी दुकानें थी, प्रात दुकान खोलने से पहले चाबियो को दरगाह की सीढियो पर रखकर शुभ लाभ की प्राथना करते थे। आपके प्रमुख शिष्य थे—ख्वाजा कुतुबुद्दीन 'काकी' जिनके प्रमुख शिष्य फरीदुद्दीन 'शकरगज' के रूप मे दूर दूर तक जाने जाते हैं। इन्ही शकरगज के प्रधान शिष्य थे हजरत निजामुद्दीन औलिया, जिनका कि उस हर वर्ष दिल्ली मे मनाया जाता है।

ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह शरीफ पर यो तो हरदिन भक्त हाजरी बजाने आते हैं, लेकिन रबिउलसानी महीने के अन्तिम दिन नये चाद के दिखाई देते ही दरगाह के शाहजहानी दरवाजे पर नौबत शहनाई गूज उठती है और दूसरे दिन पहली रजब से गरीब नवाज मोईनुद्दीन हसन चिश्ती का सालाना 6 रोजा उर्स प्रारम्भ हो जाता है। कहते है 6 रोज तक उस के

मनाये जाने का कारण ख्वाजा साहिब की मृत्यु तिथि की अनिश्चितता को लेकर हैं। कहते हैं—गरीब नवाज अपने एकांत निवास मे प्रविष्ट हुए और 6 दिन पश्चात जब बाहर न आये तो, हुजरा देखा गया। गरीब नवाज की पार्थिव देह वहाँ निष्प्राण पडी थी, अत ये निश्चित नहीं जाना जा सका कि आपका देहान्त किस विशेष दिन को हुआ, अत 6 दिन उस मनाया जाने लगा।

दीन दुखियो के परम हितैषी ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की कीर्ति केवल झोपडियो तक ही नही थी वरन महलो तक भी थी। कहते हैं मुगल सम्राट अकबर के कोई औलाद जीवित नही रहती थी। ख्वाजा साहब की कृपा स शहशाह अकबर के जहाँगीर पैदा हुआ। पुत्र की प्राप्ति पर सन् 1570 में शहशाह अकबर स्वय आगरा से पदल चलकर अजमेर स्थित ख्वाजा की दरगाह पर जियारत करने अजमर आये। बाद मे इन्होने ही दरगाह म दो लोहे के कढाव अर्थात देग भेंट किये जिनम कि प्रसाद तैयार होता है।

ख्वाजा साहिब ने अपना सारा जीवन तपस्या एव भक्ति म व्यतीत किया, तथा प्रतिहिंसा को सदैव बुरा माना। आप म ऐसी अलौकिक शक्ति विद्यमान थी कि आपके स्पश मात्र से जन्म जन्मान्तर के रोग-दुख दूर हो जाते थे। आज भी जिनकी मन्नतें ख्वाजा पूरी कर देते हैं, वे मजार शरीफ पर चादर चढाते है, देगें लुटाते हैं।

उस का 6 रोज का कार्यक्रम अत्यन्त आनन्ददायक एव अनुभूति पूर्ण है। आपकी स्मति मे कव्वालियो का नियमित कार्यक्रम चलता है। हर दिन सूर्य की पहली किरण के साथ प्रसादयुक्त देगें लूटी जाती हैं। बसन्त चढाया जाता है और यदि शुक्रवार बीच म आये तो जुम की नमाज पढी जाती है। ख्वाजा साहिब के मजार मुबारक को गुसल' दिया जाता है और अन्तिम दिन दोपहर मे उस की महत्वपूण 'कुल की रस्म अदा होती है।

अजमेर शरीफ उन सभी धर्मावलम्बियो का पुण्यक्षेत्र है जो मानवता और अहिंसा म विश्वास रखते है। समरकन्द और बुखारा के तत्वज्ञानी, अजमेर वाले ख्वाजा उन लाखो की बिगडी बनाने वाले हैं जो सत्य और शान्ति म आस्था रखते हैं। ख्वाजा साहब कहा करते थे—तीन प्रकार के मनुष्य स्वग प्राप्त नही कर सकते—वे जो झूठ बोलते हैं, वे जो कजूस हैं और वे जो पराये धन को अपनाना चाहते हैं। किसी धार्मिक सज्जन पुरुष को गाली देना व्यभिचार के समान है। ईश्वर मेहनत मजदूरी करनेवालो से प्रेम रखता है परन्तु जो व्यक्ति अपने आहार के लिये अपने पुरुषार्थ पर ही अभिमान करता है वह अधर्मी समझा जाता है, क्योंकि अन्नदाता तो अल्ला ताला है, वही सबको आहार देता है।

निजामुद्दीन औलिया

भारतवर्ष मे सूफियो के चार सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं जिनके कारण इस देश पर सूफी मत का व्यापक प्रभाव पडा। ये चार सम्प्रदाय हैं सुहरावर्दिया, चिश्तिया, कादिरिया और नक्शबन्दिया। चिश्तिया सम्प्रदाय के ही अनुयायी थे निजामुद्दीन औलिया। हजरत निजामुद्दीन औलिया की गणना विश्व के उन अध्यात्म गुरुओ मे की जाती है, जिनका कि प्रभाव सात सौ वर्ष बाद जन मानस पर आज भी विद्यमान है और आगे भी रहेगा।

हजरत निजामुद्दीन औलिया का जन्म सन् 1235 मे उत्तर प्रदेश के बदायूँ नामक नगर मे हुआ था। ये इतने चर्चित एव आदरणीय सत थे कि अनुयायियो ने इन्हे निजामुलहक मशायख, महबूबे इलाही और सुल्तानजी के नाम से अपनाया। बचपन मे ही पिता का देहान्त हो गया। माता के सरक्षण मे पढाई लिखाई का काम आगे बढ़ा। मौलाना कमालुद्दीन जाहिद (Zahid) जैसे निर्भीक एव पारगत गुरु के कारण निजामुद्दीन औलिया का जीवन प्रारम्भ से ही सत्यादर्श का प्रतीक बन गया।

बारह वर्ष की अवस्था मे ही दिल्ली के हजरत बाबा फरीद गजशकर की महिमा सुनकर ये दिल्ली चले आये और उनके पडोस मे रहने लगे। सन् 1267 मे शेख फरीद ने इन्हे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। तथा ये सदैव के लिये दिल्ली के निवासी बन गये।

सुलतान और बादशाहो को जन साधारण के बाद स्वीकारने वाले हजरत निजामुद्दीन औलिया—खुदा और खुदा के बदो से अत्यन्त प्रेम करते थे।

दीन-दुखियो की सेवा का व्रत लेकर चलने वाले महबूबे इलाही के भक्तो की सख्या बढने लगी और इन्होने दिल्ली के स्थान पर गयासपुर नाम के गाँव मे रहना शुरू किया जो आज हजरत निजामुद्दीन औलिया के नाम से सर्वविख्यात है। दिल्ली के शाही तख्त पर जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन खिलजी खुसरो खाँ, गयासुद्दीन तुगलक, और मुहम्मद तुगलक एक के बाद एक आये और गये, लेकिन इनका सम्मान ज्यो का त्यो अक्षत बना रहा।

सूफियो के प्रभाव से सुलतान लोग जलने लगे। एक बार जब गयासुद्दीन बगाल फतह के लिये रवाना हुआ तो उसने आदेश दिया कि मैं जब तक वापिस

लौटू, तबतक सुलतान जी को दिल्ली छोडकर चले जाना चाहिए। इस पर हजरत निजामुद्दीन औलिया ने कहा 'हर्नोज दिल्ली दूर अस्त' अर्थात्—अभी दिल्ली दूर है। प्रतिशोध के इसी प्रवाह के बीच एक दिन गयासउद्दीन को उसके बेटे मुहम्मद तुगलक ने मौत के घाट उतार दिया और गयासद्दीन को दिल्ली पहुँचना नसीब ही न हुआ।

हजरत निजामुद्दीन औलिया की ही परम्परा के सूफी थे—प्रसिद्ध कवि मलिक मोहम्मद जायसी, और खडी बोली के आदि कवि अमीर खुसरो तो इनके शिष्य थे। खुसरो ने अपनी एक रचना मे आपके नाम से लिखा है—

परवत बास मगाव मेरे बाबुल, नीके मडवा छाव रे।
सोना दी हा, रूपा दी हा, बाबुल दिल दरियाव रे।
डोलीफदाय पिया लै चलि हैं, अब सग नहि कोई आव रे।
'निजामुद्दीन औलिया बहिया पकरि चले, धरिहौं वाके पाँव रे।

ऐस महान सूफी सत, हजरत निजामुद्दीन औलिया ने अपनी मृत्यु से चालीस दिन पूव भोजन छोड दिया था। आपकी मृत्यु सन 1337 मे 99 वप की आयु मे हुई। आज भी इनके उस मे सम्मिलित होने के लिये हर साल असख्य नर-नारी भारत से ही नही, विदेशो से भी खुशी खुशी दिल्ली स्थित इनके मजार पर सजदा करने आते है।

आपकी मृत्यु पर ही अमीर खुसरो ने ये दोहा लिखा था—

गोरी सोवत सेज पर, मुख पर डाले केस,
चल खुसरो घर आपनो, रैन भई सब देस।

जाभोजी

भारत मे विभिन्न धम और सप्रदाय अलग अलग माग बोध के द्वारा ए ही परमसत्य की प्राप्ति मे सदैव सलग्न रहे हैं। राजस्थान मे विश्न सम्प्रदाय इसी तथ्य का पूरक माना जाता है। उसका आधार ही सत्य प्रति के द्वारा निर्धारित हुआ है। विश्नोई सप्रदाय के प्रवर्तक थे सत जाभोज जिनका कि ज म नागौर जिले के पीपासर गाँव मे सवत 1508 की भा वदि अष्टमी को हुआ था। इ होने सात वप बाल लीला मे, सत्ताईस व

गौचारण मे और 51 वर्ष ज्ञानोपदेश मे बिता कर, 85 वर्ष की आयु मे सवत 1593 की मिगसर वदि नवमी को बीकानेर के लालासर गाँव के 'अरण्य' मे स्वर्गलोक प्राप्त किया।

जाभोजी आजन्म ब्रह्मचारी एव तत्वज्ञानी थे। सवत 1542 से पूर्व जाभोजी वर्तमान मुकाम गाँव के पास सम्भराथल नामक एक ऊँचे और बडे रेत के धोरे पर रहने लगे। इन्ही दिनो मरुस्थली मे भयकर दुर्भिक्ष पडा। सम्पूर्ण जन जीवन त्रस्त हो उठा। इस अवसर पर जाभोजी ने सभी दुखियो की सहायता की। सुकाल होने पर इसी सवत की कार्तिक वदि अष्टमी का इन्होंने सम्भराथल पर कलश स्थापन कर विश्नोई सप्रदाय का प्रवर्तन किया।

जाभोजी के उपदेशो को सबद वाणी रूप मे जाना जाता है। जिनमे अवसर विशेष के अलग-अलग प्रश्न और ज्ञानोत्तर वर्णित है। वर्तमान मे जाभोजी के केवल 122 सबद ही हमे उपलब्ध हैं। ये सबद उनके शिष्य नाथाजी को कठस्थ रहे और उनसे फिर इन्हें बील्होजी न पाया तथा बील्होजी के ही द्वारा ये साहित्य जगत को प्राप्त हो सके।

जाभोजी के सम्बन्ध मे प्राप्त सामग्री के आधार पर ये जाना जाता है कि इनका सम्पूर्ण जीवन सत्कार्य करने मे ही बीता। इनके समान कम सत ही समाधि मे रम सके। कम बोलना, वायु का आहार करना एव समस्त शारीरिक धर्म-बन्धनो से परे रहना, जाभोजी का नियम था। इनके कहे सबदो मे इनके जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ चित्रित हैं। बचपन मे कुछ भी आहार न लेने पर इनके माता पिता ने लोगो के कथन पर इन्हें कई भोपो आदि को दिखाया जिनमे एक नागौरी पडित के साथ घटी घटना का यह 'सबद' उल्लेखनीय है —

> गुरु चीन्हो गुरु चीन्ह पुरोहित,
> गुरु मुखि धर्म बखाणी।
> जो गुरु हायबा सहजे सीले नादे वेदे,
> तिहि गुरुका आलिंगार पिछाणी।
> छह दरसण जैहक रोमणि-थामणि,
> ससार वरतणि निज कर थरप्या।
> सो गुरु पर तकि जाणि।

जाभोजी की महिमा से जन साधारण ही प्रभावित न था, अपितु राव जोधा, रावमालदेव, रावदूदा, राव बीदा, काव लूणकरण, राव जैतसी, राणा

सागा और झाली राणी, नागौर के शासक मुहम्मद खाँ, अजमेर के मल्लू खां और बादशाह सिकन्दर लोदी आदि ने भी इनसे ज्ञानार्जन किया।

दिल्ली सिकन्दर साहदे, परचो परचायो,
महमद खा नागोरि, परचि गुरु पाये आयो।
दूदो मेडतियो राव आप गुर पाय बिलगो,
रावल जैसलमेर परचला सासो भगो।।
सातिल सनमुख आय सुचील जित हुवोसिनानी।
सागै राण सुणि सीख जका गुर कही सै मानी।।
छव राजिन्दर के न अवर आचरे ओलखियो।
वील्ह कहै मांगो पुहि जींह मुकति ने हाथो दियो।।

16 वीं शताब्दी मे जब राजस्थान मे कुसस्कार, अनक्ता, अज्ञान और अधविश्वास का बोलबाला था तब जाभोजी ने अपनी वाणी द्वारा एकता, ज्ञान और दशन तत्व का पाठ जन-जन को पढाया। एक जोगी की कही वाणी के अनुसार —

खरतर झोली खरतर कथा, काथ सहो दुख भारु।
जोग तणी थे खबर-न पाई, काय तजया घर बारु।।

जाभोजी की विचारधारा सक्षेप मे विष्णु नाम स्मरण, ससार की असारता, पत्थर पूजा का त्याग, नाते रिश्तो की व्यथता की परिचायक हैं जिससे जीवदया, जातीय एकता और तन मन मे शुद्धता की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

यो तो जाभोजी का हर सबद धम नियम है पर इन्होने 29 नियमो की एक जीवन सहिता प्रवर्तित की जिसका पालन हर विश्नोई आज भी करता है। दृष्टव्य है सहिता से कुछ अश—

तिस दिन सूतक पाँच सतवती न्यारो।
सेरो करो सिनान सील सतोष सुच्यारो।।
तीन काल की नवण सांझ, आरती गुण गावो।
होम हित चित प्रीत सू वास बकुंठी पावो।।
पाणी बाणी ईधणी दूध जलीजें छाण।
छिमा दिया हिरदै धरो, गुरु बताया जाण।।
चोरी, निंद्या झूठ वर जियो वाद न करणो कोय।
अमावस व्रत राखणा भजन विष्णु बतायो जोय।
जीव दया पालणी रुख लीलो नही घावे।
अजर जरे जीवत मरें, वास सुरगे सुख पावै।।

करे रसोई हाथ आन को पलो न छिपावे।
अमर रखावें थाट बैल बधिया न करावे॥
अमल, तमाखू, भांग, मद सूं दूर ही भागै।
लील न लावे अग देखतां दूर ही त्यागै॥
गुण तीस धरम की आखडी हिरदै धरियो जोय।
जामोजी किरपा करी, नांव विश्नोई होय।

जामोजी के अनुसार विष्णु निराकार ब्रह्म का पर्याय है। हवन, यज्ञ करना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। अपना काम आप करें और जीव हत्या न करें।

समाज, धर्म, सस्कृति, इतिहास, साहित्य और भाषा आदि के क्षेत्र मे जाभोजी का प्रभाव उल्लेखनीय माना जाना चाहिये।

गुरु नानक

नानक न्हे ह्वै रहो, जैसे न ही दूब।
और रुख सुख जायेंगे, दूब खूब की खूब॥

ऐसी युगवाणी के सजक एव सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव का जन्म 1526 विक्रम सवत मे वैशाख सुदी तृतीया को, लाहौर शहर से लगभग 35 मील दूर स्थित तलवडी नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम मेहता कालू और माता का नाम तृप्ता था। मेहता कालू पेशे से पटवारी थे पर साथ मे खेती-बाडी भी करते थे।

गुरु नानक बचपन से ही बडे प्रतिभावान और शात स्वभाव के व्यक्ति थे। पिता ने इन्हें पजाबी, हिंदी सस्कृत और फारसी की शिक्षा दिलाई तथा इन्होंने शिक्षा मे असामान्य योग्यता का परिचय दिया।

नानक देव बचपन से ही ईश्वर मे बडी श्रद्धा रखते थे, अत पाठशाला म हिसाब किताब की पढाई इनको तनिक भी समझ न आई। बस एकान्त-सेवन, सत्सग और ईश्वर चिंतन का क्रम दिन भर चलता था। इनके पिता ने इन्हें इन सबसे अलग करने हेतु विवाह कर दिया और एक मोदी के यहाँ नौकरी करवा दी।

पर एक दिन मोदी ने भी, अपने काय मे नानक की अरुचि के कारण

गुरु अगद

अन्य धर्मों की भाँति सिक्ख धम भी भारत का एक जीवित धम है जो मानव प्रेम तथा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के चेतन अभ्युदय को सर्वोपरि मानता है। गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्द सिंह तक सिक्ख धम के दस गुरुओं मे हमें वैचारिक एकसूत्रता के दर्शन होते हैं। इस जाति का इतिहास पढते हुए सहसा अनुभव होने लगता है, जैसे हम एक उभरती सस्कृति वाले देश से गुजर रहे हैं।

गुरु अगद प्रभु नानक के शिष्य थे। इनका जन्म विक्रम सवत 1561 की 11 वैशाख को, पजाब के हरिके गाँव में हुआ। गुरु अगद की माता का नाम दया कुवरी तथा पिता का नाम फेरू था। गुरु अगद का प्रथम नाम लहना था। लहना ने 'मत्तेदी सराय' की खीबी नामक स्त्री से शादी की थी, जिससे इनके दातू और दासू नामक दो पुत्र तथा अमरू नाम एक लडकी हुई। लहना, शक्ति के उपासक थे, पर जोधा नामक सिक्ख से 'असादीवार' की कुछ पक्तियाँ सुनकर, ये इनके रचयिता बाबा नानक के पास जा पहुँचे। बाबा नानक ने इन्हें ज्यो त्यो एक बार घर भेजा पर ये कुछ कपडे तथा एक बोरी नमक लेकर गुरु के पास वापिस आ गये। बाबा नानक ने इनकी कई बार परीक्षायें लीं, और ये हर बार उनमे सफल रहे। एक बार जब अतिवृष्टि के कारण गुरु नानक देव की कच्ची दीवार गिर पडी थी तो इन्हे गुरु की आज्ञा से उसे तीन बार गिरा गिराकर उठाना पडा। इनकी लगन और भक्ति देखकर ही गुरु नानक देव ने इन्हें अपना शिष्य बनाया और नया नाम सस्कार—गुरु अगद के रूप मे किया। इसके बाद ये गुरु की आज्ञा से खडूर नामक स्थान पर जाकर रहने लगे।

गुरु नानक देव का देहात हो जाने पर इन्हें अत्यधिक वियोग हुआ। उन्होंने अपने को कमरे में वद कर लिया और खाना पीना छोड गुरु के ध्यान मे ही सदा लीन रहने लगे। बडी मुश्किल से इन्हें इनके अनुयायियो ने इस वेदना से मुक्त कराया। अब ये बस दिन रात नियमानुसार जन जन को उपदेश

देने लगे । 'असादीवार' का गान सुनते और फिर जाकर रोगियो एव कोढियो की सेवा करते । सदैव बच्चो को प्यार करते और कहते—बच्चो का हृदय सदा शुद्ध तथा सरल रहा करता है, और उन पर कभी शोक विषाद की छाप नही रहती । कहते हैं—एक बार जब बादशाह हुमायू, शेरशाह के विरुद्ध लडने जा रहा था तो रास्ते मे इन्हें ध्यानमग्न पा आशीर्वाद लेने रुका । जब बहुत देर तक गुरु का ध्यान नही टूटा तो हुमायू ने क्रोधित हो इनके वध हेतु तलवार निकालनी चाही, पर वह म्यान से बाहर नही निकल सकी । अत मे जब गुरु अगद को ये सब ज्ञात हुआ तो उन्होंने सब कुछ भुलाकर हुमायूँ को विजय का आशीर्वाद दिया ।

गुरु अगद ने ही सर्वप्रथम, बाबा नानकदेव की रचनाओ को एकत्रित कर उन्हें 'गुरुमुखी' लिपि मे लिखवाना प्रारम्भ किया । इन्होंने ही गुरुओ की जीवनी लिखने की परिपाटी प्रारम्भ की तथा भडारे की चली आ रही प्रथा का विस्तार किया । गुरु अगद की रचनायें तो अधिक नही मिलती पर जो हैं वे 'गुरुग्रथ साहब' मे महला-२ के नीचे भिन्न भिन्न रागो मे सग्रहीत हैं ।

अपने जीवनकाल मे ही इन्होने अपने शिष्य रूप मे गुरु अमरदास का चयन किया । भाई बुढढा ने नियमानुसार मस्तक पर तिलक किया । सिक्ख धम के ऐसे ओजस्वी द्वितीय गुरु अगद का विक्रम सवत 1609 की चैत सुदी 3 को देहात हुआ ।

गुरु अगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा मे प्रेम विरह और वैराग्य का निरूपण किया—

'जिन वडिआई तेरे नाम की मह रते मन माहि ।
नानक अमृतु एक है, दूजा अमृतु नाहि ।।

गुरु अमरदास

अमरदास सिक्ख सम्प्रदाय के तीसरे गुरु एव गुरु अगद के उत्तराधिकारी थे । इनका जन्म 1536 विक्रम की वैशाख सुदी चौदस को अमृतसर के पास बसरकी गाँव मे हुआ था । इनकी माता का नाम बख्तकौर एव पिता का नाम तेजभान था । जाति से खत्री, तथा भेष से गृहस्थ, अमरदास,

गुरु अगद

अन्य धर्मों की भाँति सिक्ख धर्म भी भारत का एक जीवित धर्म है जो मानव प्रेम तथा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के चेतन अभ्युदय को सर्वोपरि मानता है। गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्द सिंह तक सिक्ख धर्म के दस गुरुओ मे हमें वैचारिक एकसूत्रता के दर्शन होते हैं। इस जाति का इतिहास पढते हुए सहसा अनुभव होने लगता है, जैसे हम एक उभरती सस्कृति वाले देश से गुजर रहे हैं।

गुरु अगद प्रभु नानक के शिष्य थे। इनका जन्म विक्रम सवत1561 की 11 वैशाख को, पजाब के हरिके गाँव मे हुआ। गुरु अगद की माता का नाम दया कुवरी तथा पिता का नाम फेरू था। गुरु अगद का प्रथम नाम लहना था। लहना ने 'मत्तेदी सराय' की रवीबी नामक स्त्री से शादी की थी, जिससे इनके दातू और दासू नामक दो पुत्र तथा अमरू नाम एक लडकी हुई। लहना, शक्ति के उपासक थे, पर जोधा नामक सिक्ख से 'असादीवार' की कुछ पक्तियाँ सुनकर, ये इनके रचयिता बाबा नानक के पास जा पहुँचे। बाबा नानक ने 'इन्हें ज्यों त्यों एक बार घर भेजा पर ये कुछ कपडे तथा एक बोरी नमक लेकर गुरु के पास वापिस आ गये। बाबा नानक ने इनकी कई बार परीक्षायें ली, और ये हर बार उनमे सफल रहे। एक बार जब अतिवृष्टि के कारण गुरु नानक देव की कच्ची दीवार गिर पडी थी तो इन्हें गुरु की आज्ञा से उसे तीन बार गिरा गिराकर उठाना पडा। इनकी लगन और भक्ति देखकर ही गुरु नानक देव ने इन्हें अपना शिष्य बनाया और नया नाम सस्कार—गुरु अगद के रूप मे किया। इसके बाद ये गुरु की आज्ञा से खडूर नामक स्थान पर जाकर रहने लगे।

गुरु नानक देव का देहात हो जाने पर इन्हें अत्यधिक वियोग हुआ। उन्होंने अपने को कमरे में बद कर लिया और खाना पीना छोड गुरु के ध्यान म ही सदा लीन रहने लगे। बडी मुश्किल से इन्हें इनके अनुयायियो ने इस वेदना से मुक्त कराया। अब ये बस दिन रात नियमानुसार जन जन को उपदेश

देने लगे। 'असादीवार' का गान सुनते और फिर जाकर रोगियो एव कोढिया की सेवा करते। सदैव बच्चो को प्यार करते और कहते—बच्चो का हृदय सदा शुद्ध तथा सरल रहा करता है, और उन पर कभी शोक विषाद की छाप नही रहती। कहते हैं—एक बार जब बादशाह हुमायू शेरशाह के विरुद्ध लडने जा रहा था तो रास्ते मे इन्हें ध्यानमग्न पा आशीर्वाद लेने रुका। जब बहुत देर तक गुरु का ध्यान नही टूटा तो हुमायू ने क्रोधित हो इनके वध हेतु तलवार निकालनी चाही, पर वह म्यान से बाहर नही निकल सकी। अत मे जब गुरु अगद को ये सब ज्ञात हुआ तो उन्होंने सब कुछ भुलाकर हुमायू को विजय का आशीर्वाद दिया।

गुरु अगद ने ही सवप्रथम, बाबा नानकदेव की रचनाओ को एकत्रित कर उन्हें 'गुरुमुखी' लिपि मे लिखवाना प्रारम्भ किया। इन्होने ही गुरुओ की जीवनी लिखने की परिपाटी प्रारम्भ की तथा भडारे की चली आ रही प्रथा का विस्तार किया। गुरु अगद की रचनायें तो अधिक नही मिलती पर जो हैं वे 'गुरुग्रथ साहब' मे महला-२ के नीचे भिन्न भिन्न रागो मे सग्रहीत है।

अपने जीवनकाल मे ही इन्होने अपने शिष्य रूप मे गुरु अमरदास का चयन किया। भाई बुढढा ने नियमानुसार मस्तक पर तिलक किया। सिक्ख धम के ऐसे ओजस्वी द्वितीय गुरु अगद का विक्रम सवत 1609 की चैत सुदी 3 को देहात हुआ।

गुरु अगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा मे प्रेम विरह और वैराग्य का निरूपण किया—

'जिन वडिआई तेरे नाम की यह रते मन माहि।
नानक अमृतु एक है, दूजा अमृतु नाहि।।

गुरु अमरदास

अमरदास सिक्ख सम्प्रदाय के तीसरे गुरु एव गुरु अगद के उत्तराधिकारी थे। इनका जन्म 1536 विक्रम की वैशाख सुदी चौदस को अमृतसर के पास बसरकी गाँव मे हुआ था। इनकी माता का नाम बखतकौर एव पिता का नाम तेजभान था। जाति से खत्री, तथा भेष से गृहस्थ, अमरदास,

अपने पिता की चार संतानों मे सबसे बडे थे। इनका विवाह 24 वर्ष की उम्र मे मनसा देवी के साथ हुआ था, जिससे इन्हे मोहरी और मोहन नामक दो पुत्र एव दानी और मानी नाम की दो पुत्रिया हुइ।

बचपन से ही भक्ति भाव मे लीन रहने वाले अमरदास के जीवन मे क्रांतिकारी मोड उस समय आया जब एक बार इन्होने गुरु अगद की पुत्री अमरूबीबी से (जिनका विवाह कुछ दिनो पूर्व ही अमरदास के भतीजे के साथ हुआ था) यह पद सुना—

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अतुहरे ।।
चित चेतसि की न्ही बावरिआ। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।।

बीबी अमरू से यह पद इन्होने बार बार दोहराने को कहा तथा मन ही मन बहुत आनंदित हुए। बीबी अमरु ने ही इन्हे गुरु अगद के चरणो तक पहुचाया, जहा ये गुरु की सेवा बदगी करने लगे। अमरदास की गुरु सेवा के लिये कहा गया कि ये गोइदवाला मे नित्य प्रति पहर भर रात शेष रहे उठा करते और व्यास नदी से पानी लेकर गुरु अगद को स्नान कराने खडूर तक जाते। 'जपुजी' एव 'आसादीवार' का पाठ करते गुरु की रसोई के लिये पानी भरते, लकडिया लाते एव सध्या समय 'सोदर' का भजन श्रवण कर नित्यश गुरु के पैर दबाते और उन्हे सुलाकर पुन गोइदवाला लौट जाते।

खडूर के निकट जुलाहो के एक गाँव की घटना है कि एक दिन पानी लाते समय, जुलाहो के पाव रखने वाले गडढे मे अमरदास का पैर भूल से पड गया और वे गिर पडे। इसकी आवाज सुनकर जुलाहे चोर चोर चिल्लाने लगे परतु बाहर आते ही उन्होंने अमरदास को 'जपुजी' का पाठ करते हुए पाया।

अमरदास की सेवा का परिणाम ही था कि गुरु अगद के हाथो प्रति वर्ष वे दो बार कुछ कपडे पाया करते थे। भक्ति के आवेश मे एक बार उन्होने गुरु अगद को बिवाई से मुह लगाकर खून तक चूस लिया था। जुलाहो के गाँव की घटना के अनतर ही गुरु अगद ने इन्हे अपने पास बुलाया, नहलाया नवीन वस्त्र धारण कराया, अपने स्थान पर बिठाकर पाँच पसे और नारियल इनके सामने रखा तथा भाई बुड्ढा से विधिवत तिलकाभिषिक्त करवाया। इस दिन से ही अमरदास गुरु अमरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए और गुरु अगद की मृत्यु के पश्चात् धर्मोपदेश देकर अनुयायियो का कल्याण करने लगे।

यहाँ यह जानना अच्छा रहेगा कि गुरु अगद शाक्त सम्प्रदाय मे तथा

गुरु अमरदास वैष्णव सम्प्रदाय मे बहुत काल तक रहकर, सिक्ख धर्म मे दीक्षित हुए थे। गद्दी प्राप्त करते समय, गुरु अगद की आयु लगभग 73 वर्ष की हो चुकी थी। कहते हैं गुरु अगद के पुत्र दातू ने गुरु अमरदास से अप्रसन्न हो गोइदवाला मे एक अप्रिय घटना की। वो यह कि दातू ने गुरु अमरदास को गाली देते हुए ठोकर मार कर गिरा दिया, पर गुरु अमरदास ने कहा—'आपके चरणो मे चोट तो नही आई ? कृपापूर्वक मुझे क्षमा कर दीजिए।'

लेकिन आगे चलकर दातू भी मुसीबतो के बोझ से दबकर गुरु अमरदास का आराधक हो गया। गुरु अमरदास ने अपने काल मे कुछ नई धारणाओ एव दृष्टियो को प्रोत्साहन दिया। इनके काल से ही 'गुरु परम्परा' पैतृक हो गई तथा मुगल बादशाह अकबर के साथ सौहार्दपूर्ण सबध कायम हुए। सम्राट अकबर जब लाहौर आया तो, उसने भी गुरु दर्शन से पूर्व लगर मे प्रसादी चावल पाया था। अकबर ने प्रभावित हो इन्हे हरिद्वार मे आमत्रित किया तथा प्रचलित 'कर' से इन्हे मुक्त रखा।

गुरु की पुत्री भानी का पति ही आगे चलकर गुरु रामदास के रूप मे स्थापित हुआ। यो उनका नाम जेठा था। गुरु अमरदास की आज्ञा से ही जेठा ने गोइदवाला से लगभग 40 किलोमीटर दूर सतोषसर एव अमृतसर नामक दो तालाब खुदवाये। गुरु अमरदास ने जेठा की कई बार कठिन परीक्षायें ली एव फिर पूरी तरह प्रसन्न होकर उन्हे गुरुपद पर बैठाया।

गुरु अमरदास ने, मत के प्रचारार्थ 22 केन्द्र अर्थात् मजे स्थापित किये थे और स्त्रीशिक्षा निमित्त 52 उपदेशिकाएँ भिन्न भिन्न स्थानो मे नियत की। इनकी रचनाओ मे सबसे प्रसिद्ध 'आनद' है, जो विशेषकर उत्सवो पर गाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ वारा पदो तथा सलोका की भी इन्होने रचना की जो सभी 'गुरुग्रथ साहिब' मे सग्रहीत हैं। सिक्ख पथ के ऐसे प्रेरक पुरुष गुरु अमरदास का देहात विक्रम सवत 1631 की भादो पूर्णिमा को हुआ था। इन्ही गुरु ने गोइदवाला मे एक 84 सीढिया वाली बावडी बनवाई, जिसके लिये कथन है कि जो इस बावडी की 84 सीढियो पर 84 बार जपुजी का पाठ करेगा, वह जन्म और मरण के चक्र से मुक्त हो जायेगा। इनका एक पद है—

जाति का गरब न करियहु कोइ।
ब्रह्म बदे सो ब्राह्मण होई॥
जाति का गरब न करि मूरख गँवारा।
इसु गरब ते चलहि बहुत विकारा॥

चारे वरन आखै सब कोई।
ब्रह्म बिंदु ते सभ ओपत्ति होई ॥
माटी एक सगल ससारा।
बहु विधि भाडे घड कुम्हारा ॥
पच ततु मिलि देहि अकारा।
घटि वधि को करै विचारा ॥
कहतु नानक इह जीउ करम वधु होई।
बिन सतगुरू भेंटे मुकति न होई ॥

गुरु तेगबहादुर

आठवें सिक्ख गुरु हरकृष्णराय की मृत्यु के पश्चात, चैत्र शुक्ल चौदस सवत 1772 को, गुरु तेगबहादुर सिक्ख धर्म के प्रतिपालक बने। गुरु तेग बहादुर, छठे सिक्ख गुरु हरगोविन्द के पाँचवें और सबसे छोटे पुत्र थे। इनकी माता का नाम नानकी एव जन्मदिन वैशाख कृष्ण पचमी सवत 1679 है।

बचपन से ही साधुता, एव शातिप्रियता के गुणगौरव को देखकर, अक्सर यह भविष्यवाणी की जाती थी कि यह एक दिन अवश्य गुरु बनेंगे। जैसा कि हम कहते हैं मनुष्य को या देश को किसी बाहरी या तीसरी शक्ति से खतरा नही होता अपितु उसे तो अपने ही घर से या समाज वालो से नुक्सान होने की सम्भावना रहती है। गुरु तेगबहादुर के गद्दी ग्रहण को लेकर सबसे अधिक अशुभ षडयत्र करने वाला धीरमल ही था, जो कि इनके बडे भाई गुरुदित्ता का पुत्र था। लेकिन—

जाको राखे साईया मार सके ना कोय।
बाल न बाँको कर सके जो जग बैरी होय ॥

तब गुरु तेगबहादुर ने कीरतपुर के पास आनदपुर नामक एक नये गाव की नीव डाली और वहा रहने लगे। पर गुरु यहा भी अधिक दिन सुख से नही रह पाये तथा पजाब के ग्रामीण क्षेत्र की यात्रा करते हुए प्रयाग, काशी और गया आदि की यात्रा पर निकल गये। इस यात्रा मे गुरु तेगबहादुर प्रसिद्ध सत मलूकदास से भी मिले। काशी मे इन्होने रेशमकटरा मुहल्ले के

शबदकोठा नामक स्थान मे निवास किया जहाँ इनके जूते और कोट 'बडी सगत' मे आज तक सुरक्षित है। यही से आगे चलकर इन्हें जयपुर के तत्कालीन राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के प्रस्ताव पर कामरूप के विरुद्ध दिल्लीपति औरगजेब की सेना चढाई मे सहायता का पत्र मिला। गुरु तेगबहादुर ने बादशाह औरगजेब की मदद की तथा कामरूप के राजा को परामर्श दे युद्ध की विनाशलीला भी न होने दी। यही पर पटना से पुत्र जन्म का समाचार पाकर गुरु तेगबहादुर वापस आनदपुर लौट आये।

इसी बीच बादशाह औरगजेब की ओर से इनके धम परिवतन की चेष्टा प्रारम्भ हो गई तथा कश्मीर के ब्राह्मण उसके पहले शिकार थे। कश्मीर के ब्राह्मणो की प्राथना पर गुरु ने कहा कि—'बिना बलिदान के धम जीवित नही रहता, अत हमे साहसिक बलिदान देना होगा।' कहते हैं कश्मीर के पडितो के इस तक से कि यदि गुरु तेगबहादुर धम परिवतन करलें तो हम भी धम बदल लेंगे, बादशाह औरगजेब ने अपने प्रयास की धारा गुरु तेगबहादुर पर केंद्रित कर दी। गुरु तेगबहादुर को बादशाह द्वारा दिल्ली बुलाकर राज बदी बना दिया गया। भय प्रलोभन, यातनाएँ सभी गुरु तेगबहादुर को दी गईं पर 'गुरु' ने अपने पथ को नहीं छोडा। इतिहास के इस अविस्मरणीय परिच्छेद की समाप्ति अत मे गुरु तेगबहादुर के बलिदान से हुई लेकिन शक्ति और प्रलोभन का कोई भी क्षण इन्हें अपने कतव्य से विचलित नही कर पाया। गुरु के आत्मसाहस का परिचय 'यह सलोका' है जो इन्होंने बादशाह के बदीगृह से अपनी पत्नी गूजरी को पत्र मे लिखा था—

राम गइओ रावनु गइओ जाको बहु परिवार।
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ ससार॥
चिन्ता ताकी कीजिये, जो अनहोनी होइ।
इहु मारग ससार को, नानक थिरु नही कोइ॥

गुरु तेगबहादुर वीर और साहसी स्वप्न द्रष्टा थे। ये बहुधा कहा करते थे कि क्षमा करना दान के समान है, इसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति निश्चित रहती है। क्षमा के समान अन्य कोई भी पुण्य नही। यह ऐसा धन है जिसे न कोई चुरा सकता है और न ही कोई क्रय क्रर सकता है। गुरु तेगबहादुर की अनेक रचनायें जो गुरु ग्रथ साहब' मे सग्रहीत हैं, इस बात की साक्षी हैं कि ये स्वभाव और शब्दो से सरल एव अनुकरणीय थे। दीन दुखियो के सहायक गुरु तेगबहादुर के पुत्र दसवें और अतिम सिक्ख गुरु गोबिन्दसिंह भी पूणत अपने पिता के प्रतिरूप थे। गुरु तेगबहादुर की वाणीनुसार—

नर अचेत पाप ते डर रे ।
दीन दयाल सगल भै भजन, सरनि ताहि तुम परु रे ॥
वेद पुरान जासु गुन गावत, ताको नाम हिए मे धरु रे ।
पावन नाम जगति मे हरिको, सिमरि सिमरि कसमल सभ हरु रे ॥
मानुस देह बहुरि नहि पावै, कछु उपाव मुकति को करु रे ।
नानक कहत गाइ करुनामय, भवसागर के पारि उतर रे ।

गुरु गोबिन्द सिंह

बकु हुआ बधन छुटै,
समकिछु होता उपाइ ।
नानक सभ किछु तुमरे हाथ मे,
तुम हो होत सहाइ ॥

कहते है कुछ सत्पुरुष ऐसे भी हुये हैं जिनका स्मरण कर मनुष्य अपनी आत्मा को ज्योति प्रदान कर सकता है । नाम लिये जिनका टल जाय, सकल ज म की बाधा' ऐसा ही है दसवें सिक्ख गुरु गोबि द सिंह का जीवन दशन । गुरु गोबिन्द सिंह का पहला नाम गोबिन्दर था । गुरु तेगबहादुर के पुत्र गोबिन्द सिंह को बचपन से ही शक्ति और भक्ति से लगाव था । ये असादीवार' और रहिरास' के भजन नियमित सुना करते थे ।

बादशाह औरंगजेब द्वारा पिता तेग बहादुर की हत्या करवा देने से इन पर अल्पायु मे ही पथ का सारा बोझ आ गया । अब इन्होने शातिप्रिय सिक्ख धम को खड्गवाद की नई धारणा दी । आनन्दपुर के एक वैशाखी मेले मे सभी सिक्खो को एकत्र किया, फिर एक बडे चबूतरे पर चारो ओर से कनात खडी करवा दी और उसके भीतर कुछ बकरे बँधवा दिये गये । फिर गुरु गोबिन्द सिंह ने उपस्थित जन समूह से कहा— चण्डी" बलिदान चाहती हैं । तुममें से प्राण देने का जो तैयार हो वह कनात मे आये । गुरुजी की आवाज पर भीड में से कोई एक आदमी कनात के भीतर आता और गुरु उसे चुप चाप भीतर ले जाकर बैठा देते तथा एक बकरे का काटकर रक्त रजित तलवार ले फिर बाहर आते । इस प्रकार जब पाँच ही आदमी कनात मे आये तो गुरु ने पाँचो वीरों को बाहर निकाला और कहा य पाँच प्यारे धम के शुद्ध सेवक हैं और इन्हें लेकर मैं आज से खालसा धर्म की नीव डालता हूँ ।

सगठन के ऐसे चमत्कारी प्रयास के साथ ही गुरु गोबिन्द सिंह ने पाँच 'क' कारो के धारण को सभी सिक्खो के लिये अनिवाय बना दिया। ये पाच क' कार हैं—(1) कघी [बाल साफ करने हेतु] (2) कच्छा [फुर्ती के लिये] (3) कडा [यम नियम और सयम का प्रतीक] (4) कृपाण [आत्मरक्षा के लिये] और (5) केश [जिसे सभी गुरु धारण करते आये है]।

गुरु की तैयारियो से औरगजेब बहुत परेशान था, अत आनदपुर पर जबदस्त घेरा डाला गया, कि-तु गुरु हाथ नही आये, लेकिन इनके दो पुत्र जारावर सिंह और फतेह सिंह पकड लिये गये, जि-ह कि आगे चल कर बाद शाह औरगजेब ने जीवित ही दीवार मे चुनवा दिया।

पथ के प्रति बलिदान की यह अनुपम साक्षी आज तक के भारतीय धम इतिहास म अ-यत्र कही नही मिलती।

प्रत्यक गुरु अपनी मृत्यु पर अपने उत्तराधिकारी को अपना पद सौंप कर उसे पथ का गुरु घोषित करते थे, पर गुरु गोबिन्द सिंह ने मृत्यु के समय ग्र-थ को ही पथ का गुरु घोषित किया और आना दी कि अब से कोई गुरु नही होगा। गुरु गोबि-द सिंह ने अपने जीवन मे भक्ति और शूरवीरता को मदैव एक दूसरे का पूरक और पर्याय माना, यही कारण है कि इनकी रचनाओ मे इसका सवत्र प्रभाव है। गुरु गोबि-द सिंह की रचनाओ मे प्रमुख हैं गोबि-द सिंह रामायण जाप साहब, जफरनामा विचित्र नाटक, सौ साखी चडी चरित्र, शबदहजारा मवैया तैंतीस, ग्यानप्रबोध, शास्त्र नामामाला, चरित्रप्रवास और चौपाया। हि-दू देवी देवताओं के सम्ब-ध मे एक स्थान पर व लिखते हैं :—

राम कथा जुग जुग अटल,
जो कोई गावे नेत।
स्वगवास रघुवर कियो,
सगली पुरी समेत।।

गुरु गोबि-द सिंह की आज्ञानुसार मनुष्य को कभी मिथ्या भाषण नही करना चाहिए। जितेन्द्रिय, बनकर रहना चाहिये। अपना भिन्न मत खडा नहीं करना चाहिये और न हो किसी पर किसी प्रकार की हुकूमत करने की चेष्टा करनी चाहिये।

ग्र-थ साहिब को ही गुरुवत मानने का आदेश था गुरु गोबि-द सिंह का—

आज्ञा भई अकाल की,
तभी चलायो पथ।

सब सिक्खन को हुकम है,
गुरु मानियो ग्रन्थ ।
गुरु ग्रन्थजी मानियो,
प्रकट गुरु की देह ।।
जो प्रभू को मिलनो चहै,
खोज शब्द मे लहै ।।

ऐसे अवतारी गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म पौष सुदी सप्तमी सवत् 1723 को और देहान्त कार्तिक सुदी पचमी सवत् 1765 को हुआ ।

सिक्खो के दस धर्म गुरुओ की जीवन लीला को यदि हम निकट से जाने तो हमे यह ज्ञान होगा कि इन सभी गुरुओ का जीवन, पथ और परम्परा की रक्षा मे बीता ।

भारत के कर्णधार

महादेव गोविन्द रानाडे

एक समय था जब यह बात बडे गव से कही जाती थी कि भारत मे महादेव गोविन्द रानाडे ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो चौबीसो घटे मातृ-भूमि की चिन्ता किया करते हैं। ऐसे देश-सेवी रानाडेजी का नाम दादाभाई नौरोजी, बाल गगाधर तिलक और रोमेशचन्द्र दत्त के साथ सुना जा सकता है। स्वभाव के सुलझे और शान्त, रानाडेजी ने 30 35 वष तक भारत की उस समय सेवा की जब कि भारत मे जागृति की नीव नये सिरे से रखी जा रही थी।

रानाडेजी का सम्पूण जीवन हमे जिस एक ही दिशा से जुडा हुआ लगता है वह है मातृभूमि की सेवा। ब्रिटिश उपनिवेशवाद को भारत के शोषण का सूत्र मानने वाले, रानाडेजी, स्वदेशी आन्दोलन के सबसे बडे समथक थे। ये उन लोगो मे से थे, जिन्होने सन् 1885 मे आज की अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना मे सक्रिय सहयोग दिया था।

इनका जन्म 18 जनवरी सन् 1842 मगलवार को, पुणे (महाराष्ट्र) म गोविंद अमृत रानाडे के घर मे हुआ। रानाडेजी के पूवज पेशवाओ के दरबार मे रहे। इनके परदादा, अप्पाजी पन्त तो पूना में सांगली रियासत के प्रतिनिधि थे। इनके दादा अमृतराव पूना जिले मे मामलातदार थे और इनके पिता नासिक जिले मे निफात के मामलातदार के हैड क्लक थे। इनके जन्म के समय, इनके पिता की मासिक आय केवल 35 रुपये थी। अत रानाडे जी का प्रारम्भिक जीवन असाधारण सुखवाला न होकर साधारण सुविधाओ से ही युक्त रहा।

रानाडेजी उन इक्कीस विद्यार्थियो मे से थे, जिन्होने सन् 1859 मे बम्बई विश्वविद्यालय की प्रथम मैट्रिक परीक्षा पास की थी। ये बी० ए० परीक्षा म प्रथम आये और एम० ए० मे स्वण पदक के विजेता बने। उसके बाद इन्होने एल० एल० बी० की परीक्षा पास की।

रानाडेजी को इतिहास और अथ शास्त्र मे सदैव रुचि रही। यही कारण था कि विद्यार्थी जीवन मे ही इन्होंने गवेषणापूण लेख आदि लिखने प्रारम्भ कर दिये थे। इन्ही लेखो के कारण सरकार ने इनकी छात्रवृत्ति भी कुछ समय के लिये रोक दी थी।

इनके जीवन का विकास मराठी अनुवादक के रूप मे हुआ जो आगे चल

कर न्याय विभाग के अनेक पदो से गुजरता हुआ, बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जैसे माननीय पद तक पहुँचा। ब्रिटिश सरकार की नौकरी और देशभक्ति की अथक लगन, इन दो विपरीत स्थितियो का अनुमान आप सहज ही लगा सकते है। लेकिन यह बात हमारे लिये प्रेरणा का विषय है कि इन्होने कभी आत्मा की आवाज को उभरने से रोका नही।

देश मे व्याप्त प्राथना समाज, आयसमाज और ब्रह्मसमाज के सुधार कार्यों से प्रभावित और विधवा विवाह के समथक रानाडे सरकारी सेवा मे रत होकर भी जनता से दूर नही रह पाये। यही कारण था कि वे कितनी ही सावजनिक सभाओ के सचालक और सरक्षक रहे।

श्री केशवचन्द्र सेन द्वारा स्थापित प्राथना समाज को महाराष्ट्र मे नया जीवन देने वाले रानाडेजी ही थे। इनका कहना था कि नये भारत के निर्माण हेतु राजनीति और समाज सुधार दोनो को समान महत्व देकर आगे बढाया जाय। वे धार्मिक, सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक कार्य क्षेत्रो को भारतीय सस्कृति का स्वरूप मानते थे।

इनकी पाडित्यपूण हाज़िर जवाबी की एक घटना है कि एक बार ये बम्बई के सबसे बडे पादरी से मिलने गये। पादरी साहब की मेज पर विभिन्न धर्मों के कई ग्रन्थ रखे थे। उनमे सबसे ऊपर बाईबिल रखी थी। रानाडेजी से पादरी साहब ने ईसाई धम की प्रशसा करते हुए कहा—'बाईबिल विश्व के सभी धर्मग्रथो से श्रेष्ठ हैं, देखिये, सबसे ऊपर रखी है।'

रानाडेजी ने सबसे नीचे रखी हुई श्रीमद्भगवद्गीता की ओर सकेत करते हुए फौरन कहा—पर आप ये कैसे भूल जाते है कि सब धर्मों की जड तो श्रीमद्भगवद्गीता है।'

विचारो के धनी रानाडेजी अक्सर कहा करते थे, 'यह समझना कि मनुष्य जन्म कुछ नही केवल स्वप्न है एक प्रकार की नास्तिकता है। कोई भी आदमी अथवा समाज जिसकी इच्छाएँ और सकल्प पक्के नही, परिस्थितियों के अनुकूल होने पर भी लाभ नही उठा सकेगा। अत प्रत्येक भारतवासी को यह समझना चाहिये कि पहले मैं भारतीय हूँ और फिर हिन्दू, ईसाई, पारसी अथवा मुसल मान आदि और कुछ।'

सम्पूण धर्मों का सार यही है कि हरेक व्यक्ति को अपना चित्त इतना शुद्ध रखना चाहिए कि मित्रो की सख्या बढती जाए और शत्रु कम होते जाएँ। ऐसे भारतीय समाज सुधारक न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे की मृत्यु 16 जनवरी सन् 1901 को हुई। इनकी मृत्यु पर गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था

'हम सब जानते है कि रानाड, अपने सामने जो आदश रखते थे उनके प्रति वह कितने ईमानदार थे, पर इसके लिये उन्हे जो कीमत चुकानी पड़ी वह भी कम न थी। उन्होने आराम की जिन्दगी त्याग दी थी। उन्होने जीवन भर कभी चन की सास लेने की बात तक नही सोची। तभी तो वह कहते थे कि—'पीडा और यातानाएँ तो हमारे महान उद्देश्यो के सामने कुछ भी नही है।'

फीरोजशाह मेहता

जब हम स्वतन्त्रता के लम्बे इतिहास को पढ़ते हैं तो हमारे सामने सहसा एक ऐसे व्यक्तित्व का चित्र उभर आता है जो देश और विदश, दोनो जगह समान रूप से सम्मानित था। जिसकी योग्यता बखानी जाती थी तथा जिसके काय को असीमित उद्देश्य का पूरक माना जाता था।

ये थे—फीरोजशाह मेहता, जिनका सामाजिक जीवन मे ऊँचा स्थान था। चाहे बम्बई नगर निगम हो या विश्वविद्यालय, काग्रेस हो या लाट साहब की कौंसिल, सवत्र उनके नाम की घूम रहती थी। ऐसे शानदार वक्ता, जोरदार बहस करने वाले सतक नेता फीरोजशाह के लिए लाड हार्डिग ने लिखा था—'वह बहुत बडे पारखी, बहुत बडे नागरिक, बहुत बडे देशभक्त और बहुत बडे भारतीय थे। कोई आदमी न तो उनसे ज्यादा तगड़े हमले कर सकता था और न उनसे ज्यादा हमले सह सकता था। भारत के सावजनिक जीवन मे वे बेमिसाल थे।'

फीरोजशाह मेहता का जन्म 4 अगस्त, सन् 1845 का हुआ था। उनके पिता मशहूर व्यापारिक फर्म 'कामा कम्पनी' मे साझीदार थे, अत उनकी आमदनी अच्छी थी। पिता ने पुत्र को बडे उत्साह के साथ पढने भेजा। फीरोजशाह उन पहले नौजवान हिन्दुस्तानियो मे मे थे, जिन्होने ऊँचे दर्जे की अग्रेजी शिक्षा पाई थी। ये पहले पारसी थे जिन्होने एम० ए० की परीक्षा पास की थी। इसके बाद ये बैरिस्टरी पढने के लिए विलायत गए। यहाँ उन्हें एक नई व्यवस्था एव व्यवहार के दशन हुए। यही उन्होने राजनीतिक जागरण की महत्वपूण प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त की और अपने देश भारत के वर्तमान तथा भविष्य पर गभीरता से विचार किया। सन् 1868 मे ये बैरिस्टर बन कर स्वदेश लौट आये।

ऊँची शिक्षा के समर्थक फीरोजशाह मेहता कहा करते थे—'हिंदुस्तानियों को पढ़ाने का पहला मकसद यह है कि ऊँची सभ्यता में नीची सभ्यता समा जाय, पुरानी संस्कृति को नये ढंग से सुधारा जाए।'

शिक्षा के साथ साथ वे अपने देश के नौजवानों में हद दर्जे की बहादुरी की भी अपेक्षा करते थे। 'कमजोरी' शब्द से उन्हें चिढ़ थी। एक बार देश में 'वालण्टियर' बनाने के प्रश्न पर गहरा विवाद उठ खड़ा हुआ। अंग्रेज चाहते थे कि वालण्टियर केवल यूरोपियों को ही बनाया जाय, भारतीयों को नहीं। इस बात का फीरोजशाह मेहता ने तीव्र विरोध किया तथा कहा—'हम अपने को कमजोर नहीं बना देना चाहिए। एक बार जब हिंदुस्तानी कमजोर बना दिए जायेंगे, तब फिर उनमें मर्दानगी पैदा करने में बड़ा वक्त लगेगा।' इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी कौम को नामर्द बना देना कभी अक्लमंदी की बात नहीं कही जा सकती। फिरोजशाह की ही मेहनत का नतीजा था कि बम्बई नगर का अपना विधान बना और उसे भारत का सबसे बड़ा निगम होने का गौरव मिला। बाद में ये सन् 1884, 1885, 1905 और 1911 में इसके मेयर भी रहे।

आशावादी धारा के हिमायती फीरोजशाह मेहता सरकारी नीतियों और सिद्धांतों को लोगों के हित की कसौटी पर ही जाँचते थे। नौकरशाही को जनता का माँ बाप समझने की मनोवृत्ति का भी फीरोजशाह ने सदा विरोध किया। वे कहते थे—'ये प्रवृत्ति सरकार और जनता दोनों को गिराने वाली है। नौकरशाही समझती है कि यह उसका फर्ज है कि वह अफसरी ताकत व अफसरी काम को चलाये और लोगों की ताकत को खुला न रहने दे। उसका ख्याल है कि ऐसा न करने से सरकार की ताकत और उसकी अच्छाई को धक्का लगता है पर वह यह नहीं देखती कि सरकारी अफसरों के कामों को गुप्त रखने का कानून बनाकर उसने रिश्वत को बढ़ावा दिया है और सरकारी नौकरों को अँधेरे में छिपकर गैर जिम्मेदारी के काम करने की छूट दी है।'

एक बार किसी ने फीरोजशाह मेहता पर बेईमानी की आदत डालने का आरोप लगाया तब उन्होंने उत्तर में फौरन कहा—'जहाँ तक बेईमानी की आदत डालने का सवाल है, मैं इसे उसी के मुँह पर वापस फेंकता हूँ, जिसने यह आरोप लगाया है।' उनकी इस साहसिक घटना पर गोखले जी ने कहा था 'सिर्फ फीरोजशाह मेहता ही ऐसा कर सकते हैं वे वक्त पर कभी नहीं चूकते।'

ऐसे देश प्रेमी क्रांतिकारी समाज सुधारक की मृत्यु 5 नवम्बर 1915 को हुई जो निश्चय ही भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में स्मरण का दिन है।

मदनमोहन मालवीय

महात्मा गांधी के शब्दो मे—'मैं मालवीयजी से बडा देशभक्त किसी को नही मानता, मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ।' कई लोग मालवीयजी के नाम के बडे सुदर अथ करत हुए कहते थे कि वह मद न, मोह न मालवीय है, यानी ऐसा व्यक्ति जिसमे मद नही और मोह नही। इसलिये लोग उन्हें 'महामना' कहते थे। कुछ ने उन्ह भारत का महर्षि कह कर पुकारा तो कुछ ने राजर्षि कह कर, पर ये सदैव अपने को 'भारत का भिखारी' मानते थे।

मालवीयजी का जन्म 25 दिसम्बर 1861 को प्रयाग (उत्तर प्रदेश) मे हुआ और देहान्त 1946 मे। इनके पिता थे ब्रजनाथ व्यास और माता थी मूनादेवी। महामना का सम्पूण जीवन समाज, साहित्य और राजनीति के आस पास उभरा। जहा एक ओर इन्होने अभ्युदय, हिन्दुस्तान और लीडर जैसे समाचार पत्रो का सपादन किया, वहीं दूसरी ओर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना, भारतीय शिक्षा के इतिहास मे गौरवपूण योगदान की परिचायक है। सफल वकील और स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी मालवीयजी उन भारतीयो मे है जिन्होने महात्मा गाधी के साथ 1931 मे हुई दूसरी गोलमेज सभा मे भाग लिया था। समाज को धम दृष्टि से देखने वाले महामना मदनमोहन मालवीय का व्यक्तित्व– छोटी, पैनी आखें, बडा साफा और गले मे दुपट्टा डाले ऐसा लगता था, मानो वह विष्णु भक्त वैष्णव, सबका भला चाहने वाला राजनीतिज्ञ और आत्मसम्मान का पुजारी हो।

बात बात मे तीन महावाक्य उनके मुख से निकला करते थे—

पहला—निबल के बल राम,

दूसरा—बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय, और

तीसरा—हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम।

एक बार उनके किसी मित्र ने कहा था कि हिन्दू विश्वविद्यालय तो भिखारी के भिक्षा पात्र से उत्पन्न हुआ है। पर वे सदा कहा करते—

मरि जाऊँ माँगू नही, अपने हित के काज।
पर कारज हित माँगिबे, मोहिं न आवत लाज॥

बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे लडके लडकियो की सह शिक्षा का प्रश्न

जोरों से सामने था और स्त्रियों के अधिकारों पर जोरों से बहस चल रही थी। इस संबंध में मालवीयजी ने अपनी सम्मति प्रगट करते हुए कहा—'स्त्रियां में पुरुषोचित गुणों में स्त्रियोचित गुण आरोपित करने के प्रयत्न में हम दोनों की ही उन्नति का मार्ग अवरुद्ध कर रहे हैं।'

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के अनुसार—मालवीयजी बहु-वन्दनीय मूर्ति थे। उनके काम का ढंग था—अपने को पीछे रखना। यह तो मैंने जीवन भर देखा कि जहाँ काम करना है, परिश्रम करना है, वहाँ स्वयं करना और जहाँ कीर्ति मिलनी है वहाँ दूसरे को आगे करना।

मालवीयजी की लिखी इन दो पंक्तियों में आप देखिये रस गंगा और ज्ञान-गंगा की समपूर्ति—

एक एकान्त त्रिकाल सच चेतन शक्ति दिखात।
सिरजत पालत हरत जग महिमा बरनि न जात॥

अंत में महामना के जीवन की एक अद्वितीय घटना का उल्लेख करूँ—असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद 1921 में दिल्ली में मौलाना मुहम्मदअली के घर में महात्मा गाँधी ने 21 दिन का उपवास किया था। उस समय मालवीयजी ने वहीं उन्हें श्रीमद्भागवत का साप्ताहिक पारायण सुनाया था। सारा देश इस काम से चकित था। यह एक नवीन बात है कि एक मुसलमान के घर सात दिन तक श्रीमद्भागवत का पाठ हो, पर यह सब मालवीयजी ने कर दिखाया। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के प्रति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा—

जन गन पथ जय रथ चक्र मुखर आजि।
स्पंदित करि दिगदिगंत, उठिल शंख बाजि॥
दिन आगत ओई, भारत तबउ कोई?
दैन्य जीर्ण कक्ष तार, मलिन क्षीण आशा।
त्रास रुद्ध चित्त तार, नाहिं नाहिं भाषा॥
कोटि 'मौन कंठ पूर्ण वाणी कर दान है!
जाग्रत भगवान है!

विवेकानंद

भारतीय जीवन से स्वामी विवेकानद का नाम इस प्रकार जुडा है कि उसे देश की माटी के रग से अलग कर नही देखा जा सकता। धम स्वातत्य के प्रतीक स्वामी विवेकानद का ज म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ते म हुआ था। बचपन मे इनका नाम नरे द्रनाथ था जो आगे चलकर राष्ट्रीय विवेक के प्रतिनिधि स्वरूप विवेकानद बन गया।

उन्नीसवी शताब्दी का समय सारे भारत मे पुनरुत्थान का काल रहा। राजा राममोहन राय, ईश्वरच द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहस आदि कई विभूतियाँ आइ जि होने समाज को उसका खोया हुआ गौरव दिलवाने की चेष्टाएँ की। इन दिनो रामकृष्ण परमहस देव, सहज प्रेम और भक्ति के कारण सारे देश मे पूज्य थे। तभी नरे द्रनाथ, रामकृष्ण परमहस के सम्पक मे आये, और धीरे धीरे इनके उत्तराधिकारी ही बन गये।

देश विदेश के भ्रमण ने स्वामी विवेकानद को नि सदेह महान व्यक्ति बना दिया। ये जहाँ भी गये, इनका ओजस्वी भाषण सुनकर लोग दग रह गये। अठारह सौ सत्तावन की पहली मई को इ होने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जो आज भी भारतीयता के अभ्युदय मे पूणरूपेण सलग्न है। यही नही कि भारत मे ही इनके गुण गौरव का प्रभाव रहा हो, विदेशो मे भी स्वामी विवेकानद के जीवनदशन को बडी श्रद्धा के साथ स्वीकारा गया है। ऐसे कम योगी का स्वगवास 4 जुलाई 1902 का हुआ।

अब मैं आपको स्वामी विवेकानद के प्रेरक व्यक्तित्व के परिचायक स्मारक के बारे मे कुछ बताऊँगा। भारत के दक्षिण छोर क याकुमारी से करीब 1600 फुट दूर समुद्र मे अवस्थित, विवेकानद शिला पर (जिस पर कि स्वामीजी ने ध्यानस्थ होकर दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था) एक भव्य स्मारक बना है। पौराणिक आख्यान के अनुसार—कहते है इसी शिला पर भगवान शकर की पत्नी सती ने आत्मदाह के पश्चात दूसरे ज म मे कुमारी क या अर्थात *गिरिजा के रूप मे पुन शिववरण के लिये कठोर तपस्या की थी।* फलस्वरूप इस स्थल को क या कुमारी कहा गया। इन दो शिलाओ मे से एक पर माँ पावती का चरण चिह्न अकित है—जिसे तमिल मे 'श्रीपाद पैरे' कहते हैं।

स्वामी विवेकानद स्मारक के मण्डप के कणाश्म अर्थात ग्रेनाइट से बने हुए चारो तरफ एक चबूतरा है और उसके नीचे एक तलघर भी बना है। विवेका-नद मण्डप की भीतरी दीवारा पर धम ग्रथो तथा स्वामीजी की वाणी से चुने हुए उद्धरण और जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओ को चित्रित किया गया है। मण्डप का सिंह द्वार अजन्ता गुफा के प्रवेश द्वार की शैली पर बना है। उसका मुख देवीपाद्म की दिशा मे वायव्य की ओर है। प्रतिमा मे स्वामीजी की दृष्टि देवीपाद्म पर पडती दिखाई देती है। योजनानुसार स्मारक के विभिन्न भागो मे कलात्मक चित्रिकाओ का अकन है। यहाँ मण्डप के अन्दर शिखर के नीचे स्वामी विवेकानद की लगभग 10 फुट ऊँची कांसे की मूर्ति, साढे चार फुट की पाद पीठ पर स्थापित की गयी है। विवेकानद शिला पर बने इस स्मारक का सयोजन, स्वामी विवेकानद के तेजोपमय जीवन वाणी का साक्षी है। जिस शिला के चरण तीन समुद्र पखारते हैं, उस 'शिला-सूय' स्वामी विवेकानद की कीर्ति को सारा ससार जानता है। 6 नवम्बर 1964 से प्रारम्भ हुए इस निर्माण काय के पूरे होने तक लगभग 32 लाख रुपये खच हुए हैं। विभिन्न विदेशी श्रद्धालुओ, राज्य सरकारो, सस्थाओ एव सद्भावी सज्जनो का सहयोग ही स्वामी विवेकानद स्मारक की योजना का मूल आधार रहा है।

भारतीय स्थापत्य कला के नवोदित स्वरूप का परिचायक स्वामी विवेका-नद स्मारक आने वाले समय मे भारतीय ज्ञान और गरिमा का अनन्यतम केन्द्र बनेगा। स्वामी विवेकानद के शब्दो मे 'यदि तुम सच्चे हृदय से भारत की उन्नति चाहते हो, तो मन और विचार से एक बनो। यह द्रविड है और वह आय यह ब्राह्मण है और वह शूद्र, जैसे तुच्छ झगडो मे तुम पडोगे तो तुम्हारी एकता शक्ति क्षीण होती जायेगी। याद रखो एकता मे ही भारत का भविष्य निभर करता है।' ऐसे विचारक एव सम्पूण मानवीय उत्थान प्रक्रियाओ के सचेतक स्वामी विवेकानद के प्रति हम हृदय से नतसिर हैं।

कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दो मे—

मुक्ति ? ओरे मुक्ति कोथाय पावि,
मुक्ति कोथाय आछे।
आपानि प्रभु सृष्टि बाधन परे
बाधा सबार काछे
राखो रे ध्यान, थाक रे फुलेर डालि
छिड़ुक वस्त्र, लागुक धुला बालि
कर्मयोगे तांर साथे एक हये, घम पड़ुक झरे।

यानि तू मुक्ति चाहता है ? मुक्ति कहाँ मिलेगी ? स्वय ईश्वर भी अपनी सृष्टि के साथ बँधे हुए हैं। नाम ध्यान रहने दे। फूल की डाली हटा, काम कर, पसीना बहने दे, कपडा फट जाए, देह मे भले ही धूल लग जाये, कर्मयोग के साथ ईश्वर मे मिल जा।

लाला लाजपतराय

पजाब मे लुधियाना से 45 किलोमीटर दूर है—मालेर कोटला नगर। बहुत समय पूर्व यहाँ का एक परिवार जगराव जाकर बस गया। लाला राधाकृष्ण के इसी परिवार मे 28 जनवरी 1865 को, अपने ननिहाल ढोडी गाँव (पजाब) मे पजाब केसरी लाला लाजपतराय का जन्म हुआ। यह परिवार अपने उद्यम, साहस, समझदारी, मिलनसारी और व्यापारिक गुणो के कारण सभी से परिचित था। वश परम्परा के ये सारे प्रभाव 'पजाब केसरी' पर भी पडे। राधाकृष्ण जी 25 रुपये मासिक वेतन पर अध्यापक थे, जीवन भर में केवल इन्हे 10 रुपये की तरक्की मिली, और वेतन बढकर 35 रुपये मासिक हो पाया।

भरा पूरा परिवार, भोजन वस्त्र और फिर वार त्यौहार के सभी खर्चे—होता यह कि परिवार कई दिनो तक अन्न न छूता, आँसू बहाता, और धर्म ग्रथो का पाठ किया करता।

ऐसे वातावरण मे लाला लाजपतराय ने अपनी शिक्षा रोपड, लाहौर, और लुधियाना के स्कूलो मे प्राप्त की। आठवी कक्षा पास करते ही 13 वर्ष की आयु मे लालाजी का विवाह भी कर दिया गया। परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त कर छात्रवृत्तियो के सहारे पढते पढते इन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय और पजाब विश्वविद्यालय की डिग्रिया प्राप्त की। फिर रोहतक मे रहकर वकालत का काम प्रारम्भ किया। धीरे धीरे सार्वजनिक जीवन से निकटता बढ़ती गई। अब य मौजूदा अग्रेज सरकार के दमन चक्र के विरुद्ध लेख लिखते और जनमत तैयार करते। तभी भारत मे सन् 1897 मे अनावृष्टि, अकाल और महामारी का एक साथ प्रकोप हुआ और इन्हें इस जन कार्य मे मुस्तैदी से जुट जाना पडा।

पजाब के घर घर मे बाँकेदयाल द्वारा रचित—पगडी समाल ओ जट्ट ! गीत की धूम थी। तभी लालाजी को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया

और इन्हें माडले जेल मे भिजवा दिया। मांडले जेल और सूरत का ऐतिहासिक कांग्रेस अधिवेशन, इस सबने लालाजी को नया स्वरूप प्रदान किया। इन्होने इगलैण्ड, अमेरिका और जापान की यात्रायें कीं। अमेरिका मे ही इन्होने 'तरुण भारत' और 'पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ इंडिया' नामक ग्रथ लिखे और क्रांतिकारी आंदोलन को सगठित किया। क्रांतिकारी आन्दोलन के लिये लालाजी का विचार था कि इसके लिये शहीदी और हुतात्माएँ होनी चाहिएँ। स्वतत्रता का पौधा तो अपने शहीदों के रक्त से पनपता है।

एकता और धार्मिक सहिष्णुता के बल पर देश मे सबल विरोध तैयार किया गया। तभी भारत मे 'साईमन कमीशन' का आगमन हुआ। 3 फरवरी 1928 को देशव्यापी हड़ताल हुई। साईमन कमीशन लौट जाओ' 'वन्देमातरम्' के नारे लगाकर और काले झडे दिखाकर कमीशन का स्वागत किया गया। 30 अक्टूबर 1928 को लाला लाजपत राय के नेतृत्व मे साईमन कमीशन बहिष्कार का जुलूस निकला। लाहौर स्टेशन के उस मार्ग के चारो ओर कँटीले तार लगे थे, जिस ओर से कमीशन आने वाला था। इसी विरोध प्रदशन पर, पुलिस ने लाठी चार्ज किया। लाठियो की गभीर चोटें इनकी पीठ और छाती मे लगी। शाम लाहौर के भारी दरवाजे पर एक सभा हुई और पजाब केसरी लाला लाजपतराय ने उन सब साथियो का आह्वान करते हुये कहा—' मैं मर गया और जिन नवयुवको को मैंने काबू मे रखा हुआ था, उन्होने शांति से अन्य मार्ग ग्रहण करने का निश्चय किया, तो मेरी आत्मा उनके कार्यों को आशीर्वाद देगी।'

यही इन्होने ये ऐतिहासिक वाक्य कहे थे—'मेरे शरीर पर पडी हुई एक एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील होगी।' इस गभीर घटना के पश्चात् ही 17 नवम्बर 1928 को 63 वर्ष की आयु मे पजाब केसरी लाला लाजपतराय का देहान्त हुआ। लाला लाजपतराय मूलत क्रांतिकारी विचार के थ। उन्होने एक बार एक लेख में लिखा था— मेरा मजहब हक परस्ती है, मेरी मिल्लत कौम परस्ती है, मेरी इबादत खलक परस्ती है, मेरी अदालत मेरा अन्त करण है, मेरी जायदाद मेरी कलम है मेरा मन्दिर मेरा दिल है और मेरी उमगे सदा जवान हैं।'

अत मे मैं कहूँगा, कि लाला जी धर्म का सिखाने के विरुद्ध थे, वे मानते थे कि वह उसी वायुमडल मे उन्नति पाता है जिसमे विचारो की मलिनता हटा दी गई हो।

अनाथो की सेवा, हरिजन कल्याण और राजनतिक जागृति के स्तम्भ लाला लाजपतराय का नाम केवल 'लाहौर' के साथ ही नही जुडा हुआ है— वरन देश की स्वतत्रता के इतिहास मे इनका एक अलग अध्याय है।

गांधी जी के शब्दो मे 'जब तक भारत के आकाश मे सूय चमकता है, तब तक लालाजी मर नहीं सकते।' लालाजी एक सस्था थे, एक जवाँ देश भक्त थे। जो अपने देश से इसलिये प्रेम करते थे कि वे ससार से प्रेम करते थे।

गोपालकृष्ण गोखले

भारतीय जागरण के इतिहास मे गोपालकृष्ण गोखले का नाम बडी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इस महान नेता के लिये महात्मा गांधी ने कहा था कि किसी राजनैतिक कार्यकर्ता मे जितने गुण होने चाहिये वे सब गोखलेजी मे हैं। इनमे बिल्लौर की स्वच्छता, मेमने की सी नम्रता और शेर की सी वीरता है। नम्रता तो उनमे इतनी है कि वह कभी कभी दोष लगने लगती है।

गोपालकृष्ण गोखले का जन्म 9 मई सन् 1866 को महाराष्ट्र मे चिपलुन ताल्लुके अर्थात रत्नागिरि जिले के कोतलुक नामक गांव मे हुआ था। यह जाति से ब्राह्मण थे और भाषा से मराठी। गोपालकृष्ण गोखले के पिता का नाम कृष्णराव श्रीधर गोखले और माता का नाम सत्यभामा बाई था। कृष्णराव गरीब और ईमानदार थे। यही कारण रहा कि गोपालकृष्ण गोखले दीन दुखियो के प्रति विशेष सद्भाव रखते थे।

स्कूल की घटना है। एक दिन यह अन्य विद्यार्थियो के साथ भोजन कर रहे थे कि इन्होने भोजन परोसने वाले से दही मांगा। भोजन परोसने वाले ने कहा कि दही उसी को दिया जाता है जो आठ आने महीने इसके लिये देता है। गोपालकृष्ण गोखले निर्धनता के कारण दही के आठ आना महीना भी नही दे पाते थे। महीने भर एक समय भोजन करके वह दही के लिये आठ आने बचा पाते थे।

बचपन की शिक्षा पूरी भी न हो पाई कि इनके पिता का देहान्त हो गया। इनके सामने पढाई छोडने के अलावा कोई विकल्प नही था। आखिर मे 15 रुपये मासिक पर नौकरी शुरू की गई। रात को सडक की रोशनी के नीचे पढते और खुद ही भोजन बनाकर एक समय खाते। ऐसी साहसिक शिक्षा यात्रा के बाद इनका परिचय विचित्र ढग से न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे से हुआ। गोपालकृष्ण गोखले तब स्कूल मे अध्यापक थे। स्कूल का विशेष

समारोह था। सभी दर्शक टिकट से आ रहे थे। तभी एक महाशय आये जो अपना टिकिट घर पर ही छोड़ आये थे। गोपालकृष्ण गोखले ने इन्हें भीतर न जाने दिया। कर्तव्य का प्यार करने वाले गोखलेजी को बाद मे पता चला कि वह न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे थे। आगे चलकर तो यह रानाडेजी के प्रमुख साथी और शिष्य बन गये।

इसके बाद गोपालकृष्ण गोखले को पूना की 'सार्वजनिक सभा' का मन्त्री बना दिया गया। अब यह 'सुधारक' नामक प्रमुख पत्र के लिये निःशुल्क लेख लिखते। इन्ही दिनो गोपालकृष्ण गोखले की दृष्टि मे स्त्री सुधार के प्रति गहरा परिवर्तन आया तथा सन अठारह सौ निन्यानबे मे यह बम्बई प्रांत की धारा सभा के सदस्य चुने गये। यहां गोखले जी ने जो भाषण दिये वह सारे देश मे प्रसिद्ध हो गये। इन्होने किसानो के हित की वकालत की जिससे किसानो को बहुत लाभ हुआ फिर सन उन्नीस सौ दो मे गोखलेजी वाइसराय की विधान परिषद के सदस्य बने।

गोखले जी को झूठ से घृणा थी। वह सच्चाई से हमेशा प्रेम करते थे। इनके बचपन की एक घटना है। गाँव के सब लडके इकट्ठे होकर कबड्डी खेल रहेथे। एक दल मे गोखलेजी थे और दूसरे में इनके बडे भाई। जब खेल जोरो पर था तो गोविन्द ने धीरे से गोखलेजी के कान मे कहा—'मैं तुम्हारा बडा भाई हूँ तुम मुझे जीत जाने दो।' गोखलेजी ने उत्तर दिया—'देखो भाई! तुम कहो तो मै खेल छोडकर चला जाऊँ, लेकिन मैं अपने साथियो को धोखा नही दूंगा।

सन् उन्नीस सौ पाँच मे गोखलेजी ने अपने जीवन का सबसे बडा काम सर्वेन्टस आफ इंडिया सोसाइटी की स्थापना से किया। राजनैतिक शिक्षा और आंदोलन जातीय एकता, दलित जातियो का सुधार, स्त्रीशिक्षा और दीन दुखियो की सेवा आदि इस समिति के मुख्य उद्देश्य थे। यह समिति आज भी गोखलेजी के स्वप्न को साकार करने मे लगी है। सन् उन्नीस सौ आठ मे इन्ही के प्रयत्न से 'मिन्टो मार्ले सुधार' हुआ। दक्षिण अफ्रीका मे गोखलेजी ने भारतीयों की दुर्दशा को समाप्त करने का अथक प्रयास किया। महात्मा गांधी इन्हे अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। भारतीय लोकतन्त्र के इस परिमापाकार का देहान्त 19 फरवरी सन 1915 को हुआ था। आने वाला समय गोखलेजी के राष्ट्रीय रूप को और अधिक स्पष्ट करेगा इस बात की आशा की जा सकती है।

महर्षि अरविन्द

विज्ञान ज्योति की प्रथम किरण
लाने वाले प्रभात मगल
आकुल वसुधा की गहन तमिस्त्रा का
करते विनाश प्रतिपल
आहत नर के आशा प्रदीप
हे सत्यसूय कारुण्य धाम
हे दिव्य भावमय अमल अचचल
तपोमूर्ति हे पूण काम
हे योगेश्वर ! हे शान्तिधाम
शत बार तुम्हें मेरा प्रणाम !

भारतीय लोक जीवन मे ऐसे बहुत से प्रसगपर्व हैं जिन्हें कि बुद्धिजीवियों ने अध्यात्म और राजनैतिक विचार दशन की भूमिका के रूप मे स्वीकारा है। भले ही इसका प्रारम्भ वाल्मीकि की रामायण से होता हो या महर्षि वेदव्यास के महाभारत से किन्तु हमारे देश की चिंतन धारा मे इन दिना एक नाम सबसे अधिक चर्चित और उत्सवपूर्ण बन गया है। यह नाम है—श्री अरविन्द का। कुछ लोग इन्हे बौद्धिकता का सूय मानते हैं तो कुछ लोग विचार क्रान्ति का प्रेरक आख्यान।

बहरहाल ये सभी मतविद्ध स्थितियाँ एक योगी और महात्मा की मूल यात्रा का इतिवृत्त बुनती हैं। सभी जानते हैं कि श्री अरविन्द घोष का जन्म 15 अगस्त 1872 को बगाल के एक सम्पन्न परिवार मे डॉक्टर कृष्णधन घोष के यहाँ हुआ था। बचपन की शिक्षा-दीक्षा के बाद श्री अरविन्द बडौदा नरेश के पास रहे। लेकिन विचार स्वातन्त्र्य के हामी श्री अरविन्द का वहाँ निभाव नहीं हो पाया। वे फिर बडौदा मे ही एक महाविद्यालय के प्राचार्य बना दिये गये।

बचपन की इगलैण्ड यात्रा के बाद जब श्री अरविन्द भारत लौटे तो उन्हें हर बार यह उत्कठा बनी रहती थी कि भारत को जाना जाय तथा इस देश की गध को समझा जाय। और इसी धुन के साथ श्री अरविन्द ने सस्कृत

गुजराती, मराठी और अनेक भाषाएँ सीख डाली। सिर्फ यही नही—इन्होने भारतीय साहित्य एव दर्शन को इस भांति पढ़ा कि यह धीरे धीरे पक्के योगाभ्यासी बन गये।

भारतीय स्वतत्रता सग्राम स्वामी रामकृष्ण परमहस और विवेकानद आदि उनके जीवन नियम थे। अरविन्द तब कहा करते थे कि—पहले सच्चे और सरल भारतीय बनो—क्योकि भारतीयता अमर है—अविजित है। यह सयोग मात्र ही नही कहा जा सकता कि उनका जन्मदिन 15 अगस्त—भारतीय जन इतिहास का मुक्ति दिवस भी है।

आजादी के इतिहासकार पडित सुन्दरलाल लिखते हैं कि बडौदा मे अपनी नौकरी छोडकर ये कलकत्ता के एक छोटे से मकान मे रहने लगे। आजादी के नाम पर दारिद्र्य व्रत धारण कर लिया। जब मैं उनसे कलकत्ता में मिला तो मैंने देखा था कि वे एक छोटे से कमरे मे जमीन पर चटाई बिछाकर सोते थे—बस एक बेंच मेहमानो के बैठने के लिये उस कमरे म और थी।'

बचपन की बात है गरीबी के कारण अरविन्द अपनी पत्नी को मायके मे ही रखते थे। जब एक बार उनकी पत्नि मृणालिनीजी ने इन्हें दर्द भरा पत्र लिखकर 10 रुपया महीना खर्च के लिये भेजने को कहा ता इन्होंने उत्तर मे लिखा कि मैं स्वाधीनता के लिये दारिद्र्य व्रत ले चुका हूँ। मेरे पास 10 रुपय कहा, जिस तरह हो दिन काटो।

इस स्थिति के बाद अरविन्द ने गुप्त क्रांतिकारी दल का सगठन किया तथा देश के कोने कोने मे तथा ऊँचे ऊँचे तबको मे स्वतत्रता का नामकरण करने का प्रयास किया। मुजफ्फरपुर मे अंग्रेजो पर बम फेंकने वाले खुदीराम बोस और विश्वासघाती सरकारी गवाह नरेन्द्र स्वामी को जेलखाने मे गोली मारने वाले कनाईलाल दत्त इन्ही के शिष्य थे। जेल और कलकत्ता छोडकर अरविन्द पांडिचेरी मे आकर रहने लगे। यही से अरविन्द की विचारक्रान्ति का सूत्रपात एक दूसरा आयाम लेकर हुआ और अरविन्द महर्षि अरविन्द मे लीन हो गये तथा मृणालिनीजी 'श्रीमाता के रूप मे पूज्य।

महर्षि अरविन्द की जीवनयात्रा की इस कर्मधारा के लिये कवयित्री महादेवी वर्मा ने कहा है कि—'पराभवकाल के अनेक अवरोधो और दमन के विरुद्ध सघर्परत भारत मे अरविन्द का जन्म और उनकी भूमिका असाधारण रूप से महत्वपूर्ण है। अरविन्द का सतत साधक और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व अनेकयामी था। राजनीति, दर्शन, साहित्य योग, जिस किसी दिशा मे उन्होने जीवन के जिस किसी बिंदु को स्पर्श किया—उसे एक दीप्ति मिल गई। इसी कारण वे जनजागरण का अद्भुत कार्य कर सके।'

भारतीय दशन को उनकी सबसे बडी देन है कि विभिन्न मत मतातरो को सश्लिष्ट कर इस लायक बना देना की आप उसे या तो पूरी तरह ग्रहण करें या फिर अशो मे। 'सिद्धि उनके मानसिक विकास की चरम सीमा है जो मानव को महामानव या अतिमानव बनाती है और जीवन उनके लिये युद्ध यात्रा न होकर तीर्थयात्रा है—जिसमे निराशा, असफलता, और मृत्यु की रचमात्र परवाह किये बगैर आदमी आगे बढ़ता जाता है। अरविन्द अकेले एक साथ महायोगी और महाकवि हैं जो समार को नयी ऊध्वगामी दष्टि देते हैं।

इसी भाँति भारतीय सगीत के विद्वान ठाकुर जयदेव सिह के अनुसार—'महर्षि अरविन्द ने वेद और उपनिषद से प्रेरित होकर सृष्टि को एक काव्य माना है—जिसे उन्होने अपने प्रवाद से स्पष्ट करने की चेष्टा की। पद और अथ को समरस कर देना ही उस अतिमानसवादी कवि का सौंदय बोध है।'

कुछ साहित्य ममज्ञ ऐसा मानते हैं कि भारतीय साहित्य पर महर्षि अरविन्द का गहरा प्रभाव रहा है तथा उन्होने सन्यास और गृहस्थ के बीच के भेद को मिटाया है। आज महर्षि अरविन्द के अनुयायी ही नही अपितु अन्य मतावलम्बी भी यह मानते हैं कि उन्होने अध्यात्म के मच पर विचार क्रान्ति का वह माग प्रशस्त किया जो राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता को कमयोग से जोडता है।

महर्षि अरविन्द ने विचारक्रान्ति के प्रतीक कुछ स्वप्न देखे थे। इन स्वप्नो मे पहला था एक क्रान्तिकारी आदोलन जो स्वाधीन और एकीभूत भारत को जन्म दे।

उनका दूसरा स्वप्न था—एशिया की जातियो का पुनरुत्थान तथा स्वातत्र्य और मानव सभ्यता की उन्नति के काय मे एशिया का जो स्थान पहले था उसी स्थान पर उसका लौट आना।

इसी भाँति उनका तीसरा स्वप्न था—एक विश्वसघ, जो समस्त मानव जाति के लिये एक सुन्दरतर, उज्ज्वलतर और महत्तर जीवन का बाहरी आधार तैयार करे।

महर्षि अरविन्द की विचार क्रान्ति के रूप को अपने और अधिक निकट लाने के लिये हम कह सकते हैं कि उन्होने मानवीय शरीर मे अतिमानवीय चेतना को अवतरित कराया था और उन्होने न केवल उस लक्ष्य तक पहुचने वाले पथ का स्वरूप तथा उसका अनुसरण करने की विधि ही हमारे सामने प्रकट की है बल्कि व्यक्तिगत रूप से उसकी सिद्धि प्राप्तकर हमारे सामने उसका उदाहरण भी रखा है। उन्होने हम इस बात का प्रमाण दिया है कि यह कार्य किया जा सकता है और उसके करने का समय भी यही है।

वल्लभभाई पटेल

आजादी की लडाई मे तीन नाम ऐसे है—जिन्हे आज की पीढी हर नये सदभ के साथ याद करती है। ये तीन नाम हैं महात्मा गाधी, पडित जवाहर लाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल। हमारी आजाद पीढी के ये तीनो ही नेता आज हमारे बीच नही है लेकिन इनकी यशोगाथा—कत्यगाथा या विचारगाथा आज भी हमार सामने ज्यो कि त्या है।

गाधीवाद या नेहरूवाद की भाँति पटेलवाद भले ही न चला हो लेकिन भारतीय लोक चेतना मे आज भी सरदार वल्लभभाई पटेल का स्मरण एक अप्रतिम दृढता और व्यावहारिकता का आभास देता है। कुछ लोग इन्हे आधुनिक भारत की एकता का सेनापति कहते हैं तो कुछ लोग इन्हे लौह पुरुष के रूप मे सम्बोधित करते है।

महात्मा गाधी की दो भुजाएँ—पडित नेहरू और सरदार पटेल, वैचारिक स्तर पर दो विपरीत सचालन शक्ति के ही परिचायक रहे हैं। सरदार पटल ने अग्रेजो की विदाई के बाद भारत की 562 देशी रियासतो का जिस तरह एकता का मत्र पढाया वह प्रक्रिया तो भुलाए नहीं भूली जाती।

भारतीय एकीकरण के समीकरण के निर्माता—वल्लभभाई का जन्म 31 अक्तूबर 1875 को गुजरात के पेटलाद तालुके के करमसद गाव म हुआ था। इनके पिता का नाम झवेरभाई पटेल और माता का नाम लाडबाई था। दस बीघा जमीन के भरोसे गुजर बसर करने वाले परिवार मे वीरता की परम्परा का एक सूत्र था। कहते है अपनी युवा अवस्था मे वल्लभभाई के पिता ने सन् 1857 म झासी की रानी लक्ष्मीबाई की सेना मे भर्ती होकर अग्रेजो से लोहा लिया था। जब पिता ने आजादी की पहली लडाई लडी हो तो पुत्र भला आजादी की आखिरी लडाई से कैसे अलग रह सकता था।

वल्लभभाई बचपन से ही स्वाभिमानी, अक्खड और जसे को तैसा जवाब देने की प्रवृत्ति वाले थे। इनकी दृढता के मारे इनके अध्यापक बचपन मे इन्हें महापुरुष कहकर ही सम्बोधित करते थे।

बडोदा की बात है इन्होने स्कूल म सस्कृत विषय छोडकर गुजराती

विषय ले लिया, पर गुजराती शिक्षक, सस्कृत के प्रेमी थे। जब वल्लभभाई उनकी कक्षा मे गए तो इन्होने व्यग्य करते हुए कहा—आइए महापुरुष! आपको यह पता है कि नही कि सस्कृत के बिना गुजराती आती ही नही। हाजिर जवाब वल्लभभाई ने तुरत उत्तर दिया—यदि हम सब सस्कृत विषय ही पढते रहते तो आप फिर किसे पढाते ?

एक छोटी सी घटना आपको और बताऊँ—जिससे कि आप यह जान पायेंगे कि सरदार पटेल शब्दो के सूरमा ही नही थे अपितु—साहसिक हृदय वाले थे।

एक बार वे एक मुकदमे मे बहस कर रहे थे। इन्हें तार मिला कि ऑपरेशन के बाद उनकी पत्नी का देहात हो गया है। यह समाचार पाकर इनके चेहरे पर शिकन तक नही आई और बहस पूरी होने के बाद ही इन्होने लोगो का यह प्रसग बताया।

सरदार पटेल ने विलायत से बैरिस्टरी भी पढी, लेकिन इनके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव गाँधीजी की देश सेवा वाली पढाई का पडा।

सवप्रथम, इन्होने गोधरा के प्रातीय राजनीतिक सम्मेलन में गुजरात की बेगार प्रथा को समाप्त करने हेतु प्रस्ताव रखा। खेडा सत्याग्रह के समय पैंट, कोट, टाई त्याग कर किसानो की पोशाक धोती-कुर्त्ता पहनने लगे। गाँव गाँव घूमकर गुजरात विद्यापीठ के लिये 10 लाख रुपया इकट्ठा किए। नागपुर के झडा सत्याग्रह का नेतृत्व किया। सन् 1927 के बारडोली सत्याग्रह मे अगुवाई की। सन् 1929 मे नमक कानून के विरुद्ध सत्याग्रह मे हिस्सा लिया और जेल गये।

1931 मे काग्रेस के कराची अधिवेशन मे अध्यक्ष बने। 1942 के भारत छोडो आदोलन म भाग लिया तथा 1947 मे पडित नेहरू की अन्तरिम सरकार मे देश के गृहमत्री बने। सरदार पटेल ही भारत के पहले सूचना प्रसारण मत्री थे। सरदार पटेल की प्रशासनिक सूझबूझ के दिनो म ही इडियन सिविल सर्विस (I C S) की जगह भारतीय प्रशासनिक सवा (I A S) बनाई गई।

कोई पौने आठ लाख वग किलोमीटर क्षेत्र मे फैली 8 करोड 65 लाख की जनसख्या वाली 562 देशी रियासतो को भारतीय महासघ मे जोडने की कायवाही स्वतत्र भारत को उनकी ऐसी देन है जिसका कि मूल्याकन हम मात्र शब्दो से नही कर सकते। इसीलिये बहुत स लोग इनकी तुलना जमनी के प्रिंस बिसमार्क से करते हैं।

अब मैं आपको सरदार पटेल के कुछ जीवत परिसवाद बताता हूँ जिसस कि आप वल्लभभाई की सीधी और साफ बयानी को पहचान सकेंगे।

गाँधीजी हमेशा पानी मे नीबू मिलाकर पीते थे। जेल मे एक बार जब नींबू मँहगे मिलने लगे तो बापू ने कहा कि—नीबू के स्थान पर अब 'इमली' इस्तेमाल की जाए ।

सरदार पटेल को बापू का यह नुस्खा पसद नही आया और तपाक से बोले—इमली नुकसान करती है।

बापू ने पूछा—इमली क्या नुकसान करती है ? तो वे बोले—इमली से हड्डियाँ गल जाती हैं।

बापू ने कहा—जमनालाल जी तो इसका बराबर इस्तेमाल करते है लेकिन वल्लभभाई भी कब मानने वाले थे। उत्तर दिया—उनकी हड्डियो तक तो इमली पहुँच ही कहाँ पाती है ?

बारडोली सत्याग्रह की बात है। उन दिनो गाँव गाव म सरदार पटेल का हुकुम चलता था। इन्ही दिनो कुर्की और अन्य अत्याचार करने वाले सरकारी अधिकारियो के आगमन की पूर्व सूचना देने के लिये प्रत्येक गाँव म ढोल नगाडो का प्रबध था। ज्यो ही सरकारी अफसरो के आने की सूचना मे ढोल नगाडे बजते गाँव के पुरुष घर छोड छोडकर गाँव से दूर भाग जाते थे। चारो ओर सुनसान हो जाता था। एक दिन की घटना है। बालोड गाँव मे पुलिस थाने के पास ही सरदार भाषण दे रहे थे। तभी अचानक कुर्क की गई भैंसो ने थाने के भीतर रेंकना शुरू कर दिया। इस पर सरदार ने भाषण मे कहा—अरे भाई अब तो आदमी ही क्या भैंसें भी अग्रेजी राज को कोस रही हैं। सुनाये बिना न रहने वाली आदत सरदार मे कूट-कूट कर भरी थी। मजाल है जो कोई क्षण उनकी नजर से बच जाय। और इस सारी हलचल म वे महात्मा गाँधी का भी नही बख्शते थे।

एक दिन गाँधीजी, सरदार पटेल और श्रीकुमारप्पा तीनो भोजन करने बैठे। गाँधीजी उन दिनो नियमित रूप से नीम की चटनी का सेवन करते थे। खाते खाते गाँधीजी ने सहज स्नहवश एक चम्मच नीम की चटनी श्री कुमारप्पा की थाली मे डाल दी। बगल मे बैठे सरदार पटेल यह सब देख रहे थे। बस क्या था—तुरत ही गम्भीर मुह बनाकर श्रीकुमारप्पा से बोले—आपने देखा, बापू अभी तक तो बकरी का दूध ही पीते थे—पर अब तो वे बकरी का चारा भी खाने लगे हैं।

विनोदी एव साफ आत्मा के पुरुष सरदार पटेल का पार्थिव शरीर 15 दिसम्बर 1950 से हमारे बीच नहीं है, लेकिन गतिमान समन्वय का विचार पुरुष सरदार पटेल के नाम रूप मे सभी राजनैतिक ऊहापोह के परे युग-युग तक स्मरित रह पायेगा—ऐसी मान्यता भारतीय ,नागरिको की ही नही अपितु आजादी के इतिहास की भी है।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

भारत की अन्तश्चेतना इस बात की साक्षी है कि चक्रवर्ती राजगोपालाचारी समय और संदर्भ के बहुत बड़े अध्येता थे। कई नाम और कई काम चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की जीवन यात्रा मे हर बार यही संकेत करते हैं कि वे व्यक्तित्वो की सूयमुखी पीढी के सदस्य थे। राजाजी, सी० आर० तथा भारतीय राजनीति के चाणक्य रूप मे युग परिचित श्री राजगोपालाचारी उन कर्मजीवियों मे थे जो न तो आत्मकथा लिखना चाहते थे और नही लिखवाना चाहते थे। अतिशयोक्ति से परहेज रखने वाले विचारक श्री राजगोपालाचारी का जन्म तमिलनाडु के सलेम जिले के थोरापल्ली नामक गाँव मे दिसम्बर सन् 1878 मे हुआ था। ब्राह्मण परिवार वाले राजाजी के पिता नाला चक्रवर्ती अय्यगार होसूर मे मुंसिफ थे। ये परिवार के तीसरे और सबसे छोटे लडके थे। पाँच वर्ष की उम्र तक तो राजाजी अपने गाँव थोरापल्ली मे ही रहे लेकिन बाद मे वे अपने पिता के पास होसूर मे आकर पढने लिखने लगे।

राजाजी ने सतरह वर्ष की आयु मे बी० ए० पास किया तथा फिर मद्रास म रहकर वकालती पढाई करने लगे। जिस समय राजाजी ने कानून की शिक्षा लेकर वकालत शुरू की थी उस समय उनकी उम्र केवल 21 वर्ष थी।

गाँधीजी से उनका पहला परिचय सन् 1917 मे 'हिन्दू' पत्र के संस्थापक कस्तूरीरंगा अय्यगार के घर पर हुआ था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद वे उन दिनो मद्रास मे ही वकालत करते थे।

राजाजी की वकालत जिन दिनो जोर शोर से चल रही थी उन्ही दिनो सन् 1920 में गाँधीजी के आह्वान पर राजाजी ने अपने को स्वाधीनता आदोलन से जोडते हुए वकालत का पेशा छोड दिया।

उस समय महात्मा गाँधी के ऐलान को लेकर राजाजी के अलावा पंडित मोतीलाल नेहरू, देशबंधु चितरंजनदास, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, वल्लभभाई पटेल आदि ने भी स्वाधीनता संग्राम के समर्थन मे वकालत छोड दी थी।

राजाजी का विचार-तत्व इस भाँति संतुलित रहा है कि उन्हे दोस्त और दुश्मन दोनो ने ही आज के चाणक्य की संज्ञा देकर यत्र तत्र सर्वत्र स्मरण किया

है। आरम्भ मे भले ही कोई राजाजी की बात से असहमत रहा हो लेकिन अन्ततोगत्वा राजाजी की भविष्यवाणी रग लाकर ही रहती थी।

स्वाधीनता सग्राम म राजाजी को कई बार जेल जाना पडा। सन् 1920 स लेकर 1942 तक राजाजी काग्रेस की वरिष्ठ हस्तिया म रहे लेकिन सन् 1942 के भारत छोडो आंदोलन या अगस्त विप्लव के कारण उन्होने काग्रेस से सबध विच्छेद कर लिया। अग्रेजो का सहयोग देने और मुस्लिम लीग के पाकिस्तान सबधी दावे को मान लेने की बात इसके मूल म थी जिससे आज प्राय सभी परिचित हैं।

सन् 1947 मे जब भारत को स्वाधीनता मिली तो राजाजी को दगा ग्रस्त बगाल का राज्यपाल नियुक्त किया गया। सन् 1948 से 1950 तक राजाजी स्वतत्र भारत से प्रथम गवर्नर जनरल रहे। इसके बाद सन् 1951 मे सरदार पटेल की मृत्योपरात राजाजी न स्वराष्ट्र मत्री के रूप में एव सन् 1952 स 54 तक मद्रास के मुख्यमत्री रूप मे कार्य किया।

राजगोपालाचारी मात्र एक राजनैतिक कार्यकर्ता या दूरदर्शी प्रशासक ही नही अपितु विचारक लेखक के रूप मे भी विख्यात रहे हैं। भारतीय लोक वाङ्मय की अध्यात्मकथा जिस सुदरता से राजाजी न लिखी शायद ही किसी राजनेता लेखक ने लिखी हो। उनके प्रकाशन उनके पांडित्य का प्रमाण हैं। तमिल एव अग्रेजी भाषा म उन्होने—सोक्रेटिस' एव रोम सम्राट 'मार्कस अरेलियस' तथा गीता, उपनिषद, रामायण और महाभारत के साथ तमिल सस्कृति पर अपनी कोई 30 से अधिक अमूल्य पुस्तकें लिखीं। उन्होने कुछ समय तक गाधीजी के पत्र यग इडिया' का सपादन भी किया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी देशभक्त वक्ता, समाजसुधारक, दार्शनिक, प्रशासक एव लेखक, राजाजी गाधीजी की अन्तरात्मा के पर्याय एव सैनिक थे भले ही महात्मा गाँधी का बहुत से प्रश्नो पर राजाजी से मतक्य न रहा हो।

एक घटना की याद दिलाऊँ—सन् 1942 से पूव जब मद्रास शहर पर कुछ जापानी बम गिरे तो वहा के अग्रेज गर्नवर डर के मारे शहर छोडकर चले गये। इस अवसर पर राजाजी ने लोगो को यह कहकर मनोबल दिया कि ये हमारा देश है अग्रेजो का नही। अग्रेज यहा से भाग सकते है पर हम यहाँ से नहीं भाग सकते।

राजगोपालाचारी प्रखर विचारो के स्पष्ट चिंतक थे। जीवन पयन्त उन्होने एक साधना की—एक तपस्या की जो अब इस शताब्दी मे, शायद ही किसी अन्य व्यक्ति मे देखी जा सकेगी।

एक समय था जब राजाजी कांग्रेस की प्रबल शक्ति थे लेकिन अपनी सूक्ष्म विवेचना शक्ति एव व्यक्ति स्वतत्रता के सरल समीकरण के कारण वे धीरे धीरे

इस मच से अलग हो गये । राजाजी ने भाषा के आधार पर राज्यनिर्माण का विरोध किया तथा इनकी 80 वर्ष की आयु मे एक दिन ऐसा भी आया जब राजाजी ने सन् 1959 मे स्वतत्रदल की स्थापना करते हुए आज के राज्य को परमिट-कोटा-लाइसेंस राज्य की सज्ञा तक दी ।

देश की छोटी से छोटी घटना पर राजाजी की जागरूकता अविस्मरणीय है । 'स्वराज्य' पत्रिका मे सामयिक गतिविधियो पर राजाजी के नियमित सवाद इस बात की हामी भरते हैं कि 94 वष की अतिम आयु तक भी वे कितने सक्रिय और जुझारू थे । आपको याद होगा राजाजी देश के पहले गवनर जनरल, सेल्स टैक्स के पहले प्रणेता, नशाबदी लागू करने वाले पहले मुख्यमत्री और सन् 1955 मे देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' पाने वाले पहले लोगो मे थे ।

पडित नेहरू के शब्दो मे राजाजी भारतीय मानस के महान प्रतिनिधि और राष्ट्रपति श्री गिरि के शब्दो में भारतीय राजनीति के भीष्म पितामह थे ।

यह बात बहुत कम लोगो को ज्ञात है कि राजाजी की पुत्री लक्ष्मी की शादी महात्मा गांधी के पुत्र देवदास के साथ हुई ।

सफेद खादी पहनने वाले पतले दुबले निता त इकहरे बदन के यत्रचालित प्रभावपुरुष चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के देवलोकवास ने भारत की वैचारिक राजनीति म एक बार फिर प्रभावशाली रिक्तता को रेखाकित किया है । भारत की जागरूक पीढ़ी राजाजी जैसे देश भक्त एव चुनौतीधर्मा व्यक्तित्व को खोकर आज सचमुच ऐसी विचार मुद्रा मे लगती है कि क्या हमारे देश मे आने वाली शताब्दियाँ राजाजी जैसे किसी गतिशील जनप्रतिनिधि को ज म दे सकेंगी ?

सरोजनी नायडू

भारतीय जन इतिहास मे अनगिन हस्ताक्षरो के बीच एक नाम ऐसी स्याही से अकित लगता है जिसे भावना और सकल्प के मत्र से तैयार किया गया था । श्रीमती सरोजनी नायडू इसी अथ मे आज हमारे सामने हैं । यह श्री अघोरनाथ की सबसे बडी लडकी थीं तथा इनकी माता का नाम वरदा सुदरी देवी था । इनका ज म आंध्रप्रदेश के हैदराबाद शहर मे 13 फरवरी

सन् 1879 को हुआ, जिसे इनके परिवार मे अतीव खुशी का दिन माना जाता है। बचपन से ही इन्हे शिक्षा के प्रति विशेष लगाव रहा तथा अग्रेजी की तरफ पिता की इच्छा से विशेष रुचि का प्रारम्भ हुआ। श्रीमती सरोजनी नायडू के पिता तीव्र वैज्ञानिक दृष्टि वाले थे अत इन्हें भी वे एक महान गणितज्ञ और वैज्ञानिक के रूप मे देखना चाहते थे। स्वभाव से श्रीमती नायडू प्रचार और दिखावे के विरुद्ध थी। इन्ह बचपन मे तो अधिक शिक्षा न हो पाई थी पर यह उर्दू और अग्रेजी मे स्वतत्र अध्ययन के माध्यम से बहुत अधिक जानकारी प्राप्त कर चुकी थी। शुरू से ही इन्हे काव्य सृजन का शौक था यही कारण है कि इन्होने सिर्फ तेरह वर्ष की आयु मे 'यात्रा गीत' की रचना भी की। उन्नीस वर्ष की आयु मे इन्होने अपनी शादी डॉ० गोविन्दाराजुलु नायडू से की जो एक अन्तर्जातीय विवाह था। यही विवाह आगे चल कर राजा राममोहन राय के सुधारवादी कार्यक्रम का गौरवशाली कदम बना। इन्होने बाद मे लदन जाकर भी शिक्षा ली, जहा इनका परिचय प्रसिद्ध आलोचक एडमड गोसे से हुआ, इस समय इनकी उम्र कोई सोलह साल थी। इसी समय इन्होने लिखा था—हम जीवन के सूनेपन को—सूने गीतो को गाकर जीत सकते हैं।

बचपन मे ही इनमे समाज सेवा का उत्साह था। काव्य पाठ से यह समारोहो मे धूम मचा देती थी। इन्ही दिनो इनका परिचय श्रीमती रमाबाई रानाडे, सी० वाई० चिन्तामणि से हुआ। यह देखते ही देखते भारतीय महिला जागरण की अग्रणी बन गईं। इस समय देश मे महिलाओ को सभी सामाजिक अधिकार प्राप्त नही थे। इन विपरीत स्थितियो मे इन्होने महिला सत्याग्रह जसे आयोजनो का सफलता से राष्ट्रीय स्वतत्रता प्राप्ति के लिये प्रयोग किया।

इनकी पुस्तक 'द गोल्डन थ्रेशहोल्ड' को सितम्बर 1905 मे लदन के पाठको ने बहुत सराहा तथा उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका—'मैन एड विमन ऑफ इडिया' ने तो श्रीमती सरोजनी नायडू के प्रकाशन को समसामयिक उपलब्धि के रूप मे स्वीकारा। अभी भी श्रीमती सरोजनी नायडू का भारतीय महिलाओं मे सबसे शुद्ध और सबल प्रवक्ता के रूप मे माना जाता है।

इनका राजनैतिक जीवन पूरी तरह भारतीय स्वतत्रता आदोलन का जीवन है। यह उल्लेख की बात रही कि इन्हें दादा भाई नौरोजी, महात्मा गाँधी, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, बालगगाधर तिलक बिपिनचन्द्र पाल, सी० पी० रामास्वामी अय्यर, अरविन्द घोष,डॉ० राजेन्द्रप्रसाद और सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे भारत सपूतो के साथ देश सेवा का अवसर मिला।

इन्होने ब्रह्मसमाज के काय को भी आगे बढ़ाया। यह कहा करती थी उधर आगे बढ़ो जिधर एकता हो। व्यक्तिगत लक्ष्य के लिये व्यक्तिगत दायित्व निधारण करना बहुत आवश्यक है।

राष्ट्रपिता गांधी से इनकी पहली भेंट 1914 म हुई जब वे महात्मा नाम से सबोधित किये जाने लगे थे। आगे चलकर श्रीमती सरोजनी नायडू महात्मा गाँधी की प्रमुखतम सहयोगियो मे गिनी जाने लगी थीं। इसके बाद यह आजीवन राष्ट्र के स्वतन्त्रता सग्राम और नारीजागरण मे जुटी रही। भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू का काव्यमय आदोलनकारी जीवन पूरी तरह भारतीयता से जुड़ा हुआ माना जाता है। महात्मा गाधी को अपना गुरु, नेता और पिता सबोधन देने वाली श्रीमती सरोजनी नायडू का सम्पूण कायरूप परिवर्तन की ऐसी तेज दिशा है जिसे आगे चलकर भारतीय नारी सगठनो ने सिद्धान्तों के रूप मे अपनाया है।

श्रीमती सरोजनी नायडू का देहान्त 2 मार्च 1949 को लखनऊ मे हुआ जबकि यह उत्तर प्रदेश की राज्यपाल थी। भारतीय नारी जागरण के आवतन मे श्रीमती सरोजनी नायडू प्रतिभा की ऐसी यात्रा हैं जिसे स्मरण कर हम प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हैं।

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

उपनिषद मे एक स्थान पर उल्लेख आया है कि 'चाहे कोई कितना ही बड़ा पडित हो पर उसकी चतुराई उसके शिष्यो के कर्तव्य देखकर ही जानी जा सकती है।' दूसरे शब्दो में कहे तो किसी भी युग पुरुष, नेता अथवा नायक के आदश, सिद्धान्त और विचारो की प्रामाणिकता तो, उसके बाद उसके शिष्या के आचरण और व्यवहार से सिद्ध होती है। इस दृष्टि से महात्मा गाँधी के बाद उनके जो सवमान्य उत्तराधिकारी थे, उनमे, राजेन्द्र बाबू प्रमुख थे। पडित नेहरू कहा करते थे—'राजेन्द्र बाबू के अतिरिक्त ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति हैं, जिनके बारे मे यह कहा जाता है कि गाँधीजी के सदेश को उन्होने पूण रूप से अपनाया।'

गाँधीजी तो इनके लिये कहते थे—'राजेन्द्र बाबू ने मुझे प्रेम से ऐसा अपग बना दिया है कि मैं उनके बिना एक कदम भी आगे नहीं रख सकता। मेरे साथ काम करने वालो मे, राजेन्द्र बाबू सबसे अच्छो मे से एक हैं। कम

से कम राजेन्द्र बाबू एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें मैं जहर का प्याला दूं तो वह उसे निस्सकोच पी जायेंगे ।'

विश्वास और आस्था के धनी, देशरत्न राजेन्द्र बाबू का सम्पूर्ण जीवन त्याग और साधना का जीवन रहा । इनका जन्म बिहार राज्य के सारन जिले मे, जीरादेई नामक ग्राम म 3 दिसम्बर 1884 को हुआ था । आपके पिता का नाम महादेव सहाय जी था जो बिहार के हथुवाराज मे महाराज छत्रशाही के दीवान थे ।

छपरा और पटना मे प्रारम्भिक अध्ययन के बाद माच 1902 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्होने मैट्रिक की परीक्षा पास की । यही स फिर बी० ए० और एम० ए० किया तथा मुज्जफरपुर के एक कालेज मे प्राध्यापक हो गये । इसके बाद इन्होने वकालत की परीक्षा पास कर कलकत्ता हाईकोट मे वकालत प्रारम्भ की ।

जब राजेन्द्र बाबू वकालत पढ रहे थे तो सवप्रथम उनकी मुलाकात कलकत्ते मे गोखलेजी से हुई । गोखलेजी ने थोड़े समय पूव ही सर्वेन्टस आफ इडिया सोसाइटी की स्थापना की थी । गोखलेजी के द्वारा इस सोसाइटी मे शामिल हो जाने का आग्रह, और ये कथन 'हो सकता है तुम्हारी वकालत खूब चले बहुत रुपये तुम पैदा कर सको, आराम की जिन्दगी बिताओ लेकिन मुल्क का दावा कुछ लडको पर ही मयस्सर होता है'—सुनकर राजेन्द्र बाबू के दिल मे देश सेवा की भावना ने, गहरा स्थान बनाया ।

आगे चलकर गाधीजी की चम्पारन जिले की यात्रा के दौरान राजेन्द्र बाबू का उनसे परिचय हुआ । यही वो समय था जिसने राजेन्द्र बाबू को मातृभूमि का अनन्य सेवक बना दिया । इसके बाद तो वे कई बार जेल भी गये अनेक यातनायें सही पर अपने कतव्य पथ से कभी विचलित न हुये । स्वभाव से सकोचशील और नम्र होने के कारण इन्हे कई बार असुविधा का सामना भी करना पडता था लेकिन ये सही रूप मे, भारत के प्रतिभा सम्पन्न, राजनैनिक कायकर्ताओ के अनुकरणीय आदश थे । 1920 म बिहार के अग्रेजी पत्र 'सचलाईट और 1920 मे हिन्दी साप्ताहिक 'दश' की स्थापना के बाद वे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रमुखाधार बने । यह वह समय था जब राजेन्द्र बाबू काग्रेस के डिक्टेटर' (सभापति) समझे जाते थे ।

1935 मे क्वेटा में आये भूकम्प के लिये इन्होने जो कुछ काम किया वह अतुलनीय है । 11 दिसम्बर 1946 से 1949 तक वे भारतीय सविधान परिषद के अध्यक्ष रहे और 16 जनवरी 1950 से 13 मई 1952 तक

भारत गणराज्य के अन्तरिम राष्ट्रपति।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद दूसरी बार पुन 13 मई 1957 का राष्ट्रपति पद पर चुने गये। इलाहाबाद मैसूर और सागर विश्व विद्यालय द्वारा 'डाक्टर आफ ला' की उपाधि से सम्मानित, पटना विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि से सम्मानित, एव काशी विश्वविद्यालय की विद्वत् परिषद द्वारा विद्यावाचस्पति की उपाधि प्रदान करने बाद इन्ह दिल्ली विश्वविद्यालय ने डॉक्टर आफ सिविल ला की उपाधि से सम्मानित किया।

13 मई 1962 को इन्होने भारत के राष्ट्रपति पद से अवकाश ग्रहण किया। देश को इस बात का गौरव है कि राष्ट्र के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' के प्राप्तकर्ता आप भी थ।

'सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक राजेन्द्र बाबू से, एक बार उनकी बेढगी और बेपरवाह पोशाक को देखकर पडित मोतीलाल नहरू ने पूछा कि—आप कपडे पहनते ही क्यो है ? इस पर इन्होने तपाक से उत्तर दिया—शरीर ढाँपने और बचाव के लिये। यथार्थ को जीने वाले व्यक्ति कम ही होते हैं। आज ऐसा कौन होगा, जिसे प्रदशन और आडम्बर पसद न हो, पर देशरत्न इसे नकली दाँतो के समान ही मानते थे।

एक बार की घटना है—बिहार के प्रमुख काग्रेसी नेता मौलाना फजुल रहमान जो कि बडे ही उग्र स्वभाव के नेता थे, इनके पास कुछ शिकायत लेकर पहुँचे। राजेन्द्र बाबू उस समय चर्खा कात रहे थे। मौलाना ने वहा पहुँचकर किसी बात की चर्चा किये बिना ही इन्ह अनाप शनाप गालियाँ सुनानी शुरू की। राजेन्द्र बाबू चुपचाप चर्खा कातते रहे और मौलाना, गालिया देते रहे। आखिर जब मौलाना थक गये तब इन्होने कहा—क्या मौलाना साहब, आपकी गालिया क्या खत्म हो गइ ? इस बात का मौलाना पर इतना असर हुआ कि उनकी आँखें भर आइ और दौडकर उन्होने राजेन्द्र बाबू के पाँव पकड लिये।

अहिंसा के ऐसे अनुरागी—राजेन्द्र बाबू के लिये जवाहर लाल जी अवसर कहा करते थे कि 'राजेन्द्र बाबू का अपनी जबान, दिल और कलम तीनो पर काबू है। जबकि मेरा इन तीनो मे से किसी पर भी नही।'

राजेन्द्र बाबू के 12 वर्ष के राष्ट्रपतित्व का समय, अनुकरणीय राजकीय परम्पराओ के सूत्रपात का काल रहा। अपने विदाई भाषण मे उन्होन जब ये शब्द कहे कि, 'मुझसे यदि कुछ त्रुटियाँ हुइ हो तो उनके लिये मैं परमात्मा से और आप सबसे क्षमा चाहता हूँ तो बरबस सभी के दिल भर आये थे।

वकालत के सदर्भ मे आपको गाँधीजी की भावनाओ का स्मरण अवश्य

होगा। ठीक ऐसी ही इच्छा के प्रचारक थे—डॉ० राजेन्द्रप्रसाद! उन दिनो जब ये वकालत करते थे तो एक व्यक्ति इनके पास इस आशय से आया कि वह इन्हे अपना वकील बनाकर मुकदमा जीत जायेगा पर इन्होने तो उसका मानस परिवर्तन ही कर दिया। ये कहने लगे—

मुकदमा लडने से क्या फायदा, आप लोग तो आखिर भाई भाई ही है, और भाई भाई के बीच भला लडाई करने से क्या लाभ? कचहरी जाने से परेशानी के सिवा और क्या मिल सकता है। कचहरी को भूल जाइये, आपस मे मेल से रह, 'घर मे ही झगडा निपटा लें। अब आप ही सोचिये ये बात कितनी सीधी और असाधारण है।

मोटी धोती और कुरते मे अपना जीवन बिताने वाले भारतीय किसान की प्रतिमूर्ति—राजेन्द्र बाबू का स्मरण कर, उनके गुणो के सम्मुख हम स्वत ही नत हो जाते हैं।

स्वभाव से अच्छे वक्ता, दृष्टि से न्यायशील, मस्तिष्क से ज्ञानी और कर्म से बहुधंधी देशरत्न राजेन्द्र बाबू के अतिम दिनो मे उनकी पत्नी राजवंशी देवी का देहान्त गहन दुख लेकर आया। और इस घटना के कुछ माह बाद ही पटना के निकट सदाकत आश्रम में 28 फरवरी 1963 को भारत के इस महान सपूत का देहान्त हो गया। ऐसे सास्कृतिक पुरुष के लिये राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था—

"अर्पित हो मेरा मनुज काय,
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।"

• हकीम अजमल खाँ

यो आपने राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न इतिहास पढे होंगे, देशभक्तो की गीतकथायें सुनी होगी पर आज मैं आपको एक ऐसे महामानव के बारे मे बताने जा रहा हूँ जो सच्चे रूप मे 'भारतीय' थे। जहाँ भारतीयता का ये स्वरूप —धर्मनिरपेक्ष भारत मे सम्मान और राष्ट्रीय एकता के पारस्परिक रूप का परिचायक बना वहाँ इसके माध्यम से साम्प्रदायिक सामजस्य की अनेक ऐतिहासिक स्थितियो पर भी नय सिरे से विचार किया गया। हम ही नही, महात्मा गाँधी भी जिन्हे बहुत बडा मुसलमान और उतना ही बडा हिन्दू मानते थे, जो पक्के प्रजावादी थे, एव गरीबो और धनिको का एक ही दवा से इलाज

करते थे, वह थे हकीम अजमल खाँ, जो इन्सान के भेष मे फरिश्ता समझे जाते थे।

हकीम साहब को दिल्ली का बेताज का बादशाह कहा जाता था, क्योंकि 1918 से स्वतत्रता प्राप्त करने का जो आन्दोलन चला, वह 1947 मे आजादी प्राप्त होने के बाद ही समाप्त हुआ। 1918 से 1927 तक हकीम साहब इन आदोलनो मे प्रमुख नेता रहे। हिन्दुस्तान की आजादी के लिये उस समय जो कुछ भी किया गया, उससे हकीम साहब का सदैव सबध रहा। स्थिति ये थी कि उनके बिना उस समय कोई भी काम नही हो सकता था। ऐसे देवपुरुष का जन्म 1895 मे और देहान्त दिसम्बर 1927 को हुआ था।

हकीम साहब का पूरा नाम मुहम्मद अजमल खाँ था। हकीमी इनका पुश्तैनी काम था। हकीम साहब का दवाखाना सुबह चला करता था। वे एक चौकी पर बैठकर रोगियो को देखा करते थे।

दो घण्टो मे लगभग 200 मरीजो को देखने वाले हकीम साहब चिकित्सा के लिये अपने सभी आवश्यक कार्य तक छोड देते थे।

यही नहीं कि इनके नाम का डका दिल्ली मे ही बजता था, बडे-बडे राजा महाराजा अपने इलाज के लिये हकीम साहब को याद करते थे। इन्हें निर्धनो से विशेष अनुराग रहा, यही कारण था कि इन्हें अनेक बार रईसो का बुरा बनना पडा। कहते हैं एक बार महाराजा ग्वालियर ने अपने सन्देशवाहक के साथ दस हजार रुपये पेशगी नजर भेजकर बुलवाया। महारानी का स्वास्थ्य ठीक नही था। हकीम साहब ने महारानी की बीमारी का हाल पूछकर, रुपये वापिस लौटाते हुए अपनी विवशता प्रकट की और कहा—'महाराजा साहब को मेरा सलाम अर्ज करके कहना कि मैं अवश्य हाजिर होता, पर इस वक्त एक गरीब के बच्चे का इलाज मेरे हाथ मे है और इस बच्चे की जान खतरे मे है—फिर महाराजा साहब को तो बडे बडे डाक्टर देश विदेश से मिल जायेंगे, पर इस गरीब को कोई दूसरा नसीब न हो सकेगा, अत उनसे कहें, कि वे मुझे इस बार माफी दें।'

इस छोटी-सी घटना से हम हकीम साहब की चारित्रिक गरिमा का अदाज लगा सकते हैं। सदव धीरे व प्रेम से बात करने के आदी हकीम साहब दिल के बादशाह थे। रोगी की आधी बीमारी तो उनसे मिलकर ही दूर हो जाती थी। सभी को 'आप' कहकर सम्बोधित करने वाले हकीम साहब बडे से बडे अपराध भी धीरे से मुस्कराकर कह दिया करते थे—'बडे बेवकूफ हो तुम !'

हकीम अजमल खाँ का राजनीतिक जीवन 1918 के बाद से ही प्रारम्भ होता है। इसी समय वे दिल्ली मे हुए काग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गये। महात्मा गांधी और हकीम साहब का परिचय 1919 मे

रोलेट एक्ट के विरुद्ध गांधीजी द्वारा किये गये सत्याग्रह के समय गहरा हुआ। यही कारण था कि गांधीजी इन्हें साम्प्रदायिक मामलो मे अपना सलाहकार मानते थे।

हकीम साहब का राजनैतिक जीवन केवल 9 वर्ष का ही रहा, लेकिन इन्होंने इतने कम समय मे ही सबके दिल जीत लिये थे। हकीमजी का सामाजिक जीवन केवल राजनीति या हकीमी तक ही सीमित न था, अपितु वे साहित्य के भी प्रेमी थे। उन्होने स्वदेशी भावना के माध्यम से समाज मे आर्थिक सम्पन्नता लाने का प्रयास किया। हिन्दुस्तानी दवाखाना और तिब्बिया कालेज आज हकीम साहब की सबसे बडी यादगारो मे हैं।

कहते हैं इन्ह जब कभी भी एक दो दोस्तो से कोई गुप्त सलाह करनी होती थी, तो य उन्हे खाने पर या चाय पर बुलाया करते थे। गांधीजी ने इनके सम्बन्ध मे लिखा है—'उनकी निर्णय शक्ति गभीरता और मनुष्य प्रकृति का ज्ञान ऐसा था कि वे बहुत सही फैसला किया करते थे। उनके यहाँ हजारो मुसलमान आते थे और हजारो गरीब हिन्दू भी आते थे। जहाँ तक मैं हकीम साहब को पहिचानता था—वह तो बादशाह जैसे थे। उन्हें रुपये की नहीं पडी थी, लेकिन सबकी खिदमत करना उनका पेशा था।'

सुभाषचन्द्र बोस

नेताजी के जीवन से जो सबसे बडी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनकी अपने अनुयायियो म ऐक्यभावना की प्रेरणा विधि, जिसमे कि वे सब साम्प्रदायिक तथा प्रातीय बधनो से मुक्त रह सके और एक समान उद्देश्य के लिये अपना रक्त बहा सके। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्सदेह इतिहास के पन्नो मे अमर रखेगी।

नेताजी एक महान गुणवान पुरुष थे। वे प्रत्युत्पन्नमति और प्रतिभा सम्पन्न थे। इन्होने आई० सी० एस० की परीक्षा पास की, किन्तु नौकरी नहीं की। वे मानते थे कि ब्रिटिश सरकार की नौकरी और देश भक्ति दोनो एक साथ नही चल सकती। 'जयहिन्द' के मन्त्रदाता—सुभाषचन्द्र बोस के पिता का नाम जानकीनाथ बोस और माता का नाम प्रभावती बोस था। इनके पूर्वज बगाल प्रात के चौबीस परगना जिले मे केदालिया नामक गाँव के निवासी थे, पर इनके पिता उडीसा की नगरी कटक में बस गये थे। उन दिनो उडीसा,

बगाल का ही अग था। इनके पाँच बहिनें और 6 भाई थे।

ऐसे भरे पूरे परिवार म—सुभाष बाबू ने बी० ए० की परीक्षा पास की, पर इनका मन सदैव राष्ट्र सेवा की धुन मे ही लगा रहता था। जलियाँवाला बाग के गोली काण्ड ने उनके हृदय मे उथल पुथल मचा दी थी। इगलैण्ड के युवराज के भारत आगमन के कडे विरोध प्रदशन मे इ्ह 6 मास की कैद की सजा दी गई।

देश मे स्वराज्य की माँग धीरे धीरे बढती जा रही थी। जेल के नारकीय बधन से मुक्त होते ही वे स्विटजरलैण्ड, फ्रास, आयरलैण्ड आदि देशो मे गये। इटली के अधिनायक मुसोलिनी से मिले और उ्हें भारत की सच्ची स्थिति से परिचित कराया।

सन् 1938 मे सुभाष बाबू काँग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए, पर सस्था के आ्तरिक मतभेद के कारण इ्होने काग्रेस की अध्यक्षता से त्याग पत्र दे दिया और बगाल के युवको का सगठन बनाकर अग्रेजो को उखाडने के काय मे जुट गये। सुभाष बाबू ये मानते थे कि अग्रेजो को हटाने के लिये सशस्त्र क्रा्ति आवश्यक है। 15 जनवरी 1941 का रात के समय, वे चुपचाप जल से भाग निकले और पुलिस की नजरो से बचते निकलते, काबुल पहुँचे और वहाँ से फिर बर्लिन गये। अग्रेज विरोधी बर्लिन मे इनका शानदार स्वागत हुआ।

बर्लिन और रोम से इ्होने अपने देशवासिया के नाम रेडियो स्देश प्रसारित किये और यहाँ की सरकारा से सहायता का आश्वासन भी प्राप्त किया। बर्लिन से जापान जाकर इ्होने 'आजाद हि्द फौज' की घोषणा की और तभी से लोग इ्ह 'नेताजी' के नये नाम से जानने लगे।

यहाँ प्रवासी भारतीयो ने नेताजी को सकल्प सिद्धि हेतु तन मन और धन से अपूव सहयोग दिया। 'दिल्ली चलो' के प्रचण्ड स्वर की हुँकार लगी। सभी ओर नेताजी का ये उद्बोधन सुनाई देता था—तुम मुझे खून दो, मैं तुम्ह आजादी दूँगा।

गीता के 'योग कमसु कौशलम्' म विश्वास रखने वाले, रामकृष्ण परमह्स और विवेकानद के धम दशन से प्रभावित सुभाष बाबू भारतीय महिलाओ के लिय कहा करते थे—हमारा अतीत उज्ज्वल रहा है, क्या भारत झाँसी की रानी जसी वीरागनाओ को ज म नही दे सकता, जिसने साहस की अभिनव परम्परा को निभाया। मैत्रेयी, महाराष्ट्र की अहिल्याबाई, बगाल की रानी भवानी, रजिया बेगम और नूरजहाँ का प्रशासनिक विगत, अभी भी हमारे सामने है। मुझे अब भी विश्वास है कि भारत की गौरव भूमि फिर ऐसी ललनाओ से पुष्पित होगी।

त्याग और बलिदान से कभी कोई छोटा नही होता, बल्कि जितना देता है उससे कही अधिक सभी के लिये पाता भी है। मातृभूमि की सेवा कोई लाभ-हानि का व्यापार नही होता। यदि आप अपन प्राण देंगे तो सारा देश जीवित रह सकेगा, अत आज मैं प्राण दूँगा तो कल भारत रह सकेगा, वह आजादी और उत्कर्प के लिय जूझ सकेगा।

महात्मा गाँधी ने एक बार अपने प्राथना प्रवचन मे कहा था—नेताजा का सबसे महान और स्थिर रहने वाला काय था—सब प्रकार के जातीय और वगभेद का उन्मूलन। वह केवल बगाली ही नही थे, आमूल चूल भारतीय थे। सुभाप बाबू बडे देश प्रेमी थे। उन्होने देश के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी थी और वह करके भी बता दिया। वह सेनापति बने। उनकी फौज मे हिन्दू मुसमलान, पारसी, सिक्ख सब थे। उनमे न प्रातीयता थी, न रग भेद न जाति भेद।

अत मेरे पास तो गुण की कीमत है—तुलसीदासजी ने कहा है न—

"जड चेतन गुन दोपमय, विश्व कीन्ह करतार।
सत हस गुन गहहि पय, परिहरि बारि विकार॥"

डॉ० जाकिर हुसैन

मेरी दृष्टि से डा० जाकिर हुसैन का परिचय भारतीय गणराज्य की लोक मर्यादा का पर्याय है। देश इन्हे भारत के तीसरे राष्ट्रपति के रूप मे ही नही अपितु महान शिक्षा शास्त्री के रूप मे जानता है। सच्चाई एव शराफत से व्यक्ति और राष्ट्र की सवा इनके जीवन का पहला उसूल था। डॉ० जाकिर हुसैन का जन्म आठ फरवरी 1897 म आध्रप्रदेश के हैदराबाद शहर म हुआ था। इनके पिता वकील थे तथा मूलत उत्तरप्रदेश मे फरूखाबाद जिले के कायम गज नगर के रहने वाले थे।

डा० जाकिर हुसैन की शिक्षा इटावा के इस्लामिया हाई स्कूल और अली गढ विश्वविद्यालय म हुई। अलीगढ से एम० ए० पास करने के बाद इन्होने जमनी के बर्लिन विश्वविद्यालय से साहित्य और दशन के क्षेत्र मे डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। अट्ठाईस वप की उम्र मे ही डॉ० जाकिर

हुसन को बर्लिन से लौटने पर दिल्ली की शिक्षण सस्था जामिया मिलिया का उपकुलपति बनाया गया। इतनी कम उम्र मे शिक्षा के सर्वोच्च पद पर काय करने वाले यह शायद पहले और अतिम भारतीय रहे।

डॉ० जाकिर हुसैन का अधिकाश जीवन शिक्षा शास्त्री के रूप मे ही बीता। देश के स्वतत्रता सग्राम मे इन्होने राजनैतिक अभियान की अगुवाई न कर शिक्षा के माध्यम से जन चेतना के विकास का ठोस काय किया। 1938 मे गाँधीजी की प्रेरणा से तालीम की नई योजना बनाई थी, जो आज बुनियादी तालीम के रूप मे जानी जाती है। पडित नेहरू डा० जाकिर हुसैन को देश की इज्जत कहा करते थे। ये सच्चे अर्थों मे राष्ट्रवादी मुसल मान थे जो सकीण भेद-विभेदो से अलग हटकर सदैव मानव उत्थान की सक्रिय साधना मे रत रहे। 1926 से 1948 तक जामिया मिलिया के उपकुलपति रहने के बाद 1948 से सन् 1956 तक ये अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। इसके बाद ये यूनेस्को की काय समिति और राज्यसभा के सदस्य थे जहाँ कि इन्ह 1957 मे बिहार का राज्यपाल नियुक्त किया गया। सन् 1962 मे ये भारत के उपराष्ट्रपति और 1967 म राष्ट्रपति चुने गये। डॉ० जाकिर हुसैन राष्ट्र के पहले अल्पसख्यक मुसल मान राष्ट्रपति थे, जिसे कि विश्व, धमनिरपेक्ष भारतीय लोकराज्य के सिद्धान्तो की सबसे बडी विजय के रूप मे स्वीकारता है। कलकत्ता, दिल्ली, अलीगढ, इलाहाबाद और सयुक्त अरब गणराज्य के काहिरा विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की सम्मानित उपाधि से विभूषित डॉ० जाकिर हुसन को 1954 मे पद्मविभूषण तथा सन् 1963 मे राष्ट्र के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से अलकृत किया गया।

मुख्य रूप से डॉ० जाकिर हुसैन को बागवानी एव सुदर कलाकृतिया के सग्रह का शौक था। राष्ट्रपति भवन के मुगल उद्यान मे गुलाब की कोई 300 तरह की किस्मे और निजी सग्रहालय की अनगिनत कृतियाँ आज इस बात का सबूत है।

डॉ० जाकिर हुसैन का जीवन सादगी और सलीके की बेजोड मिसाल था। वाकिया है—डाक्टर हुसैन के घर मे एक नौकर को देर से जागने की आदत थी। सारा घर नौकर की इस आदत से परेशान था, पर नौकर पुराना जो ठहरा, कोई कुछ कहे भी तो कैसे। अन्त मे जाकिर साहब ने उसे सुधारने का बीडा उठाया। दूसरे दिन जब नौकर की आँख खुली तो उसने देखा कि उसके सिरहाने जाकिर साहब मुँह धोने के लिये पानी, साबुन तथा तौलिया लिये खडे हैं और कह रहे हैं—लीजिये हुजूर! मुह धो लीजिये, नाश्ता अभी हाजिर करता हूँ। इतना कहकर आप दौडकर उसके लिये चाय ले आये,

लीजिये अब चाय पीजिये। नौकर शर्म से पानी-पानी हो गया, उसकी आँखो से आँसू बहने लगे और उस दिन से वह सिर्फ खुद ही जल्दी नही उठने लगा अपितु दूसरो को भी सबेरे उठाने मे तत्पर रहने लगा।

एक और वाकिया है—उन दिनो जाकिर साहब अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। एक दिन माली ने आकर कहा—हुजूर! बाग के लॉन में बेर का एक सूखा पेड़ है, जो भद्दा लगता है। हुकुम हो तो इसे कटवा दू? उन्होने माली से पूछा, भाई क्या पेड़ को खूबसूरत नही बनाया जा सकता। फिर जाकिर साहब ने उसे बताया कि बेर के पेड़ के चारों तरफ फूलो की बेल लगाओ जिससे पेड़ की बदसूरती छिप जाय। बहुत सी अच्छाइयां हो तो थोडा सा ऐब भी छिप जाता है।

शिक्षा को राजनीति से पहले माननेवाले, डा० जाकिर हुसैन राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर रहते हुए महान गुणो की प्रतिमूर्ति थे। अपने आराम की परवाह न कर दूसरों की सेवा की कोशिश के तो अनेक संस्मरण आज उन लोगो के साथ हैं जो जाकिर साहब से कभी किसी भी रूप मे मिल चुके हैं। 3 मई सन् 1969 को उनका आकस्मिक निधन, भारत की एक ऐसी क्षति थी जो निश्चय ही पूरी नही हो पायेगी। नई और पुरानी, दोनो पीढ़ी के इस प्यारे नेता का आदर्श चरित्र सदियो तक इतिहास के गौरव मूल्यो को प्रतिपादित करता रहेगा।

डा० जाकिर हुसैन के शब्दो मे—देश के इतिहास मे पहली बार करोडो व्यक्तियो के हाथ मे राष्ट्र का जीवन है, किसी एक के हाथ मे नही। अत उन करोडो व्यक्तियो को ऊँचा उठाने से राष्ट्र ऊँचा उठेगा। इसके लिये भावी नागरिको को अच्छी से अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

भारत को नमूने का देश बनाने के लिये हर नागरिक को यह महसूस करना पडेगा कि यह उसका देश है और अपने देश को हर तरह से अच्छा बनाना उसका कर्तव्य है। परन्तु यह काम केवल बातें करने से नही होगा, बल्कि इसके लिए मिलजुल कर काम करना होगा। क्योकि एक व्यक्ति छप्पर नही उठा सकता और राष्ट्र का छप्पर उठाने के लिये हम सबको मिलजुल कर हाथ *बँटाना है। मशहूर शायर आनन्द नारायण मुल्ला के शब्दो मे* डा० जाकिर हुसैन—

> एक कली आई थी खुशबू लिये कुछ दम के लिये
> वो गई फिर वही काँटों की है महफिल साकी।
> दफन हो जाय न खुशबू भी कहीं फूल के साथ
> यही खुशबू तो है इस बज्म का हासिल साकी॥

हरिभाऊ उपाध्याय

राजस्थान मे गांधीवादी विचार चेतना के सबसे बड़े कहानीकार तथा राजनीतिक पाठक, एक ऐसे व्यक्ति थे जो मूलत राजस्थानी न होकर भी समूलत राजस्थान की स्वतन्त्रता के सेनानी थे। आज इनके सिर्फ दो नाम हमारे बीच मे जाने जाते है तथा जाने जाते रहगे। एक श्री हरिभाऊ उपाध्याय और दूसरा 'दा' साहब।

हरिभाऊजी उपाध्याय साहित्यकार थे, सर्वोदयवादी थे, या राजस्थान के वित्त मन्त्री आदि थे यह बात तो आज सभी जानते हैं—लेकिन बहुत कम लोग हैं जो यह जानते हैं कि वे एक समन्वयवादी जीवनदानी चिंतक थे। जन्म से मृत्यु तक उनकी यात्रा के केन्द्र आज इस बात के साक्षी हैं कि वे अपने कृपकाय शरीर के भीतर असख्य शक्ति का शखनाद छिपाकर चलते थे। मैं उनके जीवन इतिवृत्त को जब उन्ही के सस्मरण से देखता हूँ तो लगता है कि उनके जीवन मे साहस के चन्द अवसरो को भुलाया नही जा सकता। सन् 1911 मे पिताजी से हठ करके मालवा से काशी की पढाई हेतु जाना, काशी मे ही अपनी जातीय पत्रिका औदुम्बर का प्रकाशन करना, दसवी कक्षा पास करने के बाद सन् 1916 म सरस्वती मासिक के लोकमान्य सपादक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के पास कानपुर जाना, फिर 'सरस्वती' से त्यागपत्र देकर इन्दौर के स्कूल मे अध्यापकी करना यहाँ से फिर प्रताप तथा प्रभा नामक पत्रो मे जाना, यहाँ के बाद महात्मा गांधी के पास जाकर हिन्दी नवजीवन प्रकाशित करना, इसी बीच सन् 1930 मे प्रातीय काग्रेस कमेटी का कायभार सम्हालना, सन् 1930 से 1942 तक जेल मे रहना, तत्पश्चात सन् 1945 म हटूडी के गांधी आश्रम मे महिला शिक्षा सदन की स्थापना करना, सन् 1952 मे तत्कालीन अजमेर मारवाडा राज्य के प्रथम मुख्यमत्री पद पर रहना, सन् 1956 मे राजस्थान मन्त्रिमण्डल मे शामिल होना तथा फिर सन् 1964 मे मन्त्रीपद से इस्तीफे की घटनाएँ, हरिभाऊजी के ऐसे ही अविस्मरणीय प्रसग हैं।

हरिभाऊजी का जन्म 9 मार्च सन् 1892 मे तत्कालीन ग्वालियर राज्य के भौंरासा गाँव मे हुआ था। इनकी माता का नाम जानकी देवी तथा पिता का नाम पण्डित सिद्धनाथजी उपाध्याय था। इनके बचपन की दो बातें हम यहाँ देखें तो ज्ञात होगा कि ये दो निर्णय ही उनके भावी जीवन को साथक

बनाने मे सहायक सिद्ध हुए। इनके अनुसार दो बातें सदैव याद रखो। दो बातें सदैव भुला देनी चाहिये। पहली—अपने द्वारा दूसरा पर किया अहसान तथा दूसरी—दूसरो द्वारा अपने पर किया गया अपकार। सामाजिक जीवन मे हरिभाऊजी की सक्रियता इतनी अधिक रही है कि उन्हे सस्था, व्यक्ति या किसी भी आन्दोलन से अलग नही देखा जा सकता। 'हिन्दी नवजीवन' के सपादककाल से ही गाधीजी ने इनके उपयोगी स्वरूप को पहचान लिया था तथा जमनालाल जी बजाज के सुझाव पर राजस्थान भेजा था। यह वह समय था जब राजस्थान मे सभी तरफ सामती राग रग अपन उफान पर थे। उपाध्यायजी ने आरम्भ मे कठिनाइया उठाईं, जेल गये, मगर बापू के सकेतो को अपनी कर्मधारा से अलग नही होने दिया।

हरिभाऊजी के पूरे जीवन को लोग प्राय दो—राजनीति एव साहित्य के भागो मे विभिक्त मानते है। एक बार जब किसी पत्रकार ने उनसे पूछा कि आपका जीवन साहित्य प्रधान है, या राजनीति प्रधान। तो उन्होने उत्तर दिया—मुझे अपना जीवन साहित्य प्रधान मालूम नही होता हालाकि दूसरे मित्र यह मानते हैं कि मुझमे साहित्यिक योग्यता अधिक है। राजनीति का अथ यदि उखाड पछाड और झूठ कपट से है तो मैं उसके योग्य नही हूँ। मैं उससे घणा करता हूँ।

साहित्य मे हरिभाऊजी ने कुछ नये इरादे कायम किये थे। अपन जीवन काल मे दस पत्र-पत्रिकाओ का सपादन, 3 जीवनियाँ, 5 यात्रा सस्मरण, 3 निबन्धसग्रह, 1 उपन्यास, 1 कविता सग्रह तथा 8 अध्यात्म एव विचार प्रधान पुस्तको का लेखन करने के साथ ही उन्होने गुजराती, मराठी, सस्कृत तथा अग्रेजी भाषा से कोई 14 पुस्तको का अनुवाद कार्य भी किया।

हरिभाऊजी भावुक कवि भी थे। अपने जीवन की साथकता को उन्हाने इस प्रकार सम्बोधित किया था।

चाह नही इतिहासो की,
स्याही म नाम निशान रहे।
चाह नही जग के गीतो मे,
मेरा गौरव मान रहे॥
चाह यही है मेरे मुख में,
तेरा मगल नाम रहे।
दुखियो के दुख की ज्वाला,
मे बस मेरा विश्राम रहे।

समाजसेवा एव साहित्य सेवा की भाँति ही हरिभाऊजी ने स्वतन्त्रता

संग्राम के सेनानी की भूमिका भी भली भांति निभाई। नमक सत्याग्रह, बिजो-
लिया प्रकरण तथा भारत छोड़ो आन्दोलन इस बात के गवाह हैं कि हरिभाऊ
जी धुन के धनी थे। हालांकि उनकी शारीरिक बनावट इतनी सबल नहीं थी,
फिर भी वे अत्यधिक संकल्प सम्पन्न स्थिति द्रष्टा थे।

भारतीय संविधान के हिन्दी अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय को जहां सन्
1964 में राजस्थान साहित्य अकादमी ने 'मनीषी' की उपाधि से सम्मानित
किया था वहीं भारत सरकार ने सन् 1966 में पद्मभूषण के राष्ट्रीय सम्मान
से अलंकृत किया था।

लालबहादुर शास्त्री

नानक नन्हे ह्वै रहो, जैसे नन्ही दूब।
और रूख सूख जायेंगे, दूब खूब की खूब॥

गांव के नन्हें और राष्ट्र के लालबहादुर शास्त्री का नाम स्मरण आते
ही, हमारी आंखों के सामने एक ऐसे कर्मयोगी का चित्र उभर कर
आता है, जो छोटी काया का विराट मानव था, जिसका सादा जीवन उच्च
विचारों का प्रतीक था, और जो मुंह में चांदी का चम्मच लेकर पैदा नहीं
हुआ, पर जिसका नाम नवभारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

कहते हैं—सोना ज्यों ज्यों आग में तपता है, उसमें निखार आता जाता
है, शास्त्रीजी भी इसी बात के लिये आज बूढ़े और बच्चों के प्रिय नेता बन
हुए हैं। जिनका जीवन तीन बातों का जीवन था -

मैं विचार कर सकता हूँ, मैं भूखा रह सकता हूँ और मैं प्रतीक्षा कर
सकता हूँ।

'जय जवान जय किसान' के प्रणेता शास्त्रीजी का जन्म 2 अक्टूबर
1904 को मुगलसराय (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता का नाम
शारदाप्रसाद जी तथा माता का नाम रामदुलारी देवी था। पिता का साया
बचपन में ही सर से उठ जाने के कारण इनमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन
की भावना जागी, फिर बचपन में, नाव का किराया न होने के कारण, गंगा
पार कर घर लौटने की साहसिक घटना से तो सभी परिचित ही हैं।

काशी विद्यापीठ की शास्त्री परीक्षा पास कर, ये लालबहादुर वर्मा से

लालबहादुर शास्त्री बने। सोलह वर्ष की आयु में गाँधीजी के आह्वान पर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े और अनेक बार जेल गये व भूख सही। अपने बच्चों के लिये जो दूध के पैसे नहीं जुटा पाता था, भला वह भारत का प्रधानमंत्री भी बन सकेगा, इसकी उम्मीद भी किसे थी।

कठोर यातना का जीवन बिताने के बाद प्रयाग नगर पालिका के सदस्य बने, उत्तर प्रदेश के पुलिस एवं यातायात मंत्री बने। 18 से 20 घंटे रोज काम करने के आदी, शास्त्रीजी नेहरू जी के मंत्रि मंडल में रेल मंत्री और गृह मंत्री भी रहे। रेल दुर्घटनाओं को लेकर दिया गया उनका त्यागपत्र, निश्चय ही उनके जीवन की वह आदर्शतम घटना है जिसके द्वारा कर्तव्य के प्रति उनकी आस्था का प्रमाण मिलता है।

नेहरू जी के उत्तराधिकारी—लालबहादुर जी ने पहली बार देश को रचनात्मक शक्ति देने का प्रयास किया था, इसका एक मात्र मुख्य कारण ये था कि वे ग्रामवासी भारत के दिल की धड़कनें पहिचानते थे।

वाणी से निश्चल और मृदु, भावनाओं से कोमल, काम से सर्वप्रिय और व्यवहार से उच्चाशय वाले शास्त्री का जीवन अनहोनी घटनाओं का ऐसा *समूह है जो सही रूप में जन जागरण को नई दिशा दे सकता है।*

1965 में हुए भारत पाक संघर्ष के दिन शास्त्रीजी के जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक दिन रहे। राष्ट्र की वाणी को ओज और विश्वास देना सहज नहीं होता पर शास्त्री जी ने सपने को साकार बनाने के लिये ही कहा था—'हम रहें न रहें लेकिन यह झण्डा रहना चाहिये और मुझे विश्वास है यह झण्डा रहेगा। हम और आप रहें या न रहें, लेकिन भारत का सिर ऊँचा होगा। भारत दुनिया के देशों में एक बड़ा देश होगा, और शायद भारत दुनिया को कुछ दे भी सके।'

शास्त्री का निजी जीवन-क्या था, कैसा था—इसके संबंध में उनके एक सहपाठी (त्रिभुवन नारायण सिंह) का कहना है कि—'वे अपने जूतों को खुद ही गाँठ लेते थे और अपने कपड़े भी स्वयं ही सी लिया करते थे। वे भारी वाग्मी नहीं थे लेकिन वे भली भाँति जानते थे कि उनके मस्तिष्क में क्या है।'

दैनिक व्यवहार में पाँच बातों का वे अवसर ध्यान रखते थे कि क्या बोलना है, किससे बोलना है, कैसे, कब और कहाँ बोलना है। उन्होंने कभी अपनी मान्यताओं या इच्छाओं को कि किसी पर जबरन लादना नहीं चाहा। *हँसी मजाक के लिये शौकीन और स्वभाव से संकोचशील शास्त्रीजी के जीवन* की घटना है—जब वे उत्तर प्रदेश के गृह मंत्री थे। एक बार वे अपने गुरु निष्कामेश्वरजी के घर गये, तो उनकी पत्नी ने कहा—'बहादुर, तू इतना

बडा हो गया है और खाली हाथ चला आता है, देख अलगू जब भी आता है, बच्चो के लिये मिठाई लेकर आता है।'

तो शास्त्रीजी ने सरल भाव से कहा—'भाभीजी, मुझे कोई नया काम करने मे बडा सकोच लगता है। मैं बडा नही हुआ हूँ केवल बडा काम मुझे करना पडता है।'

विश्वास के धनी शास्त्रीजी की विश्व शांति को—'ताशकद समझौता' ऐसी देन है, जिससे आनेवाली सततियाँ सबक सीखेंगी। ताशकद समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद उन्होने कहा था—अब तक हम जिस एकता से राष्ट्र रक्षा के लिये लडे, उसी भावना और ऐक्य से हमे अब विश्व शान्ति के लिये काय करना है।'

11 जनवरी को अचानक ताशकद (सोवियत सघ) म इस शांति वीर का, हृदयगति रुक जाने के कारण देहान्त, उन दो सीमाओ को फिर एक स्थान पर जोड देता हैं—जहाँ से मानवता को सदैव नई आशा का सकेत मिलता रहेगा।

मरणोपरांत 'भारत रत्न' के सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान से उनको विभूषित किया गया। शास्त्रीजी के सबध मे एक बार नेहरू जी ने कहा था—

'उच्चतम व्यक्तित्व वाले, निरंतर सजग और कठोर श्रमशील व्यक्ति का नाम है—लालबहादुर शास्त्री।'

> वह अशोक की आत्मा, रण का विजयी योद्धा,
> शांति चक्र का धर्म प्रवतक, शान्ति पुरोधा,
> उठा धरा से, पहुँच शिखर आकाश बन गया,
> धरा देखती रही, पुत्र इतिहास बन गया।

चन्द्रशेखर आजाद

1857 के स्वाधीनता सग्राम को भला कौन नही जानता। महारानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे, मुहम्मद बख्तखाँ, कुंवरसिंह, अहमदशाह और नाना साहब पेशवा के नाम आज भी हमे प्रेरणा की नई विचारभूमि देते हैं। कथाओ के इस क्रम म क्रांतिवीर चन्द्रशेखर आजाद का नाम भी कुछ ऐसा ही है।

चन्द्रशेखर आजाद का जन्म 1905 मे बगाल की अलीपुर स्टेट के एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था । इस परिवार मे एक एक कर कई बालक जन्मे और चल बसे । बडी मनौतियो के बाद इस परिवार मे चन्द्रशेखर ही जीवित रहे । बचपन मे चन्द्रशेखर आजाद बहुत पतले-दुबले शरीर के थे । उनके लिये कोई कल्पना नही कर पाता था कि यह आगे चलकर राष्ट्र के स्वतत्रता सग्राम मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे । इनकी माता का नाम जगरानी देवी और पिता का नाम सीताराम तिवारी था ।

इस समय इनके गाँव मे एक परम्परा के अनुसार बच्चो मे वीरता की आदत डालने के लिये उन्हें बाघ का मास खिलाया जाता था । ब्राह्मण परिवार मे होकर भी चन्द्रशेखर आजाद को बाघ का मास खिलाया गया और वीरता स्थापन का यह रिवाज इनके जीवन मे भली भाँति उतरा । बचपन से ही चन्द्रशेखर आजाद ने अच्छी शिक्षा दीक्षा और गौरवपूर्ण काय करने की लगन को महत्व दिया । आगे चलकर वह स्वय काशी मे पढने के लिये आ गये । उन दिनो मे काशी मे पढने लिखने हेतु राजा महाराजाओ या धनी पुरुषो की तरफ से सहायता का प्रावधान था । काशी जाते ही चन्द्रशेखर का भी पूरा-पूरा खाने पीने का, कपडे-लत्ते का और दूसरी वस्तुओ का प्रबध हो गया । वह दूसरे विद्यार्थियो के साथ साथ अष्टाध्यायी, निघण्टु और दूसरे शिक्षा ग्रन्थ पढने लगे ।

1921 की बात है देश मे विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का आदोलन था । स्थान स्थान पर विदेशी वस्तुओ की होली जलाई जा रही थी । इसी वातावरण मे चन्द्रशेखर आजाद को राष्ट्रीय कार्य मे भाग लेने का शौक लगा । पुलिस से मुठभेड और आँख मिचौनी उनके लिये देखत ही देखते साधारण बात हो गई । जेल और जुलूस दोनो ही अब इन्हे चिरपरिचित से लगने लगे ।

एक बार इन्हे अग्रेज सरकार ने सिपाही को ककड मारने के अपराध मे गिरफ्तार किया । सर्दियो के दिन थे । पुलिस वालो ने इन्हें हवालात मे ओढने बिछाने को भी कुछ न दिया । उन्होने सोचा कि नया नया लडका है, रात को सर्दी से घबराकर सुबह अपनी भूल पर क्षमा माँग लेगा । जब प्रात सिपाहियो ने उठकर हवालात मे देखा तो पाया कि सर्दी मे ठिठुरने की जगह युवक दड पेल रहा है और उसके शरीर से पसीना बह रहा है । अपराध न स्वीकारने पर इन्हें अदालत में पेश किया गया । न्यायाधीश ने इनसे पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ? युवक बोला—आजाद । पिता का नाम क्या है ? इस पर युवक चन्द्रशेखर अकडकर बोला—स्वतत्र । तीसरी बार न्यायाधीश ने पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है ? युवक निर्भय होकर बोला—

जेलखाना। अब तो यायाधीश भी दग रह गये। आखिर इन्हें कँपकँपा दने वाली पद्रह बेंतो की सजा दी गई, पर च द्रशेखर आजाद अपने कतव्य पथ से विचलित न हुए। अग्रेज सरकार के विरुद्ध एव स्वदेश के हित मे चन्द्र शेखर आजाद की कायवाहियाँ धीरे धीरे तेज होने लगी। विरोध, जेल, सजा और सकल्प के दिन आगे बढने लगे। तभी कानपुर मे इनकी भेंट सरदार भगतसिह से हुई। इन्होने मिलकर एक नये दल का सगठन किया जिसके कि नेता चन्द्रशेखर आजाद बने। इसके बाद पजाब केसरी लाला लाजपतराय पर पुलिस के प्रहारो को लेकर इन सबने उसके बदले की प्रतिज्ञा ली। पुलिस ऑफिसर सैण्डर्स की हत्या कर दी गई। देश मे एक फिजा थी। सबके लब पर यही तराना था—'घुट घुट के मर जाऊँ यह मरजी मेरे सैयाद की है।

चन्द्रशेखर आजाद के जीवन की एक घटना है। एक बार 'आजाद' के साथी ने उन्हे बताया कि एक घर बडा धनवान है। वहाँ बडी आसानी स डाका डाला जा सकता है। उस पर डाका डालने से भरपूर धन मिलने की आशा है। आजाद अपने साथियो को एकत्रकर वही डाला डालने गए तो आजाद ने देखा कि इनका साथी घर की देवी से छेडछाड कर रहा है। आजाद किसी भी मूल्य पर चरित्रहीन पुरुष को क्षमा नही करते थे। इन्हान उसी क्षण पिस्तौल से अपने साथी को भून दिया और उस देवी से क्षमा माँग कर खाली हाथ लौट आए। आजाद कहा करते—चरित्रहीन लोगो का राष्ट्रीय उत्थान मे कोई स्थान नहीं हो सकता।

27 फरवरी 1931 का दिन था। पुलिस इनका पीछा कर रही थी। यह उस समय अलफ्रेड पाक (इलाहाबाद) मे बैठे थे। पुलिस ने इन्ह चारो तरफ से घेर लिया। इस समय इनके साथ एक भी साथी नही था। आखिर पुलिस की मुठभेड में चन्द्रशेखर आजाद ने अपनी ही गोली से अपना प्राणान्त किया। भारतीय स्वतत्रता सग्राम मे चन्द्रशेखर आजाद का नाम—अवि स्मरणीय है और आने वाली पीढी इनसे प्रेरणा ग्रहण करेगी।

गोपबन्धु

जो महान है, वे हमारे पूजनीय हैं। उन्हें अपनी आँखो से देखने पर, उनका गुण कीर्तन कर इतिहास, काव्य कविता मे उनके सम्बन्ध मे बहुत कुछ जान लेने पर या आलोचना करने पर भी यह कहा नही जा सकता कि हम पूर्ण रूप से उन्हे समझ गये हैं। इतना जानने पर भी उनमे से बहुतो का पहचाना हमारे लिये न आसान है और न सम्भव है। सिर्फ आँखों से उन्हें देखकर साहित्य मे उन महापुरुषों के सम्बन्ध म पढकर उन्हें पहचानना उतना आसान नही, जब तक कि हम एकाग्र चित्त से अपने अन्तर मे उनका ध्यान न करें।

पंडित गोपबन्धु इसी श्रेणी के एक महान व्यक्ति है जिन्हे सिर्फ साधना द्वारा पहचाना जा सकता है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा और विभिन्न क्षेत्रो मे सफल कार्यानुष्ठान अत्यन्त ही विशाल है। उनके सम्बन्ध मे जो कुछ भी कहा जाये वह कभी पूर्णता लाभ नहीं कर सकता वरन् उससे 'अंधो की हाथी से भेंट' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी—कहना अत्युक्ति न होगा।

गोपबन्धु थे चिन्तनशील शिक्षाविज्ञ, एकनिष्ठमान प्रेमी, निस्वार्थ जन-सेवक, आदर्श त्यागी साहित्यिक, पत्रकार। अन्त मे खासकर यह कहा जा सकता है कि उनके समान स्वदेश वत्सल राजनीतिज्ञ और नेता विरले दिखते है। देश के समूह-कल्याण की कामना से ही उन्होने अपनी अन्य समस्त प्रतिभा को त्याग दिया था, स्वाधीनता की यज्ञ शाला मे अपने अतिप्रिय सत्यवादी—विद्यानुष्ठान को उत्सर्ग कर दिया था—साहित्य साधना को त्याग दिया था। क्षुद्र गृह संसार की माया ममता तो उनको समग्र स्पर्श तक न कर पाई थी। उनका घर था यह विशाल देश और परिवार था समग्र जाति। गोपबन्धु के जन्म पर सिर्फ चार पाँच जनो के छोटे से परिवार के मुख पर हँसी फूटी थी पर उनके स्वर्गवास पर उनके लिये समूचे देश की कोटि कोटि जनता, धनी दरिद्र, वृद्ध-बालक, सरकारी गैर सरकारी, स्त्री पुरुष सब मानो अपने अत्यन्त ही प्रिय स्वजन को खोकर शोक सागर मे डूब गये थे। देश के वे क्या थे तथा देश के लिये उन्होने क्या किया था इसका किंचित आभास इसी से चल जायेगा।

गोपबन्धु बी०ए० की परीक्षा मे उत्तीण होने पर अपने कई घनिष्ठ मित्रो के साथ बचपन के दीक्षा गुरु रामच द्र दास जी से मिलन गये थे। गुरुजी ने आशीर्वाद वाणी के बाद जब पूछा—इसके बाद क्या करोगे ? दूसरे मित्रो ने उत्तर दिया—जी सरकारी नौकरी करेंगे। कारण उन दिनो देश मे ग्रेजुएटो की सख्या अत्य त ही नगण्य थी। उन दिनो बी० ए० मे उत्तीर्ण होने पर तो डिप्टी मजिस्ट्रेट का पद सुरक्षित रखा होता था। डिप्टी का पद उसे अवश्य ही मिलेगा—यह मानी हुई बात थी।

मित्रो की यह भावना सुनकर गोपबन्धु की आँखो से आसुओ की धारा फूट निकली। नीचे भूमि की ओर दृष्टि जमाय, अत्य त ही विनम्र वाणी मे वे बोले—मुझे सिफ इतना ही आशीर्वाद द कि देश सेवा, देश सगठन ही मेरा काय हो। गोपबन्धु के अ तर मे देश के लिये कितनी व्याकुलता थी, उसका यह आभास मात्र है।

कालेज जीवन की प्रथमावस्था मे अपने सहपाठियो को समझा बुझाकर उन्होने 'कर्तव्य बोधिनी समिति' नामक एक अनुष्ठान की स्थापना की थी। छात्रावस्था मे इस प्रकार एक अनुष्ठान की स्थापना कर देश व दश काय मे अपने को नियोजित करना, शायद उनका यही प्रथम अनुष्ठान था। साहित्य चर्चा से लेकर आपद विपद मे लोगो की सहायता करना इस समिति का लक्ष्य था। उसी दिन गोपबधु ने हृदय मे अनुभव किया कि देश का उत्थान बिना सगठन क असम्भव है कि यह देश जब तक सगठित न होगा, इसका उत्थान असम्भव है और उसके लिये सबसे अधिक आवश्यक है शिक्षा प्रसार और लोगो के हृदय म देश प्रीति का जागरण और यह तभी सम्भव है जब उच्च शिक्षित त्यागी युवको का एक दल सगठित रूप म तन मन से कार्य मे लग पडे।

इसी उद्देश्य से छुट्टी के दिनो म गोपबन्धु अपन कई सहपाठियो और मित्रो को सग ले, आस पास के गाँवो मे घूमने जाते। युवको की टोली गेरुए रग की पोशाक (वस्त्र) पहनकर सन्यासी के रूप मे गाँव गाँव घूमकर लोगो से मिलती-जुलती और उन्हे विभिन्न प्रकार स उद्बोधित करती। आगे चलकर कमजीवन मे इन्ही युवको म से अनेक के सहयोग व सहायता स उन्होंने प्रसिद्ध सत्यवादी विद्यालय की स्थापना की थी। इसका प्रधान उद्देश्य था—देश मे शिक्षा विस्तार करना और साथ ही देश सेवा करना। साथ ही निस्वाथ पर शिक्षित देश प्रेमियो की सृष्टि करना। यह अनुष्ठान थोडे दिनो के लिये स्थायी रह सकने पर भी प्रतिष्ठाता का उद्देश्य बहुताश म पूण सफल कर सका था—इसे कोई भी व्यक्ति मुक्तकठ से स्वीकार करेगा।

स्वाधीनता आन्दोलन के शुरू से, स्वाधीन भारत के इस युग मे भी ओडिशा के विभिन्न भागो मे इसी सत्यवादी अनुष्ठान के सहकारी, छात्र या इससे प्रभावित जन साधारण कर्मियो ने कृतित्व और कतव्य हासिल किया है—यह सवसम्मत है।

स्वाधीनता सग्राम के सेनानायक युग प्रवतक महात्मा गाधी के आह्वान पर जब समूचा देश उद्वेलित हो उठा था उस समय गोपबन्धु देश व जाति के कल्याण के लिये उस यज्ञ मे हँसते हँसते कूद पडे और अपन इस अतिप्रिय शिक्षानुष्ठान सत्यवादी विद्यालय को भी प्रसन्नता से बलिदान कर दिया। गोपबन्धु का मन निमल, काय म निष्ठा व पराये के लिये व्याकुलता थी जिस उन्होन अपना लिया था। शिक्षित हो या अशिक्षित, सबो को उन पर अगाध विश्वास था। अत जिस किसी काय म भी वे अग्रसर हुए, उनको उसमे चारो ओर से मुक्त कण्ठ स समथन प्राप्त हुआ और उसमे उन्ह पूण सफलता मिली थी। वे सदा अपने आपको एक साधारण कर्मी या सेवक समझते थे पर देशवासियो ने उन्ह सवश्रेष्ठ नेता रूप मे वरण कर लिया था। देश निर्माण मे, देश वासियो के सगठन में उनका यही था अपूव कृतित्व जा सदैव भारत भारती को प्रेरणा देता रहेगा।

परमवीर शैतानसिंह

इला न देणी आपणी रण खेला भिड जाय।
पूत खिलावे पालणे—मरण वडाई माय॥

ये शब्द युगो युगो से राजस्थान के रण बाकुरो के लिए प्रेरणा के आधार रहे है। राजस्थान की यह पावन धरती प्रतापसिंह बादल, अमरसिंह, राणा राजसिंह, राव जगमल, अमरसिंह राठौड, दुर्गादास, कुशलसिंह, महाराजा मानसिंह और जयसिंह जैस आन बान व शान के धनी देश भक्तो का पराक्रम देख चुकी है।

आज उसी इतिहास म 'परमवीर' मेजर शैतानसिंह का नाम स्वण अक्षरो से लिखा जायेगा। किसी कवि ने कहा है क्या करेगा वो नाम जिसको दुनियाँ म जान प्यारी है। दुनिया मे नाम कमाने वाले बहादुर जान को हथेली पर रखत हैं, व मौत को खेल समझते हैं, भला फिर देश के लिए

जीवन बलिदान करने का अवसर भाग्य से ही प्राप्त होता है। वीरभूमि राज स्थान जिसके कण कण मे पद्मिनी का जौहर, पन्नाधाय की स्वामिभक्ति, हाडीरानी का बलिदान, मीरा का त्याग व भामाशाह की दानवीरता गूज रही है, उसी मरुधर देश मे जोधपुर से 111 मील दूर बानासर ग्राम की एक ढाणी मे शैतानसिंह का जन्म हुआ। वीर बाप का यह पुत्र जिसे साहस, असाधारण प्रतिभा विरासत मे मिली थी शैतानसिंह लेफ्टिनेन्ट कनल हेमसिंह के पुत्र थे। कर्नल हेमसिंह जो साधारण सैनिक के रूप मे जोधपुर रसाले मे भर्ती हुए पर अपनी प्रतिभा से उन्हाने गत महायुद्ध मे ओ० बी० आई० का पदक प्राप्त किया।

राजस्थान की प्रसिद्ध शिक्षण सस्था चोपासनी (जोधपुर) मे शैतानसिंह को शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला। सस्था के सस्थापक जनरल सर प्रतापसिंह के मन मे इसके निर्माण की महत्वाकाक्षा यही थी कि राजपूतो के शौय व साहस को पनपने का अधिकाधिक अवसर यहाँ मिले। शैतानसिंह यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद सीधे सेना मे भर्ती हो गये। ये कुछ समय तक जसवत कालेज (जोधपुर) मे भी पढे। 1946 मे शैतानसिंह का सैनिक जीवन प्रारम्भ हुआ जबकि वे जोधपुर राज्य के दुर्गा अश्वदल मे शामिल हुए। वहाँ से वे कोटा मे श्री उम्मेद थल मे सेना मे भर्ती किये गये तथा वहाँ से कुमायूँ रेजीमेट मे जा पहुँचे। गोवा की मुक्ति सेना के अभयदूत मजर शैतानसिंह मृत्यु पयन्त इसी रेजीमेट मे रहे।

18 नवम्बर 1962 को लद्दाख के चुशूल क्षेत्र मे 17,000 फीट ऊँची बर्फीली पहाडी के रेजग नामक स्थान पर मेजर शैतानसिंह के नेतृत्व मे हमारी एक शक्तिशाली कम्पनी तैनात थी। ये जवान चुशूल को जाने वाली सडक की रक्षा कर रहे थे। सवेरे ही चीनियो ने दो बाजुओ से भयानक हमला किया पर यह हमला दढता से विफल कर दिया गया। हमारे मोर्टारो और लाइट मशीनगनो न बहुत से चीनी भून डाले परन्तु उन्हाने शीघ्र ही दूसरा आक्रमण किया। इस घमासान लडाई मे आधे घण्टे तक हमारा पलडा भारी रहा। चीनी सैनिको के झुड के झुड समाप्त होते जा रहे थे। दाँई प्लाटून पर भी चीनी बढते रहे। इतने मे ही करीब 400 चीनियो ने कम्पनी के केन्द्र पर पीछे से मशीनगनों से हमला किया। इस लडाई मे मेजर शैतानसिंह को भारी चोट आई। दो जवानो ने उन्हे तुरन्त उठाया और एक नाले के साथ साथ सुरक्षित स्थान को ले चले, लेकिन दोनो ओर से गोलियाँ बरस रही थी।

चढ्यो गन तान करी ललकार, वढ्यो सन्मुख शैतान हकार
करी बजरग बलि सम हाक, लहे कुण जीवत भूम लदाख

घमाघम तोप घुरे घमसाण अरिदलमार करे समसाण
रयो पग रोप लहि गन तान करी ललकार महा बलवान

अपनी गभीर हालत को जानते हुए भी शूरमा शैतानसिंह ने जवानो को आदेश दिया कि उन्हें वही छोड दें ताकि लडाई में बाधा न पडे। अपने नेता की अडिग आज्ञा पर जवान अपन प्यारे मेजर को वही छोड कर अपने सुरक्षित मार्चे पर चले गये! कुछ समय की लडाई के पश्चात् इस वीर शिरोमणि के प्राण-पखेरू उड गये। शव कई दिनो तक बरफ से ढका पडा रहा। तीन माह बाद खुदाई मे मेजर शैतानसिंह का शव हमारी सेना को प्राप्त हुआ।

रजपूती आन और राजस्थान की शान मेजर शैतानसिंह को राष्ट्रपतिजी द्वारा गणतत्र दिवस पर सेना के सर्वोच्च सम्मान 'परम वीर चक्र' से विभूषित किया गया जो निस्सदेह उनकी फौलादी ताकत, युद्ध के शौर्य का परिचायक है। 18 फरवरी 1963 को दिन के 3 बजे एक सैनिक विमान द्वारा इस रण बाकुरे का शव जोधपुर लाया गया तथा पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ 'कागा' की दाह स्थली मे दाह सस्कार सम्पन्न हुआ!

जननी री वा कूख धन धन धणरो सिन्दूर।
धन्य जाति धरा देस जहँ, उपज्यौ तुव जस सूर॥

मरुधरा के आचल का छोटा सा ग्राम बानासर जहा राज्य के सभी उच्च अधिकारी, मत्री, राजा महाराजा व रक पावन तीर्थ की महिमा बढाने पहुचे। वह वीर माता धन्य है जिसने ऐसे अमोल रत्न को जन्म दिया और धन्य है वह धरा जहाँ वीरता त्याग देशभक्ति कण-कण का शृगार है। राजस्थान का इतिहास नया मोड ले चुका है। अचना के पुष्प आज नत है। धन्य उस माता को जो देश के लिए अपना सवस्व न्यौछावर कर देती है। उसका विश्वास अजेय है। पूजनीय माता के ये उद्गार निश्चय ही अमर हैं

सुत मरियो हित देश रै हरख्यो बधु समाज।
माँ नह हरखी जनम दिन जतरी हरखी आज॥
सात पूत रण मेलिया, सातू कटिया साथ।
फिर देतो फिर मेलती माँ इण सासै नाथ॥

37 वर्षीय राष्ट्र गौरव मेजर शैतानसिंह यह जानते थे—यदि मैं रण छोड कर भागता हूँ तो मेरे कुल का गर्वीला सिर लज्जित होता है। मेरी पत्नी का सुहाग चिन्ह चूडा और माता का दूध एक साथ लज्जित होता है

हूँ भाजू रण छोडने लाज मो कुल माथ
चूडो धण पायमतरो लाजै हेकण साथ

और वे मौत के सामने अकेले डटे रहे। भारत के महान् देशभक्त और योद्धा की अंतिम गोली भी शत्रु के लिए चुनौती बन कर उन पर टूट पड़ी। धन्य है वीर वर! तुम्हारा बलिदान हमारी प्रेरणा है और आदर्श। स्व० मेजर शैतानसिंह के 17 वर्षीय पुत्र नरपत सिंह की ओर आज देश की नजर केंद्रित है

रजवट रो तू सेहरो, भारत हन्दो भाण
दटियो पण हटियो नही, रण भाटी संताण

चन्द्रशेखर वेंकट रमन

हमारा देश कला और साहित्य के साथ साथ विज्ञान की दिशा में भी प्रारम्भ से प्रगतिशील रहता आया है। वह चाहे ज्योतिष विज्ञान हो या रसायन विज्ञान, सभी क्षेत्रों में हमारी एक अभिनव परम्परा रही है। आज जब मनुष्य चाँद पर जाने के अपने प्रयासों में सलग्न है, वहीं वह भौतिक जगत की विभिन्न अवस्थाओं से भी जूझ रहा है। आप सबने डाक्टर चन्द्रशेखर वेंकट रमन का नाम सुना होगा। ये ही एक मात्र भारतीय वैज्ञानिक हैं जिन्हें विश्व के सर्वोच्च सम्मान नोबल पुरस्कार से सन् 1930 में विभूषित किया गया था। इन्हें यह पुरस्कार भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के परिणाम स्वरूप मिला है।

अब मैं आपको इस महान वैज्ञानिक के प्रारंभ और विकास के बारे में बताऊँगा। दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य में प्रसिद्ध शहर तिरुचिरापल्ली है। धर्म और प्रकृति के इस शहर में ही 7 नवम्बर, 1888 को इनका जन्म हुआ था। खेती बाड़ी परिवार का पुश्तैनी पेशा था। इनके पिता उन दिनों तिरुचिरापल्ली में अध्यापक थे। इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर अय्यर और माता का नाम पार्वती अम्मल था। 12 वर्ष की अल्पआयु में रमन ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और 19 वर्ष की आयु में एम० ए० की परीक्षा विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके पास की। इसी अवधि में रमन का शोधपूर्ण लेख ससार की प्रमुख पत्रिका फिलोसाफिकल मैगजीन में प्रकाशित हुआ, जिसने इनकी प्रखर और वैज्ञानिक बुद्धि का परिचय विश्व के प्रमुख विज्ञानवेत्ताओं को दिया। एम० ए० पास करने के बाद रमन उच्च शिक्षा हेतु इंगलैंड जाना चाहते थे। सरकार द्वारा छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी हो गई

थी किन्तु यात्रा से पूर्व डॉक्टरी परीक्षा में विदेश यात्रा के लिए अयोग्य घोषित कर दिये जाने पर आपको विदेश जाने का विचार त्याग देना पड़ा।

डॉक्टर ने कहा कि रमन शरीर से कमजोर है, दुबले पतले हैं, ये इंग्लैंड की सर्दी और समुद्र को पार न कर पायेंगे। तभी रमन सरकारी लेखा विभाग की परीक्षा में बैठे तथा उत्तीर्ण हुए और 19 वर्ष की अल्पायु में ही कलकत्ता में डिप्टी एकाउन्टेन्ट जनरल के पद पर इनकी नियुक्ति हुई। इतनी कम उम्र में ही ऐसे महत्वपूर्ण पद पर पहुँचना निश्चय ही महान प्रेरणा का विषय है। जो घर के वैज्ञानिक वातावरण में पले, श्रीमती एनीबेसेंट की भारत यात्रा ने जिन्हें धार्मिक दृष्टि दी वही रमन अब लेखा विभाग में आ पहुँचे। नौकरी लग जाने पर कृष्ण स्वामी अय्यर की पुत्री त्रिलोक सुन्दरी के साथ इनका विवाह हुआ।

किन्तु नौकरी और सुशील पत्नी पाकर भी रमन प्रसन्न न हुए। ये जिस दिशा में जाना चाहते थे, वह अभी तक न हो पाया था। तभी इनका परिचय आशुतोष मुखर्जी जैसे प्रसिद्ध विद्वान से हुआ। इसके परिणामस्वरूप अब ये भारतीय विज्ञान परिषद में महत्वपूर्ण अनुसंधान भी करने लगे। लेकिन तभी इनके पिता का देहान्त हो गया और इन्हें अपने गाँव लम्बे समय के लिये आना पड़ा। तभी इनकी बदली रंगून से नागपुर हो गई और इन्होंने यहाँ अपने घर में ही एक छोटी प्रयोगशाला बनाकर प्रयोग करने प्रारम्भ किये। सन् 1911 में उन्हें एकाउन्टेन्ट जनरल के पद पर नियुक्त कर वापिस कलकत्ता भेजा गया तो ये बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि वहाँ ये भारतीय विज्ञान परिषद में अनुसंधान भी कर सकते थे। इन्हीं दिनों कलकत्ता में डाक्टर रामबिहारी बोस आदि के प्रयत्नों से एक विज्ञान का विद्यालय खुला। रमन ने अपने लक्ष्य और रुचि के लिये सरकारी नौकरी छोड़ दी और जुलाई 1916 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक हो गए। तभी इन्हें सन् 1921 में ब्रिटिश राज्य महल के विश्वविद्यालयों के एक सम्मेलन में लन्दन जाना पड़ा। रास्ते में जहाज पर से जब इन्होंने समुद्र के असीमित नीले जल को देखा तो इनके मन में एक प्रश्न ने जन्म लिया कि आखिर समुद्र का पानी नीला ही क्यों है और इसी रंग के रहस्य को जानने में कड़े परिश्रम के साथ जुट गये।

इस खोज का परिणाम ही आज 'रमन प्रभाव' के नाम से विख्यात है। रमन की यह अद्भुत खोज, प्रकाश किरणों से संबंधित है। पानी या अन्य किसी शुद्ध तरल पदार्थ में यदि एक वर्ण का प्रकाश छोड़ा जाय तो उसी का प्रकाश परिवर्तित होकर वापिस आता दिखाई देगा। लेकिन परिवर्तित प्रकाश अपने मूल रंग का ही न रहकर अपने अन्य रंगों के परिवार का भी ले आता

है। अत यदि मूल वण या रग ज्ञात हो, तो एक निश्चित द्रव्य मे से एक निश्चित रग परिवर्तित होकर आयेगा। यही है 'रमन चमत्कार' जिस पर इन्हे नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह पहला अवसर था जब किसी एशियाई को भौतिक शास्त्र पर नोबल पुरस्कार मिला था। अपने ध्येय और सकल्प को आगे बढाने हेतु इन्हें सन् 1933 मे बगलौर मे इडियन इस्टीट्यूट आफ साइस' के सचालन का भार सौपा गया।

वैज्ञानिक दृष्टि के साथ साथ रमन मानव कल्याण के कार्यों को भी सर्वोपरि महत्व देते है। ये नही चाहते कि विज्ञान का उपयोग फौजी कामो क लिये किया जाय, ये रचनात्मक कार्यों के लिये विज्ञान को सबसे बडी देन मानते हैं। सन् 1958 मे जब इन्हे रूस का सर्वोच्च लेनिन पुरस्कार' प्राप्त हुआ तब इन्होने विज्ञान के इसी रचनात्मक महत्व पर बल दिया।

डाक्टर रमन ने कुछ समय पूव ही आँखो का कैमरा अर्थात 'रेटिना' को देखने की नई पद्धति की खोज की है, जिसके द्वारा आँख के अन्दर के हिस्से को भी देखा जा सकता है और यह जाना जा सकता है कि वह कैसे काम करता है। इनके सभी आविष्कार प्राय ध्वनि, चुम्बकत्व, समुद्री जल प्रकाश, रग और एक्स किरण आदि से सबधित हैं। अधिकाश असाधारण पुरुष व्यक्तिवादी होते हैं लेकिन रमन इस स्वरूप के सदैव विरोधी रहे हैं। आठ भाषाओ के ज्ञाता और वीणा वादन मे प्रवीण, पद, पुरस्कार और सम्मान की बौछार मे भी विचलित न होने वाले डॉक्टर चन्द्रशेखर वेंकट रमन अथक परिश्रमी और महान भारतीय वैज्ञानिक परम्परा के आधार स्तभ के रूप मे माने जाते हैं।

डॉक्टर रीमन का आदेश है 'सदव यही प्रतीति रखो कि तुम साधना के अति उत्तुग शिखर पर बैठे हो। तनिक भी सतुलन खोया तो अतल गहराइयो खोहो और खाईयो म गिर पडोगे। एक क्षण भी खोया तो जीवन सम्पदा का क्षीण कर बैठोगे। जीवन स तभी तुम कुछ पा सकोगे यदि उससे भी बढकर जीवन को कुछ दे सकोगे।' जिनके अनुसधान से आज विज्ञान का इतिहास हैं, ऐसे महान भौतिकशास्त्री का यदि भारत के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न' से विभूषित किया गया तो क्या आश्चय ?

होमी जहाँगीर भाभा

डॉ० होमी जहाँगीर भाभा भारतीय परमाणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष थे। डॉ० भाभा बचपन मे ही विज्ञान की नई दृष्टि के अन्वेषक रहे। उनके मस्तिष्क मे एक बात हमेशा रहती थी कि अणुशक्ति से मानव विरोधी स्वरूप को समाप्त कर उसे जीवन निर्माण की विभिन्न दिशाओ से सम्बद्ध कर दिया जाये। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद से ही वे प्रधानमत्री नेहरू के अत्यधिक निकट रहे और उन्होने इस निकटता को भारत के परमाणु शक्ति आयोजन मे बदला। डॉक्टर भाभा ट्राम्बे मे परमाणु शक्ति का ऐसा केन्द्र बनाने मे सफल हुए जिसने कि थोडे ही समय मे अत्यधिक सफलता अर्जित की। आज भारत परमाणु शक्ति के मामले मे आत्म निर्भर है और बहुत आगे है।

बहुत जल्दी ही जिस व्यक्ति ने विज्ञान जगत म अपना स्थान बना लिया था वे आज हमारे बीच पार्थिव रूप से नही हैं पर उनका नाम विकासशील भारत के इतिहास मे प्ररक शक्ति के रूप मे लिखा जायेगा।

55 वर्षीय डा० होमी जहाँगीर भाभा का जन्म 30 अक्तूबर 1909 मे हुआ था। उन्होने बम्बई के कैथेड्रल जान कैनन हाईस्कूल एलीफंस्टन कालेज और रायल इन्स्टीटयूट आफ साइस मे शिक्षा प्राप्त की थी। 1934 मे उन्होने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से 'पी एच० डी०' की डिग्री ली। डा० भाभा ब्रह्माड विकिरण के क्षेत्र मे विश्व के चोटी के वैज्ञानिको मे से एक थे। इस रूप मे उन्होने जो ख्याति प्राप्त की वह अतुलनीय है। उनकी योग्यता और विद्वता से प्रभावित होकर देश के कई विश्वविद्यालयो ने उन्हे 'डाक्टर आफ साइस' की पदवी से सम्मानित किया था। विद्यार्थी जीवन मे ही मेधावी और परिश्रमी होने के कारण उन्हे गणित मे 'राउज्बेल ट्रैवलिंग-स्टूडेन्टशिप' कैम्ब्रिज मे आइजक न्यूटन स्टूडेन्टशिप और सीनियर स्टूडेन्टशिप प्राप्त हुई थी। यही नहीं डाक्टर भाभा दो बार एडम्स प्राइज' और 'हौपकिंग प्राइज' भी प्राप्त कर चुके थे।

डॉ० भाभा के प्रारम्भिक विकास का एक गौरवपूर्ण क्रम रहा है। वे ही प्रथम भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होने जिनेवा मे 'एटम फॉर पीस' नामक गोष्ठी की अध्यक्षता की थी, यह वही गोष्ठी थी जिसमे दूसरी बार उन्होने वैज्ञानिक फ्रांसिस पैरो की इस विचारधारा का बडी दढता के साथ खण्डन किया था कि ससार के अल्पविकसित राष्ट्र परमाणु शक्ति से तब तक लाभ नही ले सकते जब तक कि वे औद्योगिक प्रगति की दिशा मे समुचित सम्पन्नता प्राप्त नही कर लेते और यही नही, उन्होन इस बात को सत्य साबित कर दिखाया कि अद्ध विकसित राष्ट्र परमाणुशक्ति का उपयोग शाति और अथ व्यवस्था आदि अन्य औद्योगिक प्रक्रियाओ को मजबूत बनान मे कर सकते हैं और भारत इस बात का ज्वलत प्रमाण है, जिसकी रचनात्मक उपलब्धि ने उसे परमाणु शक्ति के उल्लेख पृष्ठ पर सदा सवदा के लिए स्थापित कर दिया है।

वे डा० भाभा ही थे जिन्हाने 1952 मे हुई स्टाकहोम की गोष्ठी, अन्त र्राष्ट्रीय तकनीकी गोष्ठी में अपनी 'कास्मिक पार्टीकल्स की महत्वपूर्ण शक्ति खोज से सभी को आश्चर्यचकित कर दिया था।

निशस्त्रीकरण के सम्बन्ध मे डा० भाभा के विचार बहुत सुलझे हुए थे। आकाशवाणी मे 1964 के एक प्रसारण मे उन्होने कहा था— विश्व को निशस्त्रीकरण की दिशा मे ठोस कदम उठाने चाहिये क्योकि भविष्य मे अनेक देशो के पास भी परमाणु बम बनाने की विधि मे विकास के फलस्वरूप बम बनाने पर खर्चा कम होता जा रहा है। इसीलिये छोटे देश भी आने वाले समय मे बम बनाने के लिये प्रोत्साहित होगे।'

डा० भाभा भारत म ही नही, विश्व मे अपनी प्रतिभा के सच्चे परिचायक थे। जहा वे राष्ट्रसघ की वैज्ञानिक समिति के सदस्य थे वहा अन्तर्राष्ट्रीय पर माणु शक्ति एजेंसी मे उनकी सलाह को सभी वैज्ञानिक बडे आदर से सुनते थे। उन्होने दुनिया को बताया कि समुद्र के पानी मे काफी हाइड्रोजन शक्ति है, जिसका उपयोग मानव को करना चाहिये। उनकी इस सलाह पर अमरीका, ब्रिटेन आदि देशो ने इस दिशा मे काय किया, और उन्हे इसका समुचित लाभ भी मिला।

भौतिकी जगत मे ही प्रारम्भिक कणो पर उन्होने पर्याप्त काय किया था, जिसके फलस्वरूप अन्तरिक्ष से तथा सूय से आने वाले विकिरण का अध्ययन सभव हुआ और इसी जानकारी का प्रयोग आज अन्तरिक्ष यात्रा को सुरक्षित बनाने मे हो रहा है।

24 जनवरी, 1966 की हवाई दुर्घटना मे, डॉ० होमी जहाँगीर भाभा

का आकस्मिक निधन, जहाँ देश के विज्ञान जगत मे कभी पूरी न होनेवाली क्षति है, वही विश्वविज्ञान के लिये गहरे शोक का विषय भी बनी है। यह दुघटना तब घटी, जब वे अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति सम्मेलन मे भाग लेने 'वियेना' जा रहे थे कि भारतीय विमान कचन जघा' एक पहाडी की चोटी से टकरा गया।

उनके निधन पर राष्ट्रपति डा० सवपल्ली राधाकृष्णन ने कहा 'हमने डॉ० भाभा को बहुत ही गम्भीर समय म खोया है, हम सच्चे मानव की खोज करके ही, अपनी हानि की सीमाओ का अनुमान लगा सकेंगे।'

रचनाकार

तिरुवल्लुवर

उत्तर और दक्षिण के मध्य, कमान की तरह खिचे विन्ध्याचल पवत को लाँघकर ऋषि अगस्त्य ने सबसे पहले सास्कृतिक एकता का सूत्रपात किया था जिसका प्रारम्भिक उल्लेख हमे दक्षिण के सत कवि तिरुवल्लुवर की महान रचना 'तिरुक्कुरल' मे मिलता है। तिरुक्कुरल को तमिल भाषा का 'वेद' माना जाता है। तमिल साहित्य मे इसका वही स्थान है जो सस्कृत म गीता, हिन्दी में रामचरित मानस और अग्रेजी मे बाइबिल का है।

कहते हैं तिरुवल्लुवर ने इस ग्रथ की रचना आज से लगभग दो ढाई हजार वष पूव की थी। तमिलनाडु मे महाबलीपुरम से 36 किलोमीटर उत्तर मे एक छोटे से गाव मयिलापुर मे सतकवि तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ था। कबीर की भाति ये भी जुलाहे थे। दिन भर कताई बुनाई और ज्ञान चर्चा करना ही इनका काम था। तिरुवल्लुवर की धमपत्नी का नाम वासुकी था। इनके जीवन की एक घटना है कि मयिलापुर मे शिगन नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी था, जिसका पुत्र बहुत ही उद्दण्ड और असयत आचरण वाला था। एक बार शिगन का पुत्र तिरवल्लुवर के यहाँ गया और उनसे एक साडी माँगी। साडी प्राप्त होने पर वह बोला—इसका दाम क्या है? वल्लुवर न कहा—दो रुपया। इस पर युवक ने साडी के दो टुकडे कर दिये और बोला —मुझे तो सिफ आधी साडी चाहिये, इसका दाम क्या होगा? आप ही सोचिये वल्लुवर के स्थान पर यदि कोई और होता तो शायद ये सब सहन नही करता। इसी तरह युवक ने सारी साडी के टुकडे-टुकडे कर दिये और कहता रहा मुझे तो सिफ इसका आधा हिस्सा चाहिये। साडी नष्ट हो गई, लेकिन वल्लुवर के भाव मे कोई अन्तर नही आया।

युवक चाहता था कि वल्लुवर क्रोध करें, उसे बुरा भला कह तो वह दूसरो को सताने का आनन्द ले। पर बदले मे वल्लुवर ने कहा—कोई चिन्ता नही, मैं इन्ह जोडकर ठीक कर लूगा।

वल्लुवर के इस व्यवहार से युवक हैरान रह गया और उनके चरणो मे गिर पडा। सुधार एव नम्रता की कितनी ममस्पर्शी घटना है यह।

ऐसे सत तिरुवल्लुवर प्रतिदिन कुछ दोहे लिखते। धीरे-धीरे एक ग्रन्थ

तैयार हो गया, जिसमे 1330 दोहे एव 133 खण्ड हैं। 10 दोहे के प्रति खण्ड वाले ग्र थ 'तिरुक्कुरल' म सासारिक जीवन के वे सभी पक्ष समाहित हैं जिन्हें हम आये दिन जीते हैं। यह ग्रथ जिस छद मे लिखा गया है उन्ह तमिल भाषा मे 'कुरल' कहते हैं।

प्रारम्भ मे अन्य विद्वानो को तिरुवल्लुवर की विद्वता पर शक होता था, लेकिन अत म वे भी उनके पाडित्य से हार मान गये। इस सबध मे एक घटना का उल्लेख मिलता है कि मदुरै की विद्वत्सभा की जिस मन्दिर मे बठक होती थी, वहाँ एक सरोवर था, जिसमे स्वणकमल खिलते थे। विद्वत्-सभा की चुनौती स्वीकार करके तिरुवल्लुवर ने अपने ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' को एक काठ के पट्टे पर रखकर इस सरोवर मे छोड दिया और देखते देखते वह काठ सिकुडने लगा यहा तक कि उसका आकार ग्रन्थ के बराबर ही रह गया। यह चमत्कार देख, सारी ज्ञान सभा हतप्रभ रह गई एव एक स्वर मे सत कवि की प्रशसा करने लगी। कवि के ग्रथ तिरुक्कुरल' का अनेक भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है।

परोपकारी स्वभाव के 'तिरुवल्लुवर' के अनुसार जो भगवान के कीतन-स्तवन मे भली भान्ति लगे रहते हैं वे पाप पुण्य से परे रहते हैं, पाप पुण्य के भागी नही होगे और इच्छा रहित निर्विकल्प भगवान का भजन करने वालों को कभी दुख की प्राप्ति नही होगी।

कवन

जिस प्रकार सस्कृत म वाल्मिकि रामायण, तेलगु मे द्विपाद रामायण, मलयालम में रामचरित, कन्नड मे तोर वे रामायण, बगला मे कृतिवासीय रामायण, हिन्दी मे रामचरित मानस, उडिया मे बलरामदास रामायण, असम मे असमिया रामायण मराठी में भावाथ रामायण, गुजराती म रामबाल चरित और राजस्थानी मे रघुनाथ रुपक गीतारो, रामकथा के श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखे गये, उसी प्रकार तमिल मे भी महाकवि कवन ने 'कब रामायण' की रचना की, जो तमिलनाडु की श्रेष्ठतम काव्य कृतियो मे से एक है।

गगा, यमुना, नमदा, माही, कृष्णा, कावेरी एव गोदावरी नदी के पवित्र

तट के मानवो ने समय समय पर रामगाथा का जो बखान किया है अह भारत की सास्कृतिक तथा साहित्यिक एकता का ही प्रतीक है । तमिल साहित्य मूलत पाँच कालक्रमो मे विभाजित किया जाता है, मघमकाल, बौद्ध तथा जैन काल, भक्तिकाल महाकाव्यकाल और मठ और धार्मिक सस्थाओ का काल ।

महाकवि कबन महाकाव्यकाल' के अन्तगत आते हैं । 9वी शताब्दी म रचित 'कब रामायण की कथा मात्र वाल्मीकि रामायण से ली गई है, लेकिन शैली, काव्य रीति एव वणन के प्रकार सवथा मौलिक एव भिन्न हैं ।

एसा मानते हैं कि कबन का जन्म दक्षिण भारत मे तमिलनाडु क तत्कालीन चोल राज्य मे तिरवलुदूर नामक गाँव मे हुआ था । कबन ता इनका उपनाम बताया जाता है, लेकिन मूल नाम की जानकारी अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है । इनके पिता का नाम अदवन् था । वे राजपुरोहित थे । प्रसिद्ध वैष्णव कवि और सत नम्मालवार उनके गुरु थे । साथ ही इनक अभिवावक रूप मे सडैयप्पवल्लल को जाना जाता है, जो कि चोल दरबार मे जाने माने थे । ऐसे वातावरण मे ही कबन ने कब रामायण की रचना की ।

इससे पहले कि हम कबन के सबध मे और कुछ कहे, यहाँ इस बात का उल्लेख करना होगा कि, तमिलनाडु राज्य म अर्थात तमिलनाडु मे प्रारम्भ स यह प्रथा रही है कि किसी भी ग्रथ को मान्यता तब तक नही मिल पाती थी जब तक कि विद्वाना की मडली मे न सुनाया जाय । कबन ने भी अपने ग्रथ को सन् 885 में फाल्गुन पूर्णिमा के दिन श्रीरगम के मदिर मे पढ़कर सुनाया, जिस पर इन्हे मान्यता ही नही अपितु 'कवि चक्रवर्ती' की उपाधि भी मिली।

कहते हैं महाकवि कवन ने और भी दो तीन ग्रथ लिखे थे, परन्तु रामायण इनकी श्रेष्ठ कृति है । कबन रामायण का तमिल धम-साहित्य मे वही स्थान है जो वाल्मीकि रामायण का सस्कृत और तुलसी के रामचरित मानस का हिन्दी मे । कब रामायण मे निषादो के राजा का उज्ज्वल चरित्र चित्रण, अयोध्यापुरी का स्वगतुल्य वणन, द्रविड सभ्यता एव भगवान राम के मनोभाव का उल्लेख, अन्य राम ग्रथो से सवथा हटकर है । कब रामायण में कोई 12 हजार पद्य है जो सभी रामाचप के साथ रावण स्मरण के कारण कथा की मूल आत्मा क प्रतिपादक जान पडते हैं । इसके निर्माण मे कवि ने तमिल साहित्य की परम्परा का अनुसरण किया और चितामणि, कदपुराणम, पेरियपुराणम आदि ग्रथो मे वर्णित व्यवहृत शैलियो को अपनाया । अपने ग्रन्थ को मान्यता दिलवाते समय उन्हे कई षडयत्रो का सामना भी करना पडा, पर कवन ने कवि के स्वाभिमान, स्वतत्रता को कभी झुकने न दिया ।

कहते हैं 'कब रामायण' के अतिरिक्त इन्होंने ग्यारह पुस्तकें और भी

लिखी थी जिनमे से शडगोयर अन्दादी, सरस्वती अन्दादी ऐर एलुयद, शिलै एलुयत आदि मुख्य हैं।

तमिल मे तीन महाकवि तिरुवल्लुवर, इलगो और कबन माने जाने जाते है, जिनकी काव्यधारा से सम्पूण धरा खण्ड प्लावित है। तमिल म सुप्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती के अनुसार—

विद्या विश्रुत भू विद्या विशिष्ट, गुण विशिष्ट पदवीधर
कवि कबन की जननी जन्मभूमि होने का गव कर
गौरव पद है जिसका साहित्यक रस सौरभ चेतोहर
जिसका जस भू पर फैला है वह तमिलनाडु अपना है!

नम्मालवार

प्राचीन काल स ही भारत म शव और वैष्णव धर्मों की मान्यता रही है। जिस प्रकार शैव धम का उदय दक्षिण भारत मे हुआ उसी प्रकार वैष्णव धम का उदय उत्तर भारत म। आगे चलकर वष्णव धम ब्राह्मणो के साथ दक्षिण भारत मे भी आया। यहाँ इसका प्रसार वैष्णव समयाचार्यों ने किया, जिन्ह आलवार कहते है। दक्षिण भारत के यह आलवार वैष्णव साधु भक्त होते थे। जिस प्रकार बौद्ध का अथ ज्ञान होता है उसी प्रकार आलवार का अथ है ज्ञानी। वष्णवो का विश्वास है कि जन कल्याण के लिये भगवान विष्णु ने दक्षिण भारत म आलवारो के रूप म अवतार लिया था। यह आलवार दक्षिण के तोडमान, चोल, चेर और पाडिय राज्यो मे उत्पन्न हुए। भारत प्रसिद्ध श्रीरगम और तिरुपति बालाजी का मन्दिर आलवारो ने ही स्थापित कराये थे। यह प्रभूरूप आलवार कुल बारह हैं। इनके नाम हैं–पोयगै आलवार, भूतत्तालवार पेयालवार तिरुमलिशै आलवार नम्मालवार,मधुर कवि आलवार कुलशेखर आलवार,पेरिय आलवार, तिरुपान आलवार तिरुमग आलवार, तोडरडिपोडि आलवार और आडाल आलवार। इनमे से नम्मालवार का जन्म ईसा की नवी शताब्दी के मध्य माना जाता है। भविष्य पुराण एव वैष्णव परम्परा के अनुसार नम्मालवार को भगवान विष्णु के प्रमुख सेवक का अवतार माना जाता है। ब्रह्माड पुराण मे नम्मालवर के जन्म स्थान का नाम तिरुनगरी अर्थात श्रीनगरी बताया गया है जो ताम्रपर्णी नदी के किनारे अवस्थित है। इनका पहला नाम मारन था पर

इनके धम गुरु ने सस्कृत नाम शठकोपन दिया था। जिस प्रकार भगवान बुद्ध ने पीपल वृक्ष के नीचे साधना कर सिद्धि प्राप्त की थी उसी प्रकार नम्मालवार ने इमली के पेड के नीचे तप कर सिद्धि प्राप्त की थी।

नम्मालवार जाति-भेद को नहो मानते थे। इनके अनुसार ज्ञान या अज्ञान ही मनुष्य को समाज में ऊँचा या नीचा स्थान दिला सकता है। कथा है कि एक बार भगवान नारायण ने प्रकट होकर इन्हे नारायण मत्र का उपदेश दिया जो 'ओम नमो नारायण' के नाम से प्रसिद्ध है। यह वैष्णव सम्प्रदाय का मूल मत्र माना जाता है जो बारह आलवारो के लिखे प्रभू वाक्य दिव्य प्रबधम' नामक ग्रथ मे सकलित है जिसके चार भाग हैं। नम्मालवार ने इस ग्रथ के तीसरे भाग के हजार कम श्लोको की रचना की थी। जिनम 'ओम नमो नारायण' का रहस्य स्पष्ट किया गया है।

नम्मालवार के लिखे अन्य ग्रथो मे तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम, तिरुवदादि और तिरुवायमोलि प्रमुख हैं। तिरुवायमोलि मे एक हजार पद्य हैं जिनमें भगवान नारायण के दिव्य गुणो और उनके रूप का वणन है। तिरुविरुत्तम मे नम्मालवार ने मीराँबाई की तरह अपने को नायिका मानकर प्रियतम नारायण के साथ माधुय भाव से भक्ति गाई है। वैष्णव भक्तो मे सवप्रथम नम्मालवार ने ही श्री मद्भागवत के लालित्य भाव को आधार मानकर साधना की है। नम्मालवार के दो शिष्य थे। प्रथम थे नाथ मुनि और द्वितीय थे मधुर कवि। यही नाथ मुनि वैष्णवो के प्रथम आचाय हुए और मधुर कवि प्रमुख भक्त। नमाल्लवार ने अपने जीवन मे अनेक वैष्णव क्षेत्रो की यात्रा की थी तथा इनके सबध मे छद भी रचे थे। इनकी भाषा मे सस्कृत शब्दो की प्रचुरता पाई जाती है। यदि आप नम्मालवार के सबध मे और अधिक जानना चाह तो दिव्यसुरी क्रुत्रम, प्रपन्नामृतम, गुरु परम्परा प्रवधम, प्रवधाश्रम, उपदेश रत्नमाला और पलनाडई विलावक्म आदि ग्रथ देख सकते है।

कहते हैं आचाय श्रीरामानुज का दशन भी नम्मालवर की रचनाओ से प्रेरित था। वैष्णव भक्त इन्हे वैष्णव कुलपति और इनकी कृतियो का तमिल वेद के रूप मे मानते हैं। अक्सर लोग कहते हैं कि आजकल कलियुग है अर्थात् सब कुछ पतन के लिये ही होगा। लेकिन इससे बहुत पूव नम्मालवार ने कहा था—यदि आप सब मिलकर भगवान का आराधना करें तो कलियुग का बुरा अथ भी बदल सकता है। दक्षिण भारत के इस वैष्णव भक्त नम्मालवार की प्राथना के अनुरूप हम सब भला जीवन मे यह क्यो नहो चाहत 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

कालिदास

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिन पदलालित्य माघे सन्ति त्रयोगुणा ॥

उपमाओ के धनी महाकवि कालिदास भारतीय सस्कृत साहित्य के गौरव रत्न हैं । श्रव्य एव दृश्य दोनो ही प्रकार के काव्यो की रचना मे दक्ष महाकवि कालिदास की प्रतिभा के मूल्याकन पर सभी विद्वान हैरान हो जाते हैं । पेड की जिस डाल पर बैठे, उसे ही काटने वाला एक समय का महामूर्ख आज का महाकवि कालिदास कहा जायगा यह कल्पना कोई कर भी नही सकता ।

कालिदास के जीवन सबध मे तो कुछ भी अधिक कहना सभव नही होगा क्योकि उनका काल निर्णय भी अधिकाशत अप्रत्यक्ष प्रमाणो पर आधारित है । फर्ग्युसन के अनुसार इनका समय छठी शताब्दी है तो कीथ और मेकडौनल ने यह समय पाँचवी शताब्दी ईसवी का प्रारम्भ बताया है जबकि भारतीय मनीषि इसे ईसा पूर्व मानते हैं । इतिहासकार फर्ग्यूसन के मतानुसार उज्जयिनी (मध्यप्रदेश) के महाराज हर्ष विक्रमादित्य ने 544 ईसवी मे शको को पराम्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य म विक्रम सवत प्रारम्भ किया जिसे प्राचीन और चिरस्मरणीय बनाने के उद्देश्य से 57 ईसवी पूर्व से आरम्भ माना । 500 ईसवी के लगभग हूणो ने हमारे देश पर हमला किया, जिनका कालिदास ने यवन, शक आदि विदेशी जातियो के रूप में उल्लेख किया है, अत उनका समय 500 ईसवी के अनन्तर ही होना चाहिये ।

साथ ही कीथ तथा मैक्डौनेल प्रभृति यूरोपीय विद्वानो का कथन है कि गुप्त वशीय प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम विक्रमादित्य की उपाधि धारण की जिसके पूर्व इस नाम का कोई नरेश ही नही हुआ था अत यही विक्रमादित्य महाकवि कालिदास का आश्रयदाता था । गुप्तकाल म ही महाकवि को अपनी काव्य कौमुदी के विकास करने का पर्याप्त अवसर भी मिला होगा । यही कारण हो सकता है कि कवि ने 'कुमारसम्भव' की रचना कुमारगुप्त के जन्म को लक्ष्य करके की हो । अत उनका काल पाँचवी शताब्दी ईसवी का प्रारम्भ ही हो सकता है ।

लेकिन भारतीय सस्कृत जगत के अनुसार प्रयाग के निकट भीटा नामक

स्थान पर एक सुन्दर चित्र पदक की प्राप्ति से यह पता चलता है कि कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व मानने मे सदेह की आशका नही रहती। इस प्राप्य चित्र पदक मे एक मुनि हाथ उठाकर राजा को मृग पर प्रहार न करने के लिये रोक रहा है दो पुरुषो के समीप खडी हुई एक बालिका पौधो को सीच रही है। यह चित्र कालिदास की अमरकृति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' से मेल रखता है तथा ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी मे रचा गया था, अत महाकवि का काल प्रथम शताब्दी ईसापूर्व ही रहा होगा।

कालिदास ने सस्कृत साहित्य को जितने भी काव्यग्रथ दिये वे सभी अद्वितीय और बेजोड है। 'मालविकाग्निमित्र' महाकवि की प्रथम रूपक रचना है, जिसम विदर्भ देश की राजपुत्री मालविका एव महाराज अग्निमित्र की प्रणयकथा का रोचक वर्णन है। 'विक्रमोर्वशीय' उनका अन्य ग्रन्थ है जिसमे पाच अको का एक त्रोटक है, जो कि दशरूपककार धनजय के मतानुसार अठारह उपरूपको का एक भेद है। 'विक्रमोर्वशीय' सम्राट विक्रमादित्य के गुण गौरव की कृति है। अभिज्ञान शाकुतल' महाकवि कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना है जिसके सात अक—दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग और पुनर्मिलन की रोचक कथा के गायक है। कालिदास की काव्य नायिका 'शकुन्तला' महर्षि विश्वामित्र और मेनका अप्सरा से उत्पन्न कन्या थी, जिसके कि राजा दुष्यन्त के सयोग से 'भरत' नामक बालक का जन्म हुआ। इसी भरत के नाम पर आगे चलकर हमारे देश का नाम 'भारतवर्ष' पडा। अमर कवि कालिदास की ऐसी अमूल्यकृति के लिये जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गेटे ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' को पढकर कहा था—'यदि यौवन-बसन्त का पुष्प सौरभ और प्रौढत्व, ग्रीष्म का मधुर फल परिपाक एकत्र देखना चाहते हो, अथवा अन्त करण को अमृत के समान सन्तृप्त एव मुग्ध करने वाली वस्तु का अवलोकन करना चाहते हो, अथवा स्वर्गीय सुषमा एव पार्थिव सौन्दर्य इन दोनो के अभूतपूर्व सम्मिलन की झाँकी देखना चाहते हो तो एक बार 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुशीलन एव मनन करो।'

माघ

राजस्थान का नाम प्राय वीरो और व्यापारियो के सदर्भ मे सबसे पहले गिनाया जाता है, लेकिन यहां की साहित्यिक एव सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उसके बाद। आज हम भारत के साहित्यिक इतिहास के एक ऐसे ही महत्वपूर्ण पडित की चर्चा करेंगे जिसका ज म मरुभूमि के जालोर जिले के श्रीमाल अर्थात भीनमाल नगर म हुआ था। आज सस्कृत कवि कालिदास अपने उपमा वैभव के लिये भारवि अपने अर्थ गाभीर्य के लिये और दडी अपनी सुदर गद्य रचना के लिए प्रसिद्ध हैं किन्तु महाकवि माघ के साहित्य म इन तीन गुणो का अद्भुद समन्वय है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवम्।
दण्डिन पदलालित्य माघे सन्ति त्रयो गुणा ॥

महाकवि एक प्रकाण्ड पडित थे। इनकी प्रसिद्ध रचना है—'शिशुपाल वध', जिसके आधार पर महाकवि माघ के लिये कहा जाता है—

(1) काव्येषु माघ कवि कालिदास
(2) मेघे माघे गत वय
(3) नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते।

महाकवि माघ किस कुल मे उत्पन्न हुए यह प्रश्न विवादास्पद हो सकता है लेकिन यह प्राय स्वीकार किया जाने लगा है कि माघ जाति से ब्राह्मण थे और इन के पिता का नाम कुमुद पण्डित था। क्योकि 'शिशुपाल वध' महाकाव्य के अतिम पाँच श्लोक जो आत्मकथा के रूप म लिखे गये हैं इस बात के स्पष्ट साक्षी हैं। कहते है माघ का जन्म माघ पूर्णिमा के दिन आठवी शताब्दी मे हुआ इसी हेतु इनका नाम माघ रखा गया। इनकी मृत्यु के सबध में यह माना जाता है कि इनका देहान्त 136 वर्ष की आयु म सन् 880 के आस पास दरिद्र अवस्था म हुआ था। महाकवि माघ का जीवन अपने ढग का अलग जीवन था। वे लोकमर्यादा अथवा लोकमत का पर्याप्त आदर नहीं करते थे। किसी कारण से राजा के कोप भाजन होकर इन्हें देश छोडना पडा। इस काल मे इन्होने श्रृंगारिकता से पूर्ण कविता की। स्वभाव से परोपकारी एव दानी होने के कारण धीरे धीरे इनका सारा धन समाप्त हो गया। ऐसे

प्रकाण्ड पडित एव काव्यवेत्ता की अतिम अवस्था मे उनका क्रिया कम करने वाला परिवार का कोई भी व्यक्ति न रहा तथा इनके दाह सस्कार की सम्पूर्ण क्रिया प्रतिहार भोज ने स्वय कराई।

महाकवि माघ का व्यक्तित्व रूपवान व स्वस्थ था। स्वभाव से विनोदी एव व्यवहार से कोमल महाकवि माघ मन मे सदैव वश प्रतिष्ठा एव प्रशसा की चाह रखते थे।

'शिशुपाल वध', माघ की एक ऐसी उत्कृष्ट रचना है जिसमे सभी काव्यिक गुणो का सन्निवेश है। महाकाव्य का मुख्य रस वीर है तथा कथानक महाभारत से लिया गया है। यह कथानक श्रीकृष्ण के जीवन की मुख्य घटना है। इसमे 20 सर्ग हैं तथा प्रत्येक सग मे 50 से अधिक श्लोक नही हैं। एक श्लोक मे प्रमुख छन्द एक है। द्वारका नगरी एव समुद्र वणन, रैवतक पवत के चित्र, कृष्ण के शिविर और षड्ऋतुओ के मोहक वणन से युक्त, नायक-नायिका की रात्रि क्रीडा, श्रीकृष्ण की सेना का रैवतक पवत से इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान, यमुना नदी का वणन और अतिम सर्गों मे श्रीकृष्ण एवं शिशुपाल के बीच हुये भयकर युद्ध के दश्यो से पूण है—महाकवि माघ का महाकाव्य 'शिशुपाल वध'।

वसन्तगढ के शिलालेख, वल्लाल पडित सकलित भोज प्रबन्ध, प्रबधचिंतामणि, पुरातन प्रबध सग्रह मे माघ पडित प्रबध सिद्धर्षिकृत प्रभावक चरित, हरिभद्र सूरि सबधी जीवन वृत्त, बाणभट्टि सूरि चरित और आबू समिति के प्रतिवेदन से—महाकवि माघ की रचना और जीवनी की जानकारी आसानी से उपलब्ध होती हैं, जिनमे माघ के व्यक्तित्व और कवित्व के अलग अलग पक्षो को साहित्यिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से देखा गया है।

अमीर खुसरो

पठानो के समय तक यह विश्वास भारतीयो मे इतना प्रबल था कि अमीर खुसरो ने मुसलमान होते हुए भी बडे ही प्रभाव से यह बात लिखी है कि 'आदम और होवा' जब स्वग से निकाले गये, तब वे आकाश से इसी भारत भूमि मे उतरे थे। भारतीयता के इस उज्ज्वल पक्ष के स्थापक अमीर खुसरो का मूल नाम 'अबुल हसन' था। इनका जन्म उत्तर प्रदेश म एटा जिले के पटियाली नामक गाँव म विक्रम सवत 1312 मे अतर्गत हुआ था। ये प्रसिद्ध

सूफी पीर हज़रत निजामुद्दीन औलिया के मुरीद थे। ये अपनी बारह वर्ष की अवस्था से ही कविता करने लग गये थे। जिस प्रकार मलिक मोहम्मद जायसी, अकबर, रहीम और दाराशिकोह आदि भारत भक्ति से पूर्ण थे, उसी प्रकार धर्म निरपेक्ष संत अमीर खुसरो भी भारतीय ज्ञान और सांस्कृतिक महिमा के व्याख्याकार थे। मुहम्मद बिन अलबेरूनी की 'किताबुल हिन्द' इसका अच्छा प्रमाण है। अमीर खुसरो ने अरबी, फारसी, तुर्की और हिन्दी भाषाओं में कुल मिलाकर ९८ ग्रंथों की रचना की, जिनमें से इस समय केवल 22 ही उपलब्ध हैं। उनमें भी इनकी मसनवियों की संख्या अधिक है। दैनिक जीवन में अमीर खुसरो हिन्दी और धर्म निरपेक्षता के अनुयायी थे। गायन में ख्याल शैली कव्वाली कसीदा, रुबाई गज़ल और सितार जैसे वाद्यवृन्द का परिचमत्कार इन्हीं को माना जाता है। इनके पूर्वज तुर्किस्तान के निवासी थे, जो बाद में भारत आकर बस गये थे। एक बार की घटना का उल्लेख मिलता है कि—हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया कुछ उदास थे, तो ये उन्हें दिल्ली शहर की चारदीवारी से बाहर ले गये। यहाँ कालकाजी के मंदिर के पास इन्होंने देखा कि हिन्दू लोग वसंत पंचमी का त्यौहार मना रहे हैं। कुछ देर तो हज़रत औलिया तथा अमीर खुसरो यह आयोजन देखते रहे, पर थोड़े समय बाद उस खुशी में शामिल हो गये। दिल्ली में त्यौहार मनाने की संयुक्त प्रथा का प्रारम्भ ही इसी से समझा जाता है।

अमीर खुसरो की महत्वपूर्ण काव्य रचना के कारण ही दिल्ली के बादशाह गियासुद्दीन बलबन और अलाउद्दीन खिलजी ने इन्हें सम्मानित कवि के रूप में स्वीकार किया। लेखन क्षेत्र में इनकी एक और चर्चित पुस्तक है—'तुगलक नामा' जिसमें तुगलक काल का इतिहास वर्णित है।

यहाँ अमीरखुसरो के बचपन की उस घटना का ज़िक्र करना भी ठीक रहेगा जब आठ साल की उम्र में पिता का देहान्त हो गया था और इन्होंने कहा था—'कि मेरे जीवन में जिस बीज का रोपण मेरे पिता ने किया वह नये संकल्प से अंकुरित होगा। इसी प्रकार अपनी माता की मृत्यु पर अमीर खुसरो ने कहा था—'हे माता! तुम कहाँ हो जो मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा। मेरे आँसुओं पर दया करो माता। मैंने बचपन में बहुत भूलें की, पर अब मैं तुमसे क्षमा कैसे पा सकूंगा?'

जीवन में यथार्थ और आदर्श के चित्रण, अमीर खुसरो की विशेषता रहे हैं। मज़नुओ लैला, नूह सिपिर अर्थात नौ स्वर्ग, आइने-ए सिकंदरी आदि प्रसिद्ध रचनाओं के अतिरिक्त इनकी फुटकर पंक्तियों में भी सृजन के बहु उपयोगी स्वर मुखरित हुए हैं। भाषा एवं साहित्य के संदर्भ में राष्ट्रीयता एवं एकता की लेखकीय एवं काव्येत्तर प्रेरणा की अनुभूति सबसे पहले अमीर खुसरो

की हुई थी। खिचडी भाषा मे कौतुकी रचनाएँ भी सबसे पहले अमीर खुसरो ने लिखी थी। फारसी छन्द का एक टुकडा वे फारसी मे और दूसरा ब्रजभाषा मे रचते थे। यथा,

जिहाले मिस्की मकुन तगाफुल, दुराया नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ न दारम् ऐ जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥

अमीर खुसरो की रचनाओ का बाहरी ढाँचा इस समय तो केवल पहेलियों, मुकरियो, ढकोसला तथा फुटकर पद्यो एव गीतो मे दीख पडता है जिनकी भाषा खडी बोली के प्राचीन रूप की ओर सकेत करती है। इनकी मृत्यु विक्रम सवत 1381 के अन्तर्गत अपने मुरशिद हज़रत निजामुद्दीन औलिया के वियोग मे हुई थी। ये उन्हीं की कब्र के निकट दफन भी किये गये थे। इनकी रचनाओ के कुछ अश यहाँ प्रस्तुत हैं—

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस॥
श्याम सेत गोरी लिए जनमत भई अनीत।
एक पल मे फिर जात है, जोगी काके मीत॥

इसी तरह अमीर खुसरो की एक और रचना के अश देखिये जो हज़रत निजामुद्दीन के लिये अत्यधिक प्रसिद्ध है—

परबत बाँस मँगाव मेरे बाबुल, नीके मँडवा छावरे।
सोना दीन्हा रूपा दीन्हा, बाबुल दिल दरियाव रे।
हाथी दीन्हा घोडा दीन्हा बहुत बहुत मन चाव रे।
डोलि फँदाय पिया लै चलि हैं, अब सँग नहिं कोइ आव रे।
गुडिया खेलन माँ के घर रह गई, नहिं खेलन को दाव रे।

'निजामुद्दीन औलिया' बहियाँ पकरि चले, धरिहौ वाके पाँव रे॥

अत मे अमीर खुसरो के समसामयिक इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी के शब्दो मे—'ये काव्य की सभी विधाओ के ऐसे पडित थे जो भूत और भविष्य मे कभी नही हुए और कभी नही होगे।'

मिर्ज़ा गालिब

मुग़ल साम्राज्य ने भारत को जो तीन अमूल्य उपहार दिये हैं—ताज महल, उर्दू और मिर्ज़ा ग़ालिब। उनका पूरा नाम मिर्ज़ा असदुल्ला बेग खाँ गालिब था। वे पैतृकता से समरकन्द के निवासी थे लेकिन उनके दादा कौकान बेग खाँ बादशाह शाहआलम के समय में हिन्दुस्तान चले आये थे। उनके पिता का नाम मिर्ज़ा अब्दुल्ला बेग खाँ था। मिर्ज़ा ग़ालिब का जन्म 1797 ईसवी में आगरा में और देहावसान 15 फरवरी, 1819 ईसवी को हुआ था। छोटी सी उम्र में ही पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका लालन पालन उनके चाचा मिर्ज़ा नसरुल्ला बेग खाँ ने किया था। मिर्ज़ा गालिब का बचपन आगरा के जिस मुहल्ले में गुजरा वह गुलाबखाना कहलाता था, जो उस ज़माने में फारसी ज़बान का केन्द्र था। यही कारण रहा कि मिर्ज़ा गालिब पर मुल्ला, मौलवी की तालीम का असर कम और वातावरण का अधिक हुआ। तेरह बरस की उम्र में मिर्ज़ा ग़ालिब की शादी नवाब अहमद बख्श खाँ की भतीजी उमराव बेगम से हो गई। शादी के दो तीन साल पश्चात वे स्थाई रूप से दिल्ली में रहने लगे।

मिर्ज़ा ग़ालिब का इस परिचय से कहीं अधिक महत्वपूर्ण रूप है उर्दू काव्य क्षेत्र में। उर्दू काव्यगगन में छोटे बड़े लाखों सितारे चमके और चमकेंगे, लेकिन इन सबके बीच चाँद की सी रोशनी वाला शायर एक ही हुआ, जिसे इस देश की साहित्य सीमाएँ मिर्ज़ा ग़ालिब के नाम से जानती हैं। उर्दू कविता के संकुचित भाव एवं कला पक्ष को व्यापक चिंतन का आधार देने वाले मिर्ज़ा गालिब ही थे।

यहाँ हम यह कहना न भूलेंगे कि मिर्ज़ा गालिब के जीवन में आर्थिक अभाव और तरह तरह की राजकीय सेवाओं का आधिक्य रहा। मिर्ज़ा के कई संतानें हुईं परन्तु वे अल्पायु में ही काल कवलित हो गई। विनोदी एवं स्वाभिमानी प्रकृति के मिर्ज़ा ग़ालिब का कथन था—

> आज़ाद रौ हूँ और मेरा मसलक है सुलहे-कुल
> हरगिज़ कभी किसी से अदावत नहीं मुझे।

मिर्ज़ा गालिब के स्वाभिमान की एक चर्चित घटना है कि दिल्ली के

तत्कालीन लैफ्टिनेन्ट गवनर टॉमसन ने उन्हें फारसी के अध्यापन हेतु 100 रुपये महीने पर बुलाया। वे जब गवनर के यहाँ गये तो उनका स्वागत करने नौकरो के अलावा कोई नही आया। इस पर उन्होने कहा कि मैंने सरकारी नौकरी को यह समझा था कि इससे मेरा सम्मान बढ़ेगा, लेकिन अगर पूव पुरुषो का अर्जित सम्मान भी चला जाय तो नौकरी से क्या फायदा? और वे लौटकर घर आ गये।

मिर्जा की फाकामस्ती के लिये कहते है कि जब एक बार कर्जा होने पर महाजनो ने नालिश कर दी तो उन्होने अदालत मे शेर पढ़ा—

कर्ज की पीते थे मैं लेकिन समझते थे कि हाँ—
रग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन।

गालिब ने अधिकतर कविता फारसी म की थी। लेकिन प्रारभ की उदू कविता लगता है उन्होने मुह का स्वाद बदलने के लिये की थी। अठारवीं शताब्दी के मशहूर कवि बेदिल के अनुसार मिर्जा ग़ालिब ने भी अपनी कविता को प्रखर वैचारिकता एव जटिल शब्दावलि से लादा लेकिन क्लिष्ट भाव रूपो के बाद भी गालिब की रचनायें अत्यधिक अर्थों म स्वीकारी गइ।

कुछ लोग मिर्जा गालिब को दाशनिक कवि कहते हैं तो कुछ लोग उन्ह व्यक्तित्ववादी और व्यवस्था विरोधी, मुक्त प्रकृति के कवि के साथ साथ सबल गद्यकार भी मानते है। मिर्जा गालिब की रचनाओ मे उदू ए मुअल्ला, फारसी कुल्लियात, लताइफे गबी, उदू हिदी तेगे तेज, नामए गालिब, कातर बुरहान, पच आहग, मेहे नीमरोज, दस्तम्बो और सबद चीन ऐसे महत्वपूण सग्रह हैं जिनमे उनके विविध साहित्य रूपों को देखा जा सकता है। यहाँ पेश हैं उनके क्रमानुसार कुछ महत्वपूण काव्याश। प्रारम्भिक काल की रचना के अनुसार—

न होगा यक बयाबाँ माँदनी से शौक कम मेरा
हुबाबे—मौजए रफ्तार है नक्शे कदम मेरा।
सरापा रहने इश्को नागुजीरे उल्फते हस्ती—
इबादत बक की करता हूँ और अफसोस साहिल का।

मध्यकाल के काव्य सदभ मे—

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक—
कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक।
गमे हस्ती का 'असद' किससे हो जुज मग इलाज—
शमा हर रग मे जलती है सहर होने तक—

और अब पेश है मिर्जा गालिब की कुछ 'अंतिम काल' मे लिखी काव्य पंक्तियाँ—

कोई उम्मीद बर नही आती
कोई सूरत नजर नही आती
आगे आती थी हाले दिल पे हँसी
अब किसी बात पर नही आती
मौत का एक दिन मुअय्यन है
नीद क्या रात भर नही आती ।

दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है
आखिर इस दर्द की दवा क्या है
हमने माना कि कुछ नही गालिब,
मुफ्त हाथ आये तो बुरा क्या है ।

मीराँबाई

भारतीय साहित्य मे चित्तौड की रानी मीराँबाई एक मात्र ऐसी भक्त कवयित्री हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न विद्वानो ने अलग अलग उपमाओ से सुशोभित किया है । 1642 के आस-पास रचित भक्त माल के कवि नाभाजी ने इन्हें गोपिका के सदृश माना है, और डॉक्टर हरमन गोज इनकी तुलना ईसा मसीह से करते है । कही मीराँ को रामतीथ के समान कहा गया है तो कही दक्षिण की कवयित्री अडाल, उत्कल के जगन्नाथ दास, शकुन्तला और सूफी साधिका रबिया और ईसाई भक्तिन टरेसा और ग्रीस की कवयित्री सफो मे इनकी तुलना की गई है ।

आज मीराँ के भक्तिपद भारत के प्रत्यक घर म गाये जाते है, लेकिन उसके विपरीत मीराँ के जीवन वृत एव काव्यवृत को लेकर इतिहासकारो म अनेक मतभेद है । किन्तु सभी दृष्टि भेदों के उपरात अब यह माना जाने लगा है कि मीराबाई का जीवन काल सवत 1555 से 1603 इ० के बीच का है । मीराँ दूदाजी राठौड के चतुथ पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी, जिनका विवाह आगे चलकर मवाडाधिपति राणा सग्रामसिंह के पुत्र भोजराज से हुआ था । परम्परा एव राजकीय व्यवस्थाओं के विपरीत मत के अनुसार

मीरां का विवाहित जीवन कठिन सघर्ष का समय रहा। इनके पदो मे जैसा कि स्थान स्थान पर उल्लेख मिलता है "इन्हें विष का प्याला पीना पडा, सांपो से खेलना पडा, तालाब मे डूबने की आज्ञा का पालन करना पडा तो कही इन पर हाथी छोडा गया, लेकिन इन सब विपदाओ को मीराबाई हँसते हँसते लाँघ गईं। यही कहती रही—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई,
मेरे तो गिरधर गोपाल"

मीरां का रचनाकाल राजस्थान मे सबल शासन तत्र के न होने का वह समय है जब सारे राजघराने आपस मे कलह रत थे। इस समय की राजपूत वीरागनाएँ केवल दो कार्य ही जानती थी—रण मे जाकर स्वय रणचडी का आव्हान करना, या जौहर की ज्वाला में कूद कर हुत हो जाना। लेकिन मीरां का बचपन वष्णव विचार धारा के बीच से गुजरा। इन्होने लोकलाज एव कुल मर्यादा आदि को तोडकर भगवान कृष्ण के चरणो मे अपने को समर्पित कर दिया। कुछ इन्हें जीव गोस्वामी की शिष्या मानते हैं तो कुछ इन्हें रैदास के सप्रदाय की अनुगामिनी, लेकिन इनकी मृत्यु के सबध मे आधिकारिक मत प्रचलित है कि इन्होने द्वारका मे निर्वाण प्राप्त किया था।

मीरां के सबध मे मिलने वाले विभिन्न साहित्यिक एव ऐतिहासिक प्रसगो मे हरीराम व्यास, नाभादास, तुकाराम, ध्रुवदास, नरसी मेहता, नागरीदास, चरणदास, महादेव कवि आदि लिखित सवत 1470 से 1824 तक का सृजन उल्लेखनीय है, जो मीरांबाई के सबध मे प्रामाणिक जानकारी प्रदान करता है।

मीरांबाई का सपूर्ण काव्य ऐसा प्रभावी काव्य है जिसमें नाथपथी, सगुण कृष्ण एव निर्गुण ब्रह्म से सबधित अभिव्यक्ति की त्रिवेणी बह रही हैं। मीरां की रचनाओ मे गीत गोविन्द की टीका, नरसि रो मायरो, सत्य भामानो रूसणो, राग सोरठ, राग गोविद एव पदावली आदि को गिनाया जाता है। लेकिन शोध के निर्णय से हम केवल पदावली को ही ऐसा सर्वमान्य रचना सग्रह मान सकते हैं जो मीरां के सम्पूर्ण काव्य सौष्ठव को अपने मे सँजोये हैं।

मीरां का अधिकाश जीवन राजस्थान मे बीता और इनकी काव्य भाषा शुद्ध राजस्थानी ही थी जो लोकप्रियता के कारण धीरे धीरे अन्य प्रयोगिक प्रभावो से परिवर्तित हो गई। इनका समस्त जीवन आराध्यरूप जोगी से निवेदन, राणा से सघर्ष, कृष्णोन्मुख साधना, और अत में निर्गुणोन्मुख शात

रसात्मक वाणी का परिचायक है। मीरां की यह विरह व्यथा उ हें प्रम दिवानी के रूप में बनाये हुए है—

जो मैं ऐसा जाणती रे,
प्रीत कियाँ दुख हाई
नगर ढिढाग पीटती रे,
प्रीत करो मत कोई।

भगवन भक्ता मे मीरां अग्रगण्य है जो भक्ति की साकार मूर्ति थी। इसी लिए बिना किसी वंश अथवा शिष्य परम्परा क आज भी लोग इन्हे देवी क रूप मे पूजत है, और जिनकी रचनाएँ रामचरित मानस के बाद सवाधिक गय, गभीर एव गण्यमान्य हैं।

ईसरदास

भक्ति धारा के भगीरथ महाकवि ईसरदासजी का स्थान राजस्थान और गुजरात के साहित्य म अविस्मरणीय है। अनेक विवादो के बीच इन्होने जिस उत्तम कोटि के काव्य की रचना की वह आज भी लोक जीवन की धरोहर है। शक्ति और भक्ति को समान रूप से ईसरदासजी ने अपन चिन्तन का विषय बनाया, यही कारण है कि एक ओर उन्हाने 'हाला झाला री कुडलियाँ' नामक वीर रस के ग्रथ मे पौरुष और पराक्रम का चित्रण किया वहीं दूसरी ओर 'हरिरस' लिख कर भक्ति की नूतन दिशाओ के द्वार खोले। ईसरदासजी स्वय बहुत पहुँचे हुऐ भक्त थे। गुजरात के अनेक प्रातो में तथा राजस्थान म आज भी 'हरिरस' का नियमित पाठ, असख्य भक्तजन करते हैं। कहते हैं महाकवि को सिद्धियाँ प्राप्त थी। कुछ विद्वान इन्ह तुलसीदासजी से श्रेष्ठ भक्त कवि बतात हैं, तो कुछ विद्वान उन्हें चमत्कारिक शक्ति के प्रणेता 'ईसरा सो परमेसरा' कह कर सम्मानाभिव्यक्त करते है।

ईसरदासजी के ज म को लेकर विद्वानो मे मतभेद रहा है, लकिन ऐति हासिक दष्टि स अब यह निश्चित हो चुका है कि ईसरदासजी का जन्म सम्वत 1595 की चैत सुदी नवमी को जोधपुर राज्य के अतगत भाद्रेस गाँव मे एक चारण परिवार मे हुआ था। इनके पिताजी का नाम सूजाजी तथा माताजी का नाम अमरबाई था। डिंगल के प्रौढ कवि अशानद, जो अपनी

चतुराई के लिये मारवाड नरेश मालदेव को बहुत प्रिय थे, ईसरदासजी के चाचा और काव्य गुरु थे । इनके जन्म के सम्बन्ध मे एक दोहा प्रचलित है

पनरासो पिच्याणवै, जनम्पा ईसरदास।
चारण वरण चकार मे, उण दिन हुवो उजास ।।

ईसरदासजी का विवाह चौदह साल की उम्र मे देवल बाई के साथ हुआ था किन्तु कुछ समय बाद ही इनकी पत्नी का देहात हो गया। इन्ही दिना ईसरदासजी अपने चाचा और काव्य गुरु के साथ द्वारकापुरी की यात्रा के लिये निकले। मार्ग मे जामनगर मे ही रावल, जाम ने इनका अच्छा आदर सत्कार किया। जब ईसरदास जी द्वारका की यात्रा कर वापिस लौट रहे थे तो रावल जाम ने उन्हें अपने पास जामनगर मे ही रख लिया। रावल ने कवि का 'करोड पसाव' (जो कि उस समय का सर्वोच्च पुरस्कार था) देकर कुछ गाव दिये और अपना 'पोलपोत' बना लिया—

क्रोड पसाव ईसर कियो,
दियो सचाणो गाम।
दाता सिरोमन देखियो,
जगसर रावल जाम।

रावल जाम के अतिरिक्त इनका सबध बीजा दूदावत, जाडेचा जसा हरमलोत झाला रामसिंह मानसिंघोत आदि से भी रहा प्रतीत होता है। ईसरदासजी ने हरिरस के अतिरिक्त अनेक ग्रथो की रचना की, जिनमें हारा, झाला रा कुडलियाँ, देवीयाण, निंदास्तुति, बाललीला, गुण भागवत हस, गुरुडपुराण, गुण आगम, गुण वैराट, सभायव, रामलीला दाणलीला और रासकीला प्रमुख हैं।

आचार्य बदरी प्रसाद साकरिया के शब्दा मे—

'महाकवि ईसरदासजी का व्यक्तित्व सूर्य के समान प्रकाशमान है'। इनकी अनेक रचनाओ मे हरिदास एक अनुपम ग्रथ है, जिसमे निर्गुन भक्ति एव सगुण भक्ति का सुदर समन्वय करके एकोपासना का दिव्य आदर्श उपस्थित किया गया है। इस ग्रथ मे ज्ञान, भक्ति एव कर्म की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित हुई है। कवि सम्प्रदाय के बधन से ऊँचा उठ कर इस प्रकार प्रभु का स्तुति गान करता है—

पुजै पग विम्मल वेद पुराण।
अलीयल नाथ लिये अघाण।।
रमै पग छाँह मधूकर रिक्ख।
तवै पग नाग सरीसा तक्ख।।

लिखम्मी पगां धरैं उरलेह।
रहै सिधबुद्ध पगां तलबेह॥
नमै पग द्राह गौतम्म नारह।
यदे पग गर्ग कपिल वेहद्ध॥
सेवै पग सनक जनक सूर।
अरज्जुण उद्धव और अकरूर॥

गौतम बुद्ध, अर्जुन, उद्धव और अक्रूर सभी पक्षों का समन्वय, इनकी रचनाओं में हमें देखने को मिलता है। इनकी काव्य रचना को देखने से पता चलता है कि ये प्रभु को भिन्न बिंदुओं से देख कर भी उनकी एक ही छवि की अनुभूति करते थे—

द्रतो थयो माधव घुंघट छोड।
कियो मैं ठावो ठावी ठोड॥
आखै सौ जागां देस अऊर।
नहीं जिण माझ तुहालोनूर॥
अहंस्त्र मोहि ज आप अलुज्झ।
गोविंद तुम्हीणो लाधो गुज्झ॥
मुकुंद म पस पड्ढा मांय।
ठावो मे कीधो सरवह ठांय॥
रमै तूं राव जुवाधरि रग।
तुही समद तुही ज तरग॥
हुवा हिव स्वामी सेवक हेक।
ओलखे अतर रुप अलेख॥
आयो हिव हेक जुवो किम थाय।
मिलेगो नीर गगोदक मांय॥

आदश भक्तिरस का पर्याय 'हरिरस' भक्तों के लिये गीता के समान है जिसमे नाम महिमा, हरिरस महिमा, अवतार चरित्र, आत्मनिवेदन और स्तुति के सर्गों मे निरुपाधि ब्रह्मसत्ता का अकन, सजीवता व सहजता से किया गया है—

नही तू करता नही तू क्रम्म।
नही तू व्याल नही तू ब्रह्म॥
नहीं तू देव नहीं तू दैत।
नही तू भेव नही तू भैंत॥

इसी भांति हरिरस मे सववाद की ओर सकेत करते हुऐ ईसरदामजी लिखते हैं—

दवे किसी उपमा देऊ,
तै सिरज्या सह कोय।
तू सारिसो तू हिज तू,
अवरन दूजो कोय ॥

हरिरस मे यत्र तत्र गुजराती शब्दो का प्रयोग उनकी रचनाओ को भाव व भाषा दृष्टि से तो सबल बनाता ही है, साथ ही उसमें शैली की भी वे सभी विशेषताएँ समाहित कर देता है जो किसी श्रेष्ठ रचना प्रक्रिया मे होना आवश्यक है।

ब्रह्म के विराट रूप का वणन करते हुए ईसरदासजी एक स्थान पर कहते हैं—

सघण नीर सीतल सु,
करता विज्जण समीर कर
उदभिज भार अढार,
पुण्य धर परिमल ऊपर
बजै इद्र बाजत्र,
करै ककर कीरती
अलख कमल ऊपरां
अरक ससिहर आरता
धुनी करै अमर मगल
घमल मे तुबुरु गावत गुण,

'हरिरस' मे जहाँ भक्ति की चरम सीमा अकित की गई है वहाँ भगवद् साक्षातकार और मिलन का वणन उच्च कोटि के साधानात्मक रहस्यवाद का द्वार खोलता है। महाकवि ईसरदासजी के सबध मे स्वर्गीय ठाकुर किशोरसिंह वार्हस्पत्य का कथन है कि इन्होंने अपने काव्य मे चौबीसो अवतारो का गुण-गान किया है।

पृथ्वीराज राठौड

राजस्थान मे लोक सस्कृति या राजाओ के चरित्र गायक कवि तो बहुत हुए हैं, लेकिन महान् जीवन लीला को असमान समाज पर चित्रित किया है केवल राठौड पृथ्वीराज ने। बीकानेर नरेश राव कल्याण मल के पुत्र और राव जैतसी के पौत्र, पृथ्वीराज कोमल एव कठोर भावनाओ के सफल कवि हैं। कनल टॉड के अनुसार 'पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तो में एक श्रेष्ठ वीर थे। अपनी कविता द्वारा किसी भी काय का पक्ष उन्नत कर सकते थे, और सोने की तलवार लेकर भी लड सकते थे। इतना ही नही राजपूताने के कवि समुदाय ने एक स्वर से गुणिता का सेहरा भी इ ही वीर राठौड के सिर पर बाँधा था।'

भक्त नाभादास के 'भक्त माल के अनुसार —

सवैया गीत श्लोक, वेलि दोहा गुण नवरस।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरिजस॥
परिदुख विदुख सश्लाघ्य, वचन रसना जुउच्चार।
अथ विचित्रन निमोल, सबै सागर उद्धारै॥
रुकमिनी लता बरणन अनुप, वागीस वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभय भाषा निपुण प्रथीराज कविराज हुव॥

ऐसे गुण योजक पृथ्वीराज, बादशाह अकबर के दरबार म रहा करते थे। 'मुहता नैणसी की ख्यात' के अनुसार अकबर न गागरोन का किला खीचीराव अचलदास को युद्ध मे परास्त करने पर इन्ही को दिया था।

इनका ज म सवत 1606 मे और स्वगवास सवत 1657 मे हुआ था। कहते हैं इनके तीन विवाह हुए थे—पहला महाराणा उदयसिंह की पुत्री से, दूसरा जैसलमेर के रावल हरराज की बेटी लालादे से और तीसरा लालादे की मृत्यु के पश्चात उसकी छोटी बहिन चम्पादे से। ये चम्पाद वही हैं जिह हम कवयित्री के रूप म स्वीकारते हैं। स्वभाव से निर्भीक एव स्वाभिमानी पृथ्वीराज डिंगल, ब्रज और सस्कृत के प्रौढ विद्वान थे तथा इन्हें सगीत, ज्योतिष, दशन और छन्द शास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान था,

घर वाँकी दिनपाधरा मरद न मूक माण।
छणा नरिंदा घेरियो, रहै गिरदा राण।

बाही राण प्रताप सी, बगतर मे बरछीह।
जाणक झीगर जाल मे, मुह काढ्यो मच्छीह ।।

दयाल दास री ख्यात, दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, एल० पी० टैसीटरी, अकबरनामा, वीर विनोद, दलपत विलास, राघोदास रचित भक्तमाल, तबकात अकबरी, बाँकीदास की ऐतिहासिक बातें, भारत के प्राचीन राजवश आदि ऐसी अनेक महत्वपूर्ण उल्लेखिकाएँ हैं जिनके द्वारा राठौड राज पृथ्वीराज का, विविध पक्षो मे चर्चा का विषय बनाया गया है।

फुटकर दोहे छोडकर मिश्र बन्धुओ द्वारा उल्लेखित 'प्रेम दीपिका' और डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल द्वारा परिचित 'श्याम लता' नामक ग्रथ के अतिरिक्त, इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—

वेलिक्रसन रुकमणी री, ठाकुरजी रा दूहा, गगा जी रा दूहा, -दसम् भागवत रा दूहा, आदि।

वेलिक्रसन रुकमणी री राजस्थानी साहित्य ससार की ही नही अपितु अखिल भारतीय स्तर पर काव्य की ऐतिहासिक कृति मानी जाती है। 304 छन्दो की यह रचना डिंगल की श्रेष्ठ कृति है। पृथ्वीराज के समकालीन कवि दुरसा आढा ने तो इसे 'पाँचवा वेद' और 'उन्नीसवाँ पुराण' कहा है। स्थान स्थान पर वेलि की बीसियो हस्तलिखित प्रतियो का प्राप्त होना, साँयाजी झूला रचित 'रुखमणी मगल' तथा कुशललाभ रचित 'ढोला मारुरी चौपई' के अकबरी प्रवादो से जुड जाना भी, वेलि की लोकप्रियता का परिचायक है। भागवत के मूल कथानक पर आधारित वेलि, शृंगार रस प्रधान वर्णनात्मक काव्यकृति है। मगलाचरण के पश्चात वेलि की नायिका रुक्मिणी का वर्णन है जो ग्रन्थ रचना लक्षण से भिन्न है।

सुकदेव, व्यास, जैदेव सरिखा, सुकवि अनेक ते एक सन्थ।
स्त्री वरणण पहिलो कीजै तिथि गूथियै जेणि सिंगार ग्रन्थ ।।

कर्नल टॉड के अनुसार पृथ्वीराज की कविता मे दस हजार घोडा का बल है। वेलि मे रसराज शृगार की प्रधानता कही भी अमर्यादित रूप मे नही हुई है। इसमे रुक्मिणी की बाल्यावस्था, यौवनागमन, शिशुपाल की बारात और कुन्दनपुर की सजावट, कृष्ण को पत्र, देवी पूजा अवसर का शृगार, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण एव युद्ध, विवाह और मिलन, प्रभात, षट्ऋतु प्रद्युम्न अनिरुद्ध की उत्पत्ति, रुक्मिणी का साख्य मडल, वेलि-महात्म्य और कवि की आत्मश्लाघा (दिव्य प्रेम और भक्ति की घोषणा) का मुख्य वर्णन है।

वेलि मे कलापक्ष एव भावपक्ष का सम्मेलन, ध्वनिशब्दों का प्रयोग,

लालित्यपूर्ण भाषा, अलंकारिक चित्रण, छन्द विधान, सहज भावरसोत्तेजन और शब्द चयन गम्भीरता से हुआ लगता है। जैसे—

कलकलिया कुन्त किरण कलि ऊकलि, वरजित विसिख विवरजित वाउ।
घडि घडि धबकि धार धाराजल, सिहरि सिहरी समरवह सिलाउ ॥119॥

बोलन्ति मुहरमुह विरह गमै वे, तिसि सुक्ल निसि सरद तणी।
हसणी ते न पास देखै हंस, हंस न देखे हंसणी ॥207॥

वधिया तनि सरवरि वैसि वधन्ती जोवण तणउ तणउ जलु जोर।
कामणि करग सु वाण काम रा, दोर सु वरुण तणा किरि दोर ॥23॥

धर धर शृंग सधर सुपीन पयोधर, घणी खीण कटि अति सुघट।
पदमणि नाभि प्रियाग तणी परि, त्रिवलि त्रिवेणी श्रोणी तट ॥25॥

चतुरविध वेद प्रणीत चिकित्सा, ससत्र उखध मत्र तत्र सुवि।
काया कजि उपचार करतौ, हुवै सु वेलि जपन्ति हुवि ॥281॥

ऐसी, चिकित्सकी की चिकित्सा, वेलि के अंग प्रत्यंग का वर्णन स्वयं अनेक ग्रन्थों की सर्जना का आधार बन सकता है। यही नहीं वेलि क्रिसन रुकमणी री कवि पृथ्वीराज की 'सम्पूर्ण' बौद्धिकता का परिचायक ग्रंथ है—

ज्योतिषी वैद पौराणिक जोगी सगीती तारकिक सही।
चारण, भाट, सुकवि, भाखा चित्र, करि एकठा तो अरथ कहि ॥296॥

ठाकुरजी रा दूहा ये राम और कृष्ण से सम्बन्धित भक्ति परक दोहे हैं। राम वदना के 50 दोहे दसरथ रावउत' और कृष्ण वदना के 165 दोहे वसदेव रावउत' के नाम से युक्त है। जसे—

दसरथ रावउत—

सुदर स्याम सरीर, अक कउसिल्या आंगणें।
बाधण लाग उवीर, दिनि दिनि दसरथ देव उत ॥
करि अबहरि करागि, धर रावण भीतर घटा।
खिवी तुहारिइ खागि, दामिणि दसरथ रावउत ॥

वसदेव रावउत—

प्रभु दे फण फण पाग, थेइ थेइ तनु करतायया।
नचायौ त नाग विहवल वसदेरावउत ॥
आतम काया आथि मनसा वाचा करमणा।
हरि मैं तोर हाथ, वेच्या वसदेरावउत ॥

गगाजी रा दूहा इन 88 दोहों मे महानदी, पतित पावनी गगा का माहात्म्य वर्णित है—

नित नित नवा नवाह भजण करिठा मानवाह।
भव टालीयो भवाँह, भव कीजइ भागीरथी ॥
कीधा पाप जिकेह, जनम जनम मइ जूजुवा।
तइ भाँजिया तिवेह, भेला ही भागीरथी ॥

दसम भागवतरा दूहा इसमे कृष्ण भक्ति परक 184 दोहे हैं जो शान्त एव प्रौढ़ता की परिमार्जित रचना है।

इसके अतिरिक्त राठौड लिखित 'आरती' करणी माता का गीत, सोहला, पन भी इनकी बहुमुखी काव्य प्रतिमा को पुष्ट करते हैं। साथ ही इन्होने कवि मधोदास, केसो, मालो, दुरसा आढा और रतनसी उदै मेहावत, जोध सोलकी, राव रायसिह देवडे, राणे प्रतापसिह, जगमाल उदैसिधोत, कला रायमलोत, सेरखान, अचलदास कछवाह, भोपत चहुवाण, दलपत राय सिंघोत पाहभीमा आदि अनेक राजवीरो के गीत लिखे, जिनम राष्ट्रीयता के नवीन सदर्भों को पूरे उत्साह के साथ प्रस्तुत किया लगता है। यह बात जगत प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज राठौर के काव्यपत्रों को पढकर ही, महाराणा प्रताप ने अकबर की आधीनता का विचार सदा के लिये त्याग दिया—

पटकू मूँछा पाँण, कै पटकू निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महेली बात इक ॥
माई एहडापूत जण, जेहडा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणें साँप ॥

अपने गुरु विठ्ठलकी की प्रायना के अतिरिक्त—भक्ति एव वैराग्य के प्रेरक दोहा मे कवि पृथ्वीराज राठौड ने सासारिकक्षण जीवन को भली तरह अगीकार किया है—

काया लागी काट, सिकलीगर छूट नही।
निरमल हुवै निराट भेटयाँ सूँ भागीरथी ॥
जब तिल जितरो हेक हेक कणूकी हाड रो।
मुवा पछै ही माय, भेलै गत भागीरथी ॥
प्राणी अनकारा पुहवि, गोविन्द छडि न गठि।
तूँ वी तजि सादूर तरिसि, काक्र बधे कठि ॥

कवि पृथ्वीराज के सतान हुई या नही उसका समुचित ज्ञान इतिहास ग्रन्थो से तो नहीं होता लेकिन इतना तो विश्वास पूवक माना जाता है कि इनके वशज पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं, जो बीकानेर राज्य मे स्थित ददरेवे के ठाकुर हैं। कवि के देहावसान पर बादशाह अकबर की स्थिति के इस दोहे से—

पीथल सा मजलिस गई, तानसन सा राग।
रीम बोल हँस खेलिबो, गयो बीरबल साथ॥

ध्वनित होता है कि ये विपरीत वातावरण मे भी स्वाभिमान एव सम्मान से जीने वाले पुरुष थे। दुरसा आढा के शब्दो मे कवि शिरोमणि पृथ्वीराज राठौड राजस्थान के गौरव रत्न हैं जिन्होने वो सब कुछ लिख डाला जिसे भगवान वदव्यास भी नही लिख पाये—

मैं कहियो हरभगत प्रिथीमल अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया वड॥

रज्जब

एकता के भावना वाहक कवि रज्जब राजस्थान के लिये गरिमा के विषय हैं। इनका सम्पूण सृजन अध्यात्म और सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया से ओत प्रोत है। कहते हैं कवि रज्जब जाति से पठान थे और तत्कालीन जयपुर राज्य के साँगानेर नामक स्थान मे सवत 1624 के आसपास पैदा हुए थे। इनका असली नाम रज्जब अली खाँ था। कहते हैं यह कोई बीस वष की आयु मे विवाह करने के लिये साँगानेर से आमेर आये थे तब वहाँ इनकी भेंट सत दादूदयाल से हुई। कहावत है कि आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास। रज्जब जी विवाह करने आये थे पर विवाह करना छोडकर सत दादू के शिष्य बन गये। इनको देखते ही कहते हैं दादूजी के मुख से यह दोहे निकले—

कीया था कुछ काज को, सेवा सुमिरन साज।
दादू भूल्या बदगी, सरया न एको काज॥
रज्जब तैं गजब किया, सिर पर बाधा मार।
आया था हरिभजन को करै नरक को ठौर॥

तभी से यह सत दादू के साथ रहने और कथा कीतन व सत्सग आदि करने लगे। राघोदास ने भी अपनी भक्त नामावली मे दादूजी के बावन शिष्यो का उल्लेख करत हुए इनका नाम गिनाया है। आगे चलकर इन्ही बावन शिष्यो की परम्परा की कीर्ति स्वरूप बावन थामे बने। इस बात की पुष्टि राम सनेही सप्रदाय के प्रवतक रामचरणदासजी की वाणी से भी होती है। यथा—

दादू जैसा गुरु मिलै, शिष रज्जब सा जाण।
एक शब्द मे उधर्‌या, रही न खेंचा ताण ॥

कवि रज्जब गुरु भक्त सत थे। गुरु भाई बखनाजी के यहाँ इनका आना जाना काफी था। दादू जी की मृत्यु के बाद यह भी अधिकतर आखें बद किये रहते थे। कवि रज्जब के कोई दस शिष्य थे तथा यह सवत 1746 मे ब्रह्मलीन हुए थे। आज भी साँगानेर मे इनकी मुख्य गद्दी है। इनके शिष्यो को रज्जवाते अथवा रज्जब पथी कहने का रिवाज है। उल्लेख मिलता है कि दादूजी के एक अन्य शिष्य सु दरदासजी भी इनके पास सत्सग के लिये आया करते थे।

इनकी वाणियो की सख्या कोई दस हजार स अधिक मानी जाती है। जिस प्रकार मीराँबाई तुलसीदास, सूरदास और दादूदयाल बहुश्रुत सत है उसी प्रकार सत कवि रज्जब भी लोकश्रुत कवि हैं। वाणी और सरवगी नामक इनके दो ग्रथ प्रसिद्ध है। इनकी सभी रचनाओ से अगाध ज्ञान निश्चल प्रेम, विषय विविधता तथा पाडित्य का पता चलता है। दृष्टान्त और विवरण देने की क्षमता मे कवि रज्जब की रचना बेजोड है।

कबीर और रहीम जैसे सुधारक रचनाकारो की भाँति ही सत रज्जब भी आपसी प्रेम और भेदभाव रहित परिवतनशील समाज की स्थापना के गायक कवि रहे हैं। इनकी रचनाओ मे इधर-उधर ब्रजभाषा का प्रभाव भी पाया जाता है। इनके चरित्र की विशेषता के लिये ही कवि जन गोपाल ने दादू जन्म लीला परची मे कहा है—शिष्य एक रज्जब अधिकारी, ज्ञानी गुनी सूरा अधिकारी।

कवि रज्जब की रचना की बानगी प्रस्तुत है—

हिन्दू पावेगा वही, वो ही मुसलमान।
रज्जब किणका रहम का, जिस कू दे रहमान ॥
नारायण अरु नगर के, रज्जब पथ अनेक।
कोई आवा कही दिसी, आगे अस्थल एक ॥
सरणा साईं साधकी, पकडि लेहि रे प्राण।
तो रज्जब लागै नही, जम जालिम का बाण ॥
नामरदा भुगती नही, मरद गये करि त्याग।
रज्जब रिधि क्वाँरी रही, पुरुष पाणि नहिं लाग ॥
समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
उन्हाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप ॥
सबसे दे सबसे लिया, सिष गुरु कने आय।
रज्जब महप मिलाप की, महिमा कही न जाय ॥

दादू दरिया राम जल, सकल सत जन मीन।
सुख सागर मे सब सुखी, जन रज्जब को लीन ॥
नाव निरजन नीर है, सब सुकृत बनराय।
जन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाय ॥

हिन्दू मुसलमान और सुख सागर मे सबके सुख की एक सी कल्पना करने वाले कवि रज्जब की रचनाओ मे सामाजिक आवश्यकता की दृष्टि के अलावा सासारिक नश्वरता की भी स्थान-स्थान पर चर्चा है। उनका एक प्रसिद्ध पद है—

सतो मगन भया मन मेरा।
अहनिस सदा एकरम लागा, न्यिा दरीबे डेरा ॥
कुल मर्यादा मैड सब भागी बैठा माटी नेरा।
जाति पाँति कछु समझो नाही किसकू करै परैरा ॥
रस की प्यास आस नही औरा इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव या ही लै लागी पीवै फूल घनेरा ॥
सौ रस मागया मिले न काहू सिरसा है बहुतेरा ॥
जन रज्जब तन मन दे लीया होय घणी का चेरा ॥

अन्य कवियो की तुलना मे इनकी रचनायें अधिक हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक है। कवि रज्जब ने जिस समय मे यह सब लिखा उस समय देश काल की परिस्थिति असामान्य थी। हुमायू के पुत्र अकबर ने दिल्ली का शासन भार सँभाला ही था। उनकी उदारता और सदाशयता के पीछे निज विचार को स्थापित करने का प्रयास ही रहता था। लेकिन कवि रज्जब ने शासको की इन सभी अन्तर्धाराओ को समझते हुए सब धर्म समन्वय के स्वर को अपने जीवन मे रक्खा था। कवि रज्जब ने धम के प्रसारक साधुओ के विभिन्न पक्षो का भी अपनी रचनाओ में वर्णन किया है। वह साधु के लिये कहा करते थे—

साहिब सो साधू बडा, साधू बडा न कोई।
रज्जब दख्या गुर दृष्टि सब, नीकै करि जोई ॥

सग और कुसग के लिये कवि रज्जब कहा करते थे—

रज्जब रहे कुसग मैं, कुमति उदय ह्वै जाय।
सुरापान क कूम्भ मैं खीर क्वार हुवे जाय ॥
विष मिश्री पानी सहित, खाय सु होवे मीच।
त्यूँ उत्तम करणी कुचल, रज्जब परिहरि नीच।

इस तरह कवि रज्जब की रचनाभूमि एकता क उन सभी आयामो का स्थापित करन की भूमिका है जिस हम सांस्कृतिक एकता के अनेक सदर्भो मे खोजते हैं।

जानमुहम्मद

एकता के भावनावाहक कवियो मे जान उर्फ यामत खाँ का नाम एक विशिष्टता का प्रतीक है जिसे हम उसके व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से भली भाति जान सकते हैं। राजस्थान मे मुसलमान कवियो द्वारा हिन्दू विचार भूमि पर जो रचना हुई वह एक गौरव का विषय है। बादर ढाढी काजी मोहम्मद, वाजिद और रज्जब की कृतियो मे भारतीयता का ऐसा ही सूक्ष्म विवेचन है जो कुल मिलाकर साहित्य और समाज के मौलिक स्वरूप को निश्चित करने मे बहुत सीमा तक सहायक समझा जा सकता है।

जान कवि उर्फ न्यामत खाँ का जन्म तत्कालीन जयपुर राज्य के सीकर इलाके मे फतहपुर परगने के कायमखानी नवाबो के वश मे हुआ था। कायमखानी वश का मूल पुरुष करमसी नामक चौहान राजपूत था जिसे फीरोजशाह तुगलक के ओहदेदार सैयद नासिर ने सवत 1440 मे मुसलमान बनाया और उनका नाम बदल कर कायम खाँ रख दिया। जान कवि फतहपुर के आठवें कायमखानी नवाब थे। फतहपुर शेखावाटी के इस पुराने नवाब को काव्य सृजन का शौक था। कवि जान केवल काव्यकार के रूप मे लिखा जाता था क्योकि जान कवि का असली नाम तो न्यामत खाँ था। इनके पिता का नाम अलफ खाँ था। यह अपने पिता के पाँच पुत्रो मे दूसरे थे। कहते हैं इनका रचनाकाल सवत् 1671 से सवत् 1721 तक रहा जिसमे इन्होने कोई पचहत्तर से अधिक उल्लेखनीय नामजीवी ग्रथो की सर्जना की। इन ग्रथो के नाम हैं—

1 मदन विनोद, 2 ज्ञान दीप, 3 रस मजरी, 4 अलफखाँ की पेडी, 5 कायमरासो, 6 पुहुप बरखा, 7 कँवलावती कथा, 8 बरवा ग्रथ, 9 छबि सागर, 10 कलावती कथा, 11 छीता की कथा, 12 रूप मजरी, 13 मोहिनी, 14 चद सेनराजा सील निधान की कथा, 15 अरदेसर पातिसाह की कथा, 16 कायरानी या पीतमदास की कथा, 17 पाहन परिहा, 18 शृगार शतक, 19 भाव शतक, 20 विरह शतक, 21 कथा कलदर की, 22 बलूकिया, विरह की कथा, 23 तमीम अनसारी की कथा, 24 कथा निर्मल की, 25 सतवती की कथा, 26 शीलवती की कथा, 27 कुलवती की कथा, 28 खिजरखाँ शाहिजादा और देवल देवी, 29 कनकावती की

कथा, 30 चेतन नामा, 31 कौतुहली की कथा, 32 कथा सुभटराय की, 33 बुद्धिसागर, 34 कामलता कथा 35 सिख ग्रथ 36 सुधा सिख ग्रथ 37 बुधि दायक, 38 बुधिदीप 39 घूघट नामा, 40 दरस नामा, 41 अलक नामा 42 ?रसत नामा, 43 बारहमासा, 44 सतनामा, 45 बन नामा, 46 बादीनामा 47 बाजनामा, 48 कबूतर नामा, 49 गूढ ग्रथ, 50 देसावली, 51 रसकोव 52 उत्तम सबह, 53 सिख्या सागर, 54 वैद्यक सिख शतपद, 55 शृगार तिलक, 56 प्रम सागर, 57 वियोग सागर, 58 परऋतु पवगम 59 रस तरगिनी, 60 रतन मजरी, 61 नलदमयती, 62 पैमुनामा 63 मान विनोद, 64 विरही का मनारथ, 65 जफरनामा, 66 पद नामा, 69 भावकल्लान 68 कदप कल्लोल, 69 नाम माला अनेकार्थी 70 रत्नावली, 71 सुधा सागर, 72 श्वास सग्रह 73 लैला मजनू, 94 कवि वल्लभ, 75 वेदक मति ।

कवि जान के इन ग्रथो को पढ कर लगता है कि यह मूलत शृगार रम के गायक थे। इन्होने अधिकाश प्रेमाख्यान इसी परिप्रेक्ष्य मे लिखे। शायद यही कारण रहा कि इन्हे प्रेमाख्यानो का सबसे बडा रचनाकार कहा जाने लगा। इसके अतिरिक्त कवि जान ने व्यक्तिपरक, भक्तिपरक और नीति परक ग्रथ भी लिखे। धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से अय धर्मों की अच्छी बातो को अपने सृजन का विषय बनाया। आज हम यह बात भले ही नई या महत्वपूण न लगे पर आज से लगभग 300 वष पूव धार्मिक एकता की यह भावना आश्चय और साहस की बात समझी जाती थी। इनकी विविध विषय रचना के बाद यह भी निष्कप निकाला जा सकता है कि यह अध्ययनशील बहुमुखी सामाजिक प्रतिभा के धनी थे। वरना साधारणतया कोई भी रचना कार विषयो की इस विविधता को अधिकार से भली भाति चित्रित नही कर सकता।

कवि जान पिगल मिश्रित भाषा म स्वाभाविक धारा प्रवाह से लिखते थ जो स्थान-स्थान पर भावुकता और रोचकता लिये होती थी। जान कवि अरबी, फारसी और सस्कृत आदि भाषाओ के जानकार थे। सस्कृत के प्रसिद्ध ग्रथ पचतत्र को ही आधार मान कर इन्होने अपने बुधि सागर ग्रथ की रचना की। कयामखाँ रासा, इनका बहुचर्चित ग्रथ है जिसमे तटस्थ दष्टि स कवि जाने सृष्टिकर्त्ता मुहम्मद को स्मरण कर अपने पिता दीवान अलफ खाँ और उसक वश का सत्य इतिहास लिखा है। इसके अनुसार कवि जान ने कयाम दवाँ सभा मे चौहान वश का वणन और उसके रूप-परिवतन के बाद का इतिवृत्त बताया है।

कवि जान गुरुवद रचनाकार थे । इन्होने हाँसी के शेख मोहम्मद चिश्ती को अपना गुरु बताया है—

> शेख मोहम्मद मेरो पीर, हाँसी ठाम गुनीन गभीर ।
> शेख मुहम्मद पीर हमारो, जाको नाम जगत उजियारो ।
> रतन गाँव जानहुतिहुँ हाँसी, देखत कटे चित्त की फाँसी ।।

कवि जान की सरस रचना प्रक्रिया का एक और अश यहाँ प्रस्तुत है—

> कत कह्यो हौं विदेस को जैहा सुने तिय को उपज्यो दुख भारी ।
> झाँकि रही नमबोरि त्रिसोदरी हा हा दद करिहौ जिन प्यारो ।।
> दौरि सदिव गई कुज लता मधि बोलि है कोकिल की उनिहारी ।
> गौन निवारन को कियो कारन जाति बसत रहे जिन प्यारौ ।।

इसी प्रकार एकता के भावनायाहक कवि जान को निकट से पढकर आप जान पायेंगे कि यह कवि कितनी सुन्दर सामाजिक परि रचना को जीता था । यदि शोधकर्त्ता कवि जान उर्फ न्यामत खा के ग्रथ को सही रूप मे पाठको तक ला पायें तो निश्चय ही साहित्य भारती को सृजन के नये रूप प्राप्त हो सकेंगे ।

दरिया साहिब

दरिया साहब के नाम से प्राय दो भक्त गायको को जाना जाता है । एक विहार वाले दरिया दास और दूसरे हैं राम स्नेही दरिया साहिब, जिनका अधिकाश काय क्षेत्र राजस्थान मे रहा । अब हम राजस्थान के इसी लाक सजक सत कवि का परिचय करेंगे ।

राम स्नेही कवि दरिया साहिब का जन्म विक्रम सवत 1733 म जाधपुर जिले के जैतारण गाँव मे हुआ था । कुछ विद्वान अपनी टिप्पणी मे यह मानत हैं कि दरिया साहिब जाति से धुनिया अर्थात मुमलमान थे किन्तु इस तथ्य का कहीं किसी रूप मे उल्लेख देखने में नही आता और न ही दरिया साहिब न या उनके शिष्यों ने इनके जाति पक्ष पर कही कोई प्रकाश डाला है । आज भी दरिया साहिब का कोई भी अनुयायी इन्हें मुसलमान तो नही मानता । कहते है सन् 1890 मे जोधपुर राज्य की सैन्सस रिपोट मे दरिया साहिब को मुसल मान लिख दिया अत तभी से यह धारणा आज तक विचार का विषय बनती चली आई ।

म सूक्ष्म अभ्यास और गहरा अनुभव झलकता है। कहने का इनका अपना निराला ढग है जो सरल एव मधुर भाषा शैली मे भक्ति और लोक भावना के लोक रग को सहजता से स्थापित करता है। यह विश्वास से कहा जाता है कि शब्द अभ्यासी सतो की बानियो मे दरिया साहिब की बानी ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। दरिया साहिब हिन्दी, संस्कृत और फारसी आदि कई भाषाओ के जानकार थे। काव्य रचना मे निपुण दरिया साहिब ने एक बहुत बडा ग्रथ लिखा था जिसमे बहुत बडी सख्या मे पद और दोहे आदि है। यह ग्रथ 'वाणी' नाम से पाठको के बीच गभीरता के स्तर पर जाना जाता है। रामस्नेही सप्रदाय मे दरिया साहिब ही ऐसे एकता के भावनावाहक सत कवि हुए हैं जिनकी कि रचनाओ को सुव्यवस्थित और कवित्वपूर्ण कहा जा सके। इनकी रचना की बानगी देखिये—

गुरु आये धन गरज करि, सबद किया परकास।
बीज पडा था भूमि मे, भई फूल फल आस॥
जो काया कचन भई, रतना जडिया चाम।
दरिया कहै किस काम का, जो मुख नाही नाम॥
दरिया बगुला ऊजला, उज्ज्वल ही हैं हस।
ये सुरवर मोती चुग, वा के मुख मे मस॥
सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात॥
कचन कचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठो झूठ है, साँच साँच सो साच॥
साध पुरुष देखी कहै, सुनी कहैं नहिं कोय।
कान सुनी सो झूंठ सब, देखी साचा होय॥

इसी प्रकार दरिया साहिब ने सूर का अग, ब्रह्मपरचे का अग, साध का अग, बिरह का अग, सतगुरु का अग, सुमिरन का अग, उपदेश का अग, पारस का अग आदि कई नाम रूपा भक्ति दोहे लिखे है। इसके साथ साथ दरिया साहिब ने विभिन्न रागो पर आधारित मिश्रित साखी एव पद भी लिखे जिनमे आराधना और साधना के असख्य रग भक्तो के लिये एक साथ मडित किये गये है। भाव, भाषा और व्यवस्था की एकता के गायक कवि दरिया साहिब इसी कारण से राजस्थान या रामस्नेही सप्रदाय के ही गौरव नही रहे अपितु सभी धर्म, जाति एव सामाजिक सीमाओ के चरित्र नायक माने जाते हैं।

दरिया साहिब के पिता का नाम मानजी और माता का नाम गीगाँ बाई था। इस सबध मे प्रचलित है—

पिता मानजी जान गीगाँ महतारी।
विविध मेटण ताप, आप लियो अवतारी ॥

माता पिता को पाकर भी दरिया साहिब का लालन पालन पुराने मारवाड राज्य के रैण गाँव में नाना नानी ने किया। ईश्वर भक्ति की पिपासा इनको बचपन से ही थी। प्रारभ मे दरिया साहिब का साक्षात्कार कई धम रूपो से हुआ पर अन्त मे इन्होने पाया कि यह सभी धर्म समान हैं और इनमे कोई मूलभूत अन्तर नही है। अन्त मे दरिया साहिब प्रेमजी महाराज के पास पहुँचे जो उन दिनो गहरी ख्याति वाले सतो मे माने जा रहे थे। प्रेमजी महाराज बीकानेर के खियानसर गाँव मे रहते थे। प्रेमजी महाराज के चरणो मे बैठकर ही दरिया साहिब ने ज्ञान का सही माग खोजा, जो आगे चलकर इनकी रचनाओ मे शब्द-शब्द के साथ साकार हुआ। जिस परमत्व की प्राप्ति मे दरिया साहिब को बरसा भटकना पडा उसकी प्राप्ति अततोगत्वा इन्हें प्रेमजी महाराज के कारण ही हुई और फिर इन्होने आगे चलकर राम स्नेही सम्प्रदाय की रैण शाखा का प्रवर्तन किया। आज भी रैण म दरिया की मूर्ति है जहाँ बहुत बडी सख्या मे अनुयायी लोग हर वप एकत्रित हो कर दरिया साहिब की वाणी गरिमा को सुनते और गाते है। विक्रम सवत 1769 मे दीक्षित होने के कुछ वप पश्चात ही दरिया साहब जैतारण गाँव से रण गाव चले आये थे।

राम स्नेही सप्रदाय का प्रचार प्रसार राजस्थान के मारवाड क्षेत्र मे तो अधिक है ही पर इसके बाहर भी इस सप्रदाय के असख्य अनुयायी आज दरिया साहिब के नाम धाम को गाते नही अघाते। दरिया साहिब का स्वगवास कोई कहता है विक्रम सवत 1815 मे हुआ तो कोई कहता है कि विक्रम सवत 1805 मे।

दरिया पथी भक्तो का विश्वास है कि दरिया साहिब महात्मा दादूदयाल के अवतार थे। उनका कहना कि दादूजी महाराज ने दरिया साहिब के प्रकट होने से सौ बरस पहले यह साखी कही थी—

देह पडताँ दादू कहे, सौ बरसा इक सत।
रैन नगर मे परगटै, तारै जीव अनत ॥

महात्मा दादू दयाल तथा अन्य सतो की तरह दरिया साहिब ने भी विविध जीवन अगो पर साखियाँ कही हैं इनके प्रेम और विरह के पद भी गहरे और टकसाली माने जाते हैं। इनकी नाद परिचय और ब्रह्म परिचयवाली साखियो

म सूक्ष्म अभ्यास और गहरा अनुभव झलकता है। कहने का इनका अपना निराला ढग ह जो सरल एव मधुर भाषा शैली मे भक्ति और लोक भावना व लोक रग को सहजता से स्थापित करता है। यह विश्वास स कहा जाता ह कि शब्द अभ्यासी सतो की वानियो मे दरिया साहिब की वानी ने महत्वपूण स्थान प्राप्त किया है। दरिया साहिब हिन्दी, सस्कृत और फारसी आदि कई भाषाओ के जानकार थे। काव्य रचना मे निपुण दरिया साहिब ने एक बहुत बडा ग्रथ लिखा था जिसमे बहुत बडी सख्या मे पद और दोहे आदि ह। यह ग्रथ 'वाणी' नाम से पाठको के बीच गभीरता के स्तर पर जाना जाता है। रामस्नेही सप्रदाय मे दरिया साहिब ही ऐसे एकता के भावनावाहक सत कवि हुए हैं जिनकी कि रचनाओ को सुव्यवस्थित और कवित्वपूण कहा जा सके। इनकी रचना की बानगी देखिये—

गुरु आये धन गरज करि सबद किया परकास।
बीज पडा था भूमि मे, भई फूल फल आस॥
जो काया कचन भई, रतनो जडिया चाम।
दरिया कहै किस काम का, जो मुख नाही नाम॥
दरिया बगुला ऊजला, उज्ज्वल ही ह्वै हस।
ये सुरवर मोती चुगै, वा के मुख मे मस॥
सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात॥
कचन कचन ही सदा काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठो झूठ है, साँच साँच सो साँच॥
साध पुरुष देखी कहैं, सुनी कहैं नहि कोय।
कान सुनी सो झूंठ सब, देखी साँचा होय॥

इसी प्रकार दरिया साहिब ने सूर का अग, ब्रह्मपरचे का अग, साध का अग, बिरह का अग, सतगुरु का अग, सुमिरन का अग, उपदेश का अग, पारस का अग, आदि कई नाम रूपा भक्ति दोहे लिखे हैं। इसके साथ साथ दरिया साहिब ने विभिन्न रागो पर आधारित मिश्रित साखी एव पद भी लिखे जिनम आराधना और साधना के असख्य रग भक्तो के लिये एक साथ मडित किय गये हैं। भाव, भाषा और व्यवस्था की एकता के गायक कवि दरिया साहिब इसी कारण स राजस्थान या रामस्नेही सप्रदाय के ही गौरव नही रहे अपितु सभी धम, जाति एव सामाजिक सीमाओ के चरित्र नायक माने जाते हैं।

वाजिद

कवि वाजिद के सबध मे प्रसिद्ध है कि यह एक दिन शिकार खेलने निकले और जगल मे एक हिरणी पर तीर चलाने ही वाले थे कि इनके हृदय से करुणा का निझर फूट पडा। इन्होने तीर कमान तोड कर फेंक दिये तथा जीवन को जीव प्रेम की ओर लगा दिया। ठीक जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि ने शिकारी जीवन से दुखी होकर भक्ति और जगत सेवा के माग को अपनाया उसी प्रकार कवि वाजिद ने भी शिकार की इस छोटी सी घटना से अपने भविष्य की नई दिशा निर्धारित की। यो कवि वाजिद जाति स पठान थे। कवि वाजिद का साधना काल दादू पथ मे बीता। आज भी प्रसिद्ध लोक सत दादू दयाल के 152 शिष्यो मे कवि वाजिद की विशेष रूप मे गणना की जाती है।

दादू सम्प्रदाय के प्रमुख कवि वाजिद ने अपने भक्तिकाल मे कोई चालीस सद्ग्र थो की रचना की जिनमे गुण कठियारानामा, गुण उत्पत्तिनामा, गुण श्रीमुखनामा, अरिल्लो, गुण घरियानामा, गुण हरिजननामा, गुण नाँवमाला, गुण गजनामा गुण निरमोही नामा, गुण प्रेम कहानी, गुण विरह का अग, गुण नीसानी, गुण छन्द, गुण हित उपदेश ग्रथ, पद और राज कीर्तन आदि उल्लेखनीय हैं।

जिस प्रकार कवि दादू दयाल और कवि रज्जब ने अपनी रचना आराधना का मूल स्वर लोकोन्य रखा था उसी प्रकार कवि वाजिद ने भी अपनी समस्त विचार चेतना को समाज और व्यक्ति के उत्थान हेतु समर्पित कर दिया था। रज्जबजी के बहु उत्तम ग्रथ सर्वांगी अर्थात् सर्वांगयोग मे अनेक धर्मगुरुओ के साथ इनकी रचनायें भी आती है। भारत में दादू पथ का इतिहास भावना त्मक एकता की दृष्टि से अधिक सगठित और सफल रहा है। इसका मुख्य कारण यह रहा कि जहाँ इस पथ के अनेक प्रभावशाली सत अनुयायी जाति मे मुसलमान थे वहाँ बहुत अधिकता से इन सतो ने जनजीवन की शुद्धता को सरल एव सटीक ढग से सभी पारम्परिक रूढियो को तोड कर अपनाया। कवि वाजिद का सम्पूर्ण जीवन भी सृजन और जागरण का ऐसा ही उदाहरण

है। जिससे व्यापक स्तर पर लोक कल्याण की प्रेरणा ग्रहण की जा सकती है। कवि वाजिद कहा करते थे—

डाल छाडि गहि मूल मानि सिर मौर रे।
बिना राम के नाम भलौ नहि तौर रे॥
जो हमकू न पत्याय बूझि किहि गाव मैं।
परिहाँ वाजिदा जप तप तीरथ बरतं सब एक नाम मे।

अरिल्ल के छद मे अनेक अगो पर कवि वाजिद ने प्रसाद गुण युक्त सरल सरस रचना की है। कहते है कि छोटे-छोटे चौदह ग्रथा म इनकी पूरी बानी है पर यह सब उपलब्ध नही है। वाजिद जी की भापा मे ओज और प्रवाह है। उदू फारसी शब्दो का कदाचित ही प्रयाग इन्होने अपनी रचनाओ मे किया है। दया और उदारता तथा देह की अनित्यता पर इनके बडे ही भाव पूण अरिल्ल ह। वाजिद जी की कुछ रचना बानगी यहाँ प्रस्तुत है—

अरधनाम पापाण तिरे नर लोइ रे।
तेरा नाम कह्यो कलि माहि न बूडे कोई रे॥
कम सुकृति इकवार बिले हो जाहिंगे।
हरि हाँ, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे॥

अर्थात्—हे मनुष्य। भगवान के आधे राम नाम स्मरण से ही अर्थात् रकार मात्र से समुद्र पर वानर सना ने पत्थर तैरा दिये भला तू इस राम नाम को क्या भूलता जा रहा है। इस ससार म भले कितना ही प्रभावशाली या शक्ति-शाली व्यक्ति हो, इसको कोई नहीं पूछेगा यदि उसने राम का नाम नही लिया।

जिस प्रकार सूय के प्रकाश से रात का अँधियारा नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भगवान की भक्ति से तेरे सभी असत्काय नष्ट हो जायँगे। इस सारे ससार मे ऊँच नीच का कोई महत्व नही है, ऐसा कहना था कवि वाजिद का।

भखे भोजन देह उघारो कापरो।
खाय घणी को लूण जाय कहाँ बापरो॥
भली बुरी वाजिद सबे ही सहेंगे।
हरि हाँ, दरगाह को दरवेश यहाँ ही रहेगे।
दो दो दीपक जोय सु मन्दिर पौढते।
नारी सेंती नेह पलक नही छोडते॥
तेल फुलेल लगाय क काया चामकी।
हरि हाँ वाजिद मद गद मिल गये दुलाई राम की॥

बडा भया सो कहा बरस सो साठ का ।
घणा पढ्या तो कहा चुतुर्विधि पाठ का ॥
छापा तिलक बनाय कमडल काठ का ।
हरि ह्रा वाजिद एक न आया हाथ पसेरी आठ का ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत वाजिद एकता के ऐसे भावनावाहक कवि है जिनकी रचना एव जीवन धारा से समाज और साहित्य, निर्णायक प्रेरणा ले सकता है ।

सूर्यमल्ल मीसण

बदन सुकवि सुत मुकुट, अमर गिरा मतिमान ।
पिंगल डिंगल पटु भये, धुरन्धर चडीदान ॥
दोला सुरजा, विजयिका, जसा र पुष्पा नाम ।
पुनि गोविन्दा पट्प्रिया, अकमल्ल कवि बाम ॥

डिंगल और पिंगल के प्रसिद्ध विद्वान चण्डीदान के पुत्र और सुकवि बदनसिंह के पौत्र सूर्यमल्ल का जन्म चारणा की 'मीसण' शाखा के प्रतिष्ठित कुल मे कार्तिक वदी प्रथमा, विक्रम सवत् 1872 मे बूदी मे हुआ। दोला, सुरजा विजयिका, जसा, पुष्पा और गोविन्दा नाम की उनके 6 पत्निया थी । मा तो राजस्थान के साहित्य मे अनक उल्लेखनीय प्रवृत्तियो का परिचय हमे मिलता है लेकिन सूयमल्ल का काव्य सृजन युगीन भावनाओ और जनचेता प्रक्रियाओ का अद्भुत समन्वय है ।

विद्या प्रेमी सूयमल्ल का सम्पूण जीवन स्वाभिमान और पारम्परिक व्यवस्थाओ से सबद्ध दिखाई देता है। 'वीर विनोद' के रचयिता कवि गणेश पुरी से प्रारम्भ मे अनपढ होने के कारण मिलने से इन्कार कर देना और झज्जर की गणिका के प्रसङ्ग मे रावराजा रामसिंह से ये कहना कि 'राजाजी अब छण बाल्यो वश भास्कर , उनकी मुक्त चिन्तन धारा की प्रतीक घटना है।

विशालकाय, दीघ अरुण नेत्र, पुष्ट भुजदण्ड, भौहा से मिली हुई मूछें, सँवार कर पट्टी बैठाई हुई दाढी, एक हाथ मे नग्न तलवार और दूसरे मे मंजु वादिनी वीणा, नस-नस मे स्फूर्ति और उमग के ओज से पूण सूयमल्ल, भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के बाद पहले कवि थे जिनकी रचनाओ मे सम्पूण युग मानस करवट बदलता दिखाई देता है ।

वंश भास्कर, बलवत विलास, छन्दोमयूख और वीर सतसई के अतिरिक्त कुछ विद्वान राम रजाट एवं सतीरासो के रचयिता भी सूर्यमल्ल को ही मानते हैं। वंशभास्कर कवि की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कृति है। चौहान वंश का प्रारम्भ से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक का वर्णन, इसमे इस ग्रन्थ में मिलता है। गणित, व्याकरण, न्यायशास्त्र, ज्योतिष इतिहास, शकुन शास्त्र वेदान्त दर्शन आदि अनेक विषयों का पाण्डित्यपूर्ण प्रतिपादन वंश भास्कर मे सूर्यमल्ल मीसण ने किया है। 4368 पृष्ठों के इस ग्रन्थ का हर पृष्ठ बूंदी राज्य परिवार के संकल्प एवं साहस की गाथाओं से, युद्ध की अकल्पनीय अवस्थाओं से भाषा, शैली और वर्णन की अलंकारिक विचित्रता से ओत प्रोत है।

वंश भास्कर, पुराणो, महाभारत, चम्पू, माघ, अकबरनामा, तवारीख फरिश्ता, बडवा भाटों की बहियों बूंदी राज्य की ख्यातों और पृथ्वीराज रासो के विशद् अध्ययन के पश्चात् लिखा गया बताते हैं। ग्रन्थ मे ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से युद्ध स्थिति की सजीवता देखते ही बनती है—

लगं दृग मुच्छ फरक्कत लीन।
मनो उरझी वन सी मुख मीन॥
छलै छत रत्त छछक्कन छुट्टि।
फबैं जनु गग्गरि जावक फुट्टि॥
झुकै असिमत्त दुहत्थन झारि।
मनो रजकालि सिलापट मारि॥
छुटैं फटि पटिय लेटिय लम्ब।
तन पट जानि कुबिंद कदम्ब॥
मचै रव टोप उडै फटि मत्थ।
अलाबुव जानि अतीतन हत्थ॥
कढै दृग लग्गि कुनीनिय काल।
मनो कुरु लोहित भोरन माल॥

वंश भास्कर की रचना सूर्यमल्ल ने बूंदी नरेश रामसिंह की आज्ञा से विक्रम संवत् 1897 मे की थी। वंश भास्कर किसी एक भाषा का प्रतिनिधि ग्रन्थ न होकर संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रंश एवं कई भाषाओं के शब्दों का प्रायोगिक ग्रन्थ है। अनेक विद्वानों के मतानुसार—'सूर्यमल्ल मीसण काव्य जगत के बेजोड रत्न हैं जिनकी तुलना आने वाले युग कवि भी न कर पायेंगे।'

गदर के समय क्रान्ति की आवाज बुलन्द करने वालो मे उनका विशिष्ट स्थान रहा है। वीर सतसई की रचना जहाँ उनकी काव्य चातुरी, भाव-वैभव

एव व्यजना शक्ति का प्रमाण है वहाँ वह अनेक मानव वृत्तियो की परिचायक कृति भी है। स्वामी के नमक का मूल्य, कायरता, राजपूत की वीरता और प्रशसा, स्त्रियोचित वीरता तथा सतीत्व, वीर व्यक्ति का स्वभाव, राजपूत का स्वभाव, चारण का कर्तव्य धर्मयुद्ध हेतु आतुरता, कुशल सेनापति की आवश्यकता आदि अनेक विषयो के माध्यम से इस रचना को कवि ने वीरो के लिए प्रेरणा, एव कायरो के लिये दुधारी तलवार बनाया है—

वीकम वरसाँ बीतियो गण चौ चन्द गुणीस।
विसहर तिथ गुरु जेठ वदि समय पलट्टी सीस॥

सवत् 1914 मे लिखी 'वीरसतसई' आज भी उतनी ही प्रभावपूर्ण जान पडती है जितनी कि उस समय थी। उदाहरण के लिए सतसई के कुछ कान्याश प्रस्तुत हैं—

आज घरे सासू कहे, हरख अचानक काय।
बहू बलेवा हूसस, पूत मरबा जाय॥
सहणी सबरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वलय लजाणे नाह॥
हूँ बलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिखावण भाव।
नालो बाढण री छुरी, झपटै जणियो साव॥
इला न देणी आपणी हालरियाँ हूलराय।
पूत सिखावै पालणे मरण बडाई माय॥
मूछ न तोडो कोट मे, कटिया छोडै काल।
काला घर चेजो करो मूसापण मूछाल॥

'वीरसतसई' के अतिरिक्त सवत् 1882 मे लिखी पुस्तक 'रामरजाट', काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। 'रामरजाट मे हाथिया का एक चित्र दृष्टव्य है—

रचे रज डबर धूसर रग।
चलावत पखिय चोर सुचग॥
ममीसर का हरवेत सभाण।
प्रभागिर कज्जल के परमाण॥
इसा गजराज दराज अभग।
धसै नभ चाचर जेण सुचग॥

सूर्यमल्ल (सूरजमल) भाषा विज्ञान मे प्रवीण थे। उनके छन्द शास्त्रीय ज्ञान के सम्बन्ध मे ये दोहा आज भी अत्यधिक प्रचलित है—

भूप कवित्त नरहरि छवै, सूरजमल के छन्द।
गहरो झमर गणेश री, रूपक हुक्मीचन्द॥

सूयमल्ल की काव्य परम्परा को उनके शिष्या ने, जिनमे वल्लभ बारहठ सीताराम बारहठ, हरदान बारहठ, विजयनाथ खिडिया, मोतीराम रत्नु बख्शीराम बारहठ, दत्तक पुत्र मुरारीदान और गणेशपुरी प्रमुख हैं, पूरी तरह से अपनाया।

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार—'क्रान्ति द्रष्टा सूयमल्ल दो युगो के बीच सेतु थे जो साहित्य की अपभ्रशकाल से चली आ रही परम्परा को ईसा की बीसवी सदी तक पहुँचा कर विदा हो गए।' राजस्थानी साहित्य की उत्कृष्ट स्थिति को जानने के लिए महाकवि सूयमल्ल की रचनाओ का अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन की सम्पूणता का जानने के लिए रामायण एव गीता का पाठ।

स्वभाव से अक्खड और सगीत प्रेमी सूयमल्ल वीर रस की ज्योतित आभा थे। एक बार की बात है, वे बूदी के राजमहल मे बैठे, सूय को अघ्य दते हुए कह रहे थे—'हे भगवान भास्कर! एक दिन ऐसा भी उगे कि जब मेरे स्वामी का मुण्ड घोडो की टापो मे लुढकता मिले।' प्राथना स्थल के पास ही राजा रामसिह की नवविवाहिता रानी नगोदणी का महल था। अपने सौभाग्य की अमगल कामना के ये स्वर जब उन्होने सुने तो महाकवि से पूछा कि वे रोज अपने स्वामी के लिए ऐसी अनिष्टसूचक प्राथना क्यो करते है? इस पर सूयमल्ल ने कहा—'मैं यही प्राथना तो करता हूँ कि मेरा स्वामी दीर्घायु ही क्या, अमर हो जाये और यदि तुम भी राजा के पीछे सती हो गईं तो तुम्हें भी सदैव के लिए अमर कर दूगा।'

काव्यावतार सूयमल्ल ने अपनी उदार बुद्धि से काव्य रचना की। जिस प्रकार कवि वीरभाण ईख के रस का घडा थे, कविचन्द्र चपक थे, उसी प्रकार सूयमल्ल ने मानववाणी को सुन्दरता प्रदान की थी। जिस प्रकार सब युद्धो मे, अस्त्रधारियो मे अर्जुन को शिरोमणि माना जाता है, उसी प्रकार ससार के यशस्वियो के सच्चे सेवक सूयमल्ल थे।

वश भास्कर' को जहाँ अनेक विद्वान सृजन की दिशा मे अतिम काय मानते हैं वहाँ सूयमल्ल मीसण को विधाता के समकक्ष मानने वाले राजा-महाराजाओ ने उन्हे नवरसो से युक्त, रमणीय, उपादानरहित, विनाशविहीन नवीन सृष्टि का चितेरा तक कहा है। रतलाम के उमराव श्रवण के ठाकुर जोरावर सिंह के शब्दो मे—

> अत चित दोसै ऊमदा, मत सावत मजबूत।
> दूजा सुकवि न देखिया, सूजा जिसा सपूत॥
> होसी हुवौ न हाल, इसडो सुकवि और है।
> मीसण सूरजमाल, साखाँ सो बीसाँ सिरै॥

अर्थात्—जिसका चित्त अत्यन्त श्रेष्ठ दिखलायी पड़ता है जिसकी मति स्वस्थ और दृढ है ऐसा सूयमल्ल जैसा सपूत कवि दूसरा देखने मे नही आया। ऐसा कवि न तो होगा न हुआ है और न वर्तमान मे उनके बराबर कोई है। सूयमल्ल चारणो की 120 शाखाओ के शिरोमणि है, साहित्य एव समाज जिसे कभी न भुला सकेगा। ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी महाकवि सूयमल्ल का देहान्त सवत 1925 के आषाढ मास की कृष्ण पक्षीय एकादशी को हुआ माना जाता है।

ऊमरदान लालस

प्राय ऐसा माना जाता है कि राजस्थान युद्ध और प्रेरणा, भक्ति और साधना प्रशस्ति और वशगुणानुराग करने वाले कवियो की ही प्रेरक स्थली है लेकिन दूसरी ओर यहाँ जनचेता साहित्यकारो और कवियो का एक और स्वरूप भी हम देखने को मिलता है जो कि जीवन मे व्याप्त सभी आडम्बरो के प्रति मन के भ्रमजाल के प्रति, पद और गौरव के प्रति सचेत कर साधारण जन को नई दिशा दिखाता आया है। सूयमल्ल मीसण ने जहाँ क्रांति के दिनो मे प्रतीक काव्य रचनाए कर जन साधारण मे साहस एवम् दृढता का सचार किया, वहा नवकोठी मारवाड के कवि ऊमरदान लालस ने विवशताओ के समस्त घेरे तोड कर धर्म कर्म व आचरण के प्रति सच्ची अनुभूति परक रचनाओ का सृजन कर नवयुग की अमान्य विचारधाराओ को फैलने से रोका।

कवि ऊमरदान लालस का काव्य काल अग्रजो के विरुद्ध हमारे जाग्रत सघर्ष का समय था। चारो ओर मुक्ति और स्वतत्रता की ज्वाला अपनी चरम सीमा पर थी। ऐसे आदोलित काल मे कवि ऊमरदान लालस का जन्म मारवाड के फलौदी परगने मे वैशाख सुदी दूज, विक्रम सवत् 1908 मे हुआ था। इन्होने अपने जन्म के सबध मे लिखा है—

मुलक मारवाड मे थली के मद्ध जन्म जोय।
चारन वदन चारू, विकल बिसामी कोय॥

बारहठ बखशीराम जी के पुत्र और मेघराज जी के पौत्र, ऊमरदान के दो भाई थे। इनके बडे भाई का नाम नवलदान व छोटे भाई का नाम शोभादान था—

बालवय मे ही पितु मात पर लोक बसे।
भ्रात नवलेस भयो, हुयो खेल हाँसी को॥

बालवय मे ही ऊमरदान के माता पिता का स्वर्गवास हो जाने से और बडे भाई आदि की अवहेलना से इन्हे कुटुम्ब का सुख नहीं मिला और जमीन जायदाद के झगडो से बचकर वे बचपन मे ही खेडाये के रामस्नेही साधुओ के कठी बद शिष्य हो गये थे। इस मडली मे ही उनकी प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा हुई थी। जब कुछ समय बाद इन्हे आत्म ज्ञान हुआ तब य साधुओ का सग छोडकर गृहस्थ बन गये और जीवन को एक नियमित दिशा दी। ये 19 20 वर्ष की आयु मे अंग्रेजी पढने के लिए जोधपुर हाईस्कूल मे भर्ती हुए और इन्होने बडे ही परिश्रम से चौथे पाचवे दर्जे तक पढाई की। इनकी कविताओ मे स्थान स्थान पर अंग्रेजी शब्दो का प्रयुक्त होना, इस बात का सकेत भी है—

नीराकर्न कन को सुचन चक्रवर्तिन को,
पर्न कल्प पोदा को सुसार्टिफिकटसाता को
विक्टोरिया ईश्वरी के दाता वैसराय आवै,
दान कानून दैन सब सुख सत्ता को,

ऊमरदान बहुत सरल प्रकृति के पुरुष थे। ये अपनी पोशाक से पूरे किसान दिखाई देते थे। सदैव प्रसन्न रहने वाले ऊमरदान, सबसे हँसकर मिलते जुलते थे। स्वभाव से अलमस्त और मौजी होने के कारण वे जीवन के मूलभूत सदर्भों को ही गम्भीरता से लेते थे, शेष मे इनका कोई अनुराग नही था। इनकी अलमस्ती का तो कहना ही क्या, यदि कोई इन्हे पूछता कि आपका मकान कहाँ है तो ये कहते—

दुकान है दुकान माँ, मकान ना मकान माँ।
उठाय लठठ, ऊठठ जाम, म्हे फिरा घमाँ घमाँ॥

कवि ऊमरदान के सदैव प्रसन्नचित्त रहने के सबध मे एक बहुत ही रोचक घटना है कि एक बार सवत् 1957 म कवि ऊमरदान उदयपुर मेवाड गय। वहाँ सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा से पहली बार अजायबघर स्थित कार्यालय मे इनकी भेंट हुई। ओझाजी ने जब यह प्रश्न किया कि आपका शुभनाम क्या है? तब इन्होने तत्काल ही अपना नाम 'डेली डिलाइटफुल ऊमरदान' कहकर बताया। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये कितने आनन्दी और मौजी थे, जो अपना नाम तक 'सदा आनन्दी ऊमरदान' बतलाते थे।

लालस ऊमरदान को इतिहास और काव्य ग्रथो की खोज का अत्यधिक शौक था। दुरसा आढा रचित 'विरुद्ध छहतरी' की अमुद्रित प्रति की खोज

का श्रेय इन्हे ही है। कवि ऊमरदान के किसी भी काव्यांश को देखें, उसमें नवीन रस का सकेत हमें दिखाई देगा। इन्होने सामाजिक कुरीतियो का जिस सहजता से खडन किया है, वह देखते ही बनता है। जहाँ इनके काव्य पर सद्‌मूल्यों का प्रभाव है, वहाँ इन्होने बात को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए हास्य और व्यग्य का अत्यधिक सहारा लिया है—

गुरु आप अज्ञानी जुगत न जानी
चेला मुक्त चहन्दा है,
करणी रा काचा साधन साचा
बाचा बहोत बकन्दा है

(सत असत सार)

गुरु गुगा गोला गुरु, गुरु गिंडका रा मेल।
रूँम रूँम मे यूं रमे ज्यूं जरबां म तेल॥

(असन्तां री आरसी)

मूढ मन वयूं घुडदौड मचावै,
खाली गोता खावै।
रात दिवस के रेस कोस मे बाजी लाव बनावे,
जाकी पार कोई हूय जावे वीनिंग पोस्ट बतावे।

(वैराग्य वचन)

कवि लालस जहाँ एक ओर सामाजिक विषमताओ के विरुद्ध थे, वहाँ दूसरी ओर इन्होने वीर नर-नाहरो की प्रशस्ति मे अत्यधिक प्रेरक काव्य की रचना की। 'प्रताप प्रशसा', 'राठौड दुर्गादास री औरगजेब ने अर्जी', 'क्षत्रियां रा साँचा गुण' इनकी ऐसी ही रचनायें हैं। राजस्थान की प्रमुख रक्षक जाति के लिये इन्होंने लिखा है—

काछ द्रढा कर बरषणा, मन चगा मुख मिट्ठ।
रण शूरा जग वल्लभा, सोहूम चाहत दिट्ठ॥
हरख सोच नहिं हिये सुजस निन्दा नहिं सारे,
जीवण मरण जिहान लग्यो है प्राणी लारे।
पाप पुन्न रो पूर अनादी चलियो आवे,
करमज्या जेडी करे भली भूंडी भुगतावे।

जीवन की सार्थकता और महत्ता के लिए जहाँ इन्होने अप्रत्यक्ष प्रेरणा दी, वहाँ इन्होने भक्ति को शक्ति से कभी अलग नहीं देखा। 'जीवन मरण' तो इस ससार मे सबके साथ जुडा है, लेकिन जो इस खेल को कुशलता से खेलता है वही शतरज रूपी सासारिक क्रम को भली भाँति समझ सकता है।

मोटे वस्त्र, घुटनो तक की धोती और हाथ में डंडा रखने वाले निर्भीक, प्रसन्न मुख ऊमरदान लालस का सम्पूर्ण काव्य, 'मारवाडी डिंगल भाषा का' काव्य है। ये किसी आग्रह या पूर्व निर्धारित सीमाओ मे बंधकर कभी नही चले। प्रारम्भ के समय मे साधु जनो के साथ रहने के कारण इनकी रचनाओं म सत असत, साधु सन्यासी आदि को वर्ण्य विषय बनाया गया है। जैसे— 'सन्त असन्त सार', 'खोटे सन्ता रो खुलासो' और 'असन्तों री आरसी' आदि रचनाएँ इसका प्रमाण है। इसके विपरीत सवत् 1952 मे जब जोधपुर महाराजा जसवतसिंह का देहान्त हो गया तो इन्होने 'जसवन्त जस जलद नामक काव्य कथा की रचना की जो कि मानवीय गुणा की परिचायक कृति है—

> आर्यावत अखिल मलाया, स्याम वहमा ही मे।
> तिब्बत में चीन मे कोचीन मे किनारे मे॥
> अफगानी, ब्लोचिस्तान अब मे ईरान ही मे।
> कासगार खीवा कद बलख बुखारे मे॥
> नाम जसवत जसधारी को न जानै कौन।
> रूम माही रूस माही राजे दरबारे मे॥

ये शुद्ध हृदय, निरभिमानी और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। इन्होने हर आफत को नजदीक से जिया था। स्पष्ट भाषी और निर्मल चित्त के कवि ऊमरदान अपने विषय मे एक स्थान पर लिखते है—

> जोगी कहो भव जोगी कहो—
> रजयोगी कहो की केसेइ हैं।
> न्यायी कहो अन्यायी कहो
> कुकसाई कहो जग जैसेई है॥
> मीत कहो वो अमीत कहो
> ज्यु पलीत कहो तन तैसेई है।
> ऊत कहो अवधूत कहो
> लो कपूत कहो हम सोई हैं॥

वह सदैव यही कहते—अरे भाई! ये छोटे मोटे स्वार्थ छोड दो, अमूल्य मनुष्य जन्म बार-बार नही मिलता। रुपया पैसा, माल खजाना सारा का सारा यही धरा का धरा रह जाता है, आखिर मे तो दुवा और परोपकार का बल ही काम आने वाला है—

> लोभ लाय मे लाख गुण जवरोडा जल जाय।
> कनक दान रा कीच मे, कै ओगण कल जाय॥

दुखी देखिया दीन न, दाता देत दयाल।
देसकाल अरु घुसत दिस, करै न आँख कृपाल॥
पाई पुन परताप सूं दुरलभ मानव देह।
विपता हूंत बचावणी ग्यान मुगत री गेह॥
हाथ धर्‌यो कद हाथ मूं हाथ ऊपरे हाथ।
हाथ मसलतां हाथ सू, हाथ पडे जम जाय॥

साहस और ज्ञान के बल पर मुक्ति का द्वार बतलाने वाले कवि ऊमर दान समाज म व्याप्त व्यथ के बुरे व्यसना के भयकर विरोधी थे। गलत बात का भडा फोड करना और धूम्रपान मद्यपान व अमलपान आदि का विरोध करन से व कभी नही चूक। वे कहा करते थे—

नसां काड लीवी नसां, नसां कियो सबनास।
नसां ह नरकाखियां मे, अडी नसां मे आस॥
गैले वहता गुडपड्या, अैले अमली आप।
लै लै करतां लागिगा पले भव रो पाप॥
भेख बिगडै जगत नै जगत बिगाडै भेख।
आलै बाबा अमलडो दुनिया मे सुख देख॥

'नसा निवारण' 'तबाकू री ताडना, 'अमल रा औगण', 'दारू रा दोष', आदि काव्य खडो के अतिरिक्त कवि ऊमरदान ने ईश्वर स्तुति', ईश्वरोपासना', विलाप बावनी' 'हरीदास जी रा सुजस, ओलम्मा वैराग्य वचन', 'धम कसौटी', 'जोधां रो जस' 'तोपा री तारीफ', मसकरी की माँ' 'दासी द्वादसी', चेटक चतुदशी छपना रो छद', 'डफोल डूडी, 'कलदार करामात' 'हित री बात' आपरी ओलखाण' आदि अनक काव्यानुकथन लिखे जो आज भी उतने हा सरल, सशक्त और सत्य प्रतीत होते है। आज भी उनमे गम्भीरता और तीखापन है।

इनकी भाषा साहित्यिकता के निकट न रहकर ग्रामीण जीवन के निकट रही है, यही कारण है कि इनकी कविताओ को अधिकाश, अनपढ समुदाय ने सहजता से स्वीकारा है। उपमा, अलकार और उत्प्रेक्षा के सफल प्रयोग करो वाले कवि ऊमरदान जीवन को शतरज का खेल कहते थे। इनके एक पद 'जुगत बिन सतरज जितीं न जाई' के अनुसार शतरज के खेल मे जीवरूपी राजा, वैराग्य रूपी वजीर नान और विचार रूपी दो ऊँट, उद्यम और पुरुषाथ रूपी दो घोडे, शील और सतोष रूपी दो हाथी, शुभ कर्म की प्रतीक आठ पैदलें, दूसरी सामने की सेना से जिसमे कि काल रूपी राजा है, मोह रूपी वजीर है, अनान और अविचार रूपी दो ऊँट हैं, आलस्य और प्रमाद

चम्पू के वशज ही वाराणासी म गवरी बाई के सम्बन्ध म विस्तृत जानकारी के आधार हैं।

जैसा कि उस समय बाल विवाह की प्रथा थी, गवरी बाई का विवाह भी 5 या 6 वष की अल्प अवस्था मे ही हो गया था। विधना की मर्जी, शादी के कुछ दिनो बाद ही गवरी बाई के पति का अचानक देहान्त हो गया। सारा घर शोकसागर मे डूब गया पर गवरी बाई ने हिम्मत नही हारी। जो भी महानुभूति प्रकाट करने आता ये उनसे कहती—मेरा पति तो मेरा परमात्मा है। उसी के चरणो म मेरा जीवन अर्पित है।' ऐसी अवस्था में ये प्रचलित रीति रिवाजो के अनुसार माता-पिता के साथ रहने लगी।

बचपन से ही चचल एव मृदुभाषी थी गवरी बाई। उस समय नारी शिक्षा को समाज मे सुधार का सूचक माना जाता था। अत उन्होने घर पर रह कर ही लिखना पढना सीख लिया। जैसा कि युवा विधवा के लिये भगवद् भजन गाने और धार्मिक साहित्य मे जीवन बिताना अपेक्षित है। उन्होने ठीक वैसा ही किया और ईश्वर की आराधना मे भक्ति रचनायें लिखने लगी—

प्रभू मोक एक बेर दरसन दइये।
तुझ कारन मैं भई दिवानी
उपहास जगत की सहिये॥
हाथ लकुटिया काध कमलिया,
मुख पर मुरली बजैये।
हीरा मानिक गरथ भण्डारा,
माल मुलक नही चहिये।
गवरी के ठाकुर सुख के सागर,
मेरे उर अन्तर रहिये॥

ये पद सुन कर आपको सहज पता चला होगा कि गवरी बाई ब्रजभाषा या पिंगल की कवयित्री हैं। इनकी रचनाओ पर गुजराती, राजस्थानी और ब्रज का प्रभाव है। साथ ही सूर, कबीर आदि भक्त कवियो का प्रभाव दशन भी इनके पदो मे आसानी से जाना जा सकता है। सरलता, तन्मयता और स्वामीगत रचनायें ही गवरी बाई की विशेषता मानी जाती है।

बचपन मे ही विधवा हो जाने के कारण इनके मन मे एक रिक्तता, एक वेदना और एक असामाजिक अनुभूति भर गई थी, जिसे इन्होंने भक्ति के पथ पर चल कर पूरा करना चाहा। इन्होने यही तय किया कि किसी की सगत मे न रह कर एकान्त धार्मिक कार्यों मे तल्लीन रहा जाये। अत ये घर पर ही अध्ययन, मनन और चिन्तन करने लगी।

इस समय डूगरपुर पर महारावल शिव सिंह का राज्य था। ये बडे कर्त्तव्यपरायण, विद्वान और सदाचारी प्रवृत्ति के थे। इनके राज मे न कोई कर था, न ही किसी प्रकार का डर था। 'एक बाट-एक तोल' की व्यवस्था थी यहाँ पर। जब महारावल ने गवरी बाई के पवित्र जीवन की ख्याति सुनी तो वह दर्शन हेतु इनके निवास स्थान गये। धार्मिक वाद विवाद से राजा गवरी बाई से बहुत प्रसन्न हुआ। महारावल ने इसके प्रभाव स्वरूप एक सुन्दर मन्दिर और बावडी का निर्माण करवाया। गवरी बाई अपनी समस्त प्रतिमाएँ एव चित्र लेकर इस मन्दिर मे आ गई और वहा सवत 1836 मे माघ कृष्णा चुविटी के दिन बडी धूमधाम से एक पवित्र समारोह का आयोजन किया गया।

गवरी बाई के जीवन का अब एकमात्र उद्देश्य था भगवद् भक्ति। कहते हैं इनके साथ इनकी विधवा भानजी चातुरी तथा दूसरी भानजी जमुना और एक अन्य वृद्धा हरियन, जो इनके सबधियो मे से थी, रहने लगी थी। धीरे धीरे गवरी बाई की ख्याति दूर दूर तक फैलने लगी। सन्त, विद्वान और भक्त दर्शको का मेला लगने लगा गिरिपुर मे। एक बार एक ज्ञानी महात्मा वहाँ आये और गवरी बाई की भक्ति साधना को देख कहने लगे—'हे देवी ! तुम तो वस्तुत मीरा की साक्षात अवतार हो। मीरा यद्यपि महान भक्त थी परन्तु उसमे ऐसे ज्ञान की कमी थी, जिसका एक महान सन्त मे होना अवश्यक है। तुम्हारा जन्म उस त्रुटि पूर्ति के लिये ही हुआ है।' इस देव ज्ञानी ने ही गवरी बाई को ब्रह्मज्ञान तथा आत्म ज्ञान की शिक्षा दी।

म्हारा द्वारका रा नाथ,
मारगियो बुहारूँ—
कालजा नी कोर सूँ।
सामलिया थू घर आव,
मारगियो बुहारूँ—
कालजा नी कोर सूँ।
मझधार पडी छै नाव
थारा दरसण नो ऊमाव
थारी गवरी ना गीत सभार
गिरधरिया थू अब आव,
मारगियो बुहारूँ
कालजा नी कोर सूँ।
गवरी ना सगा न सोई
थारी बाट रात दिन रोई
थारी भगती बोलावै र

म्हारा द्वारका रा नाथ,
मारगियां बुहारूँ
कालजा नी कोर सूं।
भुगती तो हीमालै गलियाँ
जलम सुधरसी पारै मिलियाँ
बैसणो छै आतमघाट
म्हारा गोपियाँ ना साम,
मारगियो बुहारूँ
कालजा नी कार सूं।

एमे ममस्पर्शी पदो की रचयिता गवरी बाई, दया और करुणा का रूप थी। एक बार, साथ रहने वाली वृद्धा हरियल ने समाधिस्थ होने पर इनके शरीर मे सुइयाँ चुभो दी। पर इन्होने उसे तुरन्त क्षमा कर दिया। धीरे धीरे इनकी भविष्यवाणियाँ भी सच्ची उतरने लगीं। काव्य प्रतिभा म वृद्धि के कारण पदो मे सपूर्णता आने लगी। सवत् 1860 तक इसी प्रकार गवरी बाई ने अपना जीवन बिताया, तत्पश्चात् उन्होने अपना शेष जीवन कृष्णभूमि, गोकुल वृदावन पर बिताने का निश्चय किया। महारावल डूगरपुर ने इस निश्चय का बदलवाने हेतु सभी उपाय किये पर गवरी बाई न अपने निणय को नही बदला और डूगरपुर के प्रमुख मदिर की पूजा का भार योग्य साधु को सौप कर वृदावन के लिये रवाना हो गईं। जब इनकी टोली जयपुर के निकट पहुँची तो यहाँ के राजा ने इनका राजकीय स्वागत किया। जयपुर की महारानी न इनके दशन कर 500 मोहरें अर्पित की, जिन्हे इन्होने सद् ब्राह्मणो म बँटवा दिया।

जयपुर महाराज गवरी बाई की सयमित विद्वता से इतन प्रभावित हुए कि इनकी परीक्षा लेन की सोची। कहा जाता है कि राजा ने अपने व्यक्तिगत मन्दिर के पुरोहित को आदेश दिया कि वह गोविन्दजी की प्रतिमा का खूब सजा कर मन्दिर के पट बद कर द। ऐसा ही किया गया और गवरी बाई को निमत्रित कर राजा ने उनसे जानना चाहा कि मन्दिर मे स्थित मूर्ति का वेष भूषा और आभूषण कैसे है। गवरी बाई को एक बार तो राजा क कृत्य पर आश्चय हुआ पर अत मे प्रभु नाम स्मरण कर कहन लगी 'त्रुटि केवल यही है कि सिर पर मुकुट नही है।' यह सुन कर राजा तथा अन्य सभी श्रोतागण बडे आश्चर्यचकित हुए क्योंकि श्रीकृष्ण की मूर्ति तो कभी बिना मुकुट के रह ही नही सकती। पर पट खोल कर देखने मे ज्ञात हुआ कि मूर्ति के सिर स मुकुट सरक गया था क्योंकि पुरोहित न उसे सावधानी से नही रखा था। जयपुर के राजा न गवरी बाई से जयपुर मे रहने का अत्यधिक आग्रह किया,

पर इन्होंने स्वीकार नही किया। अत मे ये मथुरा, गोकुल और वृन्दावन में कुछ समय तक रहने लगी। यहाँ भी इन्हे राजकीय सम्मान और सत्कार मिला पर वह भक्ति की दिशा धारा को नही बदल सका। वाराणसी के राजा ने तो गवरी बाई को अपना गुरु ही मान लिया था। जमुना के तट पर कीतन और सत्सग होता, कृष्ण लीला का गायन होता—

होरी खेलें मदन गोपाल।
मोर मुकट कट काछनी काछै,
चचल नैंन विसाल॥
सब सखियन मे मोहन सोहत,
ज्यू तारन विच चद उजाल॥
चोवा चन्दन और कुमकुमा,
उडत अबीर गुलाल॥
ताल मृदग झांझ डफ बाजै,
गावत बसत धमाल॥
गवरी के प्रभु नटवर नागर,
निरखि भई नेहाल॥

मीरा के अवतार रूप मे जानी जाने वाली गवरी बाई की रचनाओ मे मुख्य तया सर्वशक्तिमान विश्वेश्वर की सवव्यापकता और कल्याण का स्वरूप ही चित्रित हुआ है। अब तक इनके 610 पदों का पता चल पाया है जिनम भक्ति वैराग्य और ज्ञान की महिमा बतलाई गई है। इन पदो पर अन्य भक्त कवियो का प्रभाव अवश्य है पर ये मौलिकता स सवथा मुक्त नहीं हैं। दूर दर्शी गवरी बाई ने पहले ही अपनी मृत्यु का समय बता दिया था तथा यह इच्छा प्रगट की थी कि मेरा अन्तिम श्वास जमुना तट पर निकले, जहां कभी बालक ध्रुव ने तप किया था। आखिर हुआ भी यही। इनकी भविष्यवाणी के अनुसार इनकी मृत्यु रामनवमी के दिन 1865 मे हुई जबकि इनकी आयु 50 वप की थी।

ससार को असार बताने वाली गवरी बाई का निगुण कवयित्रियो मे वही स्थान है जो निर्गुण कवियो मे सुन्दरदास को प्राप्त है। राजस्थान को ऐसी भत कवयित्रियो पर गव है।

भूषण

एक लहैं तप पूजन के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एकन को बहु संपति केशव, भूषन ज्यों बलबीर बड़ाई॥
एकन का जस ही सों प्रयोजन है रसखानि रहीम कि नाईं।
दास कवित्तन की चरचा गुनवंतन को सुखदैं सब ठाईं॥

1734 के कवि दासजी का यह सवैया कवि भूषण के संबंध में जो कुछ कहता है अक्षरश: सत्य है। जैसी संपत्ति और बड़ाई कविता से भूषण को प्राप्त हुई वैसी प्राय: औरों को नहीं मिली। वीररस के प्रसिद्ध कवि भूषण चिंतामणि और मतिराम के भाई थे। संवत् 1670 में कानपुर जिले के घाटमपुर गाँव में जन्में इस कवि का चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने कवि भूषण की उपाधि दी थी, यों इनका जन्म नाम कुछ और ही था।

कुलसुलंक चित्रकूटपति, साहस सीलसमुद्र।
कवि भूषन पदवी दई हृदयराम सुत रुद्र॥

यह कथ्य तो प्रसिद्ध है कि पहले भूषण बिल्कुल अपढ़ एवं भाइयों के आश्रित थे। एक दिन की बात है—भोजन करते समय भूषण ने अपनी भावज से लवण माँगा। भावज ने क्रोध से कहा—'हाँ बहुत सा नमक तुमने कमाकर रख दिया है न, जो उठा लाऊँ।' यह बात इन्हें असह्य हो गई और ये यह कहकर—'कि अच्छा! अब जब नमक कमाकर लावेंगे तभी यहाँ भोजन करेंगे' घर से निकल पड़े। कहते हैं इन्होंने अपनी जिह्वा काट कर श्रीजगदम्बाजी पर चढ़ा दी और कविता करने लगे। इसके बाद ये चित्रकूट के राजा रुद्र राम सोलंकी के आश्रय में रहे। यहाँ से कवि भूषण महाराजा शिवाजी के दरबार में गये यह वह समय था जब शिवाजी दक्षिण के अनेक दुर्ग जीत कर रामगढ़ में राजधानी नियत कर चुके थे। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ भी इनका अत्यधिक मान हुआ। कहते हैं, महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी में अपना कंधा लगाया था जिस पर इन्होंने कहा था—सिवा को बखानौं कि बखानौं छत्रसाल को। ऐसा सर्वचर्चित है कि कवि भूषण को एक एक छंद पर शिवाजी से लाखों रुपए मिले।

कवि भूषण, हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा रीतिकाल के कवि

माने जाते हैं। यह वह काल है जब कवि अपने आश्रयदाता के गुण-गौरव एवं आनन्द के लिये काव्य सृजन करता था। साधारण जनता का इस प्रकार के साहित्य से कोई संबंध नहीं रहा। लेकिन कवि भूषण इसके अपवाद सिद्ध हुए। इन्होंने अपने दो काव्य नायक शिवाजी और छत्रसाल के माध्यम से, अन्याय दमन में तत्पर एवं हिन्दूधर्म के रक्षक वीरों की कीर्ति कही, जो जन साधारण की कीर्ति के स्थाई अंग हैं।

शृंगार एवं वीर रस के साहित्य के संदर्भ में इतिहासज्ञ बखरकार के अनुसार एक बार कवि भूषण दिल्ली में औरंगजेब के दरबार में पहुंचे। काव्यपाठ के लिये जब औरंगजेब ने इनसे कहा तो ये बोले—

'मेरे भाई चिंतामणि की शृंगार रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर कुठौर पड़ता होगा, पर मेरा वीर काव्य सुनकर वह मूछों पर पड़ेगा। सो पहले पानी से हाथ शुद्ध कर लीजिये।' इस पर बादशाह ने कहा—यदि हाथ मूछ पर न गया तो तुम्हें मृत्यु दंड मिलेगा! इतना कह औरंगजेब हाथ धोकर कविता सुनने लगा। कहते हैं—कवि भूषण का वीरकाव्य सुनकर औरंगजेब का हाथ मूँछों पर बारबार थिरकने लगा था।

> दारा की न दौर यह, रार नहीं खजुवे की,
> बाँधिबो नहीं है कैधों मीर सहवाल का।
> मठ विश्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
> देवी को न देहरा, न मंदिर गोपाल को॥
> गाढ़े गढ़ लीन्हे अरु बैरी कतलाम कीन्हे,
> ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल का।
> बूड़ति है दिल्ली सो सभारैं क्यों न दिल्लीपति,
> धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को॥

ऐसे काव्यप्रणेता भूषण के ग्रंथों में शिवराजभूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक सर्वाधिक प्रशंसित हैं। इसके अतिरिक्त भूषण उल्लास दूषण उल्लास और भूषण हजारा भी इन्हीं के ग्रंथ रूप में जाने जाते हैं।

'तीन बेर खाती थीं वो तीन बेर खाती हैं' जैसी पंक्तियों के रचयिता के काव्य में रौद्र, वीर एवं भयानक ये तीन रस ऐसे हैं जो अन्य श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में भी नहीं पाये जाते। महाराज शिवाजी की काव्यगाथा आज महाराष्ट्र के कवि भले ही चित्रित करें, पर वह आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व ही कवि भूषण द्वारा अंकित की जा चुकी है।

छंद प्रधान काव्य के ऐसे सिद्ध रूप कवि भूषण का देवलोक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार संवत् 1662 में हुआ।

इनके सम्पूर्ण सृजन को पढकर हम यह कह सकते हैं कि कवि भूषण का काव्य वास्तव में हिन्दी साहित्य का भूषण है। स्थिर लक्षणानुसार चाहे इनकी कविता को कोई महाकाव्य न कह सके परन्तु इन्हें हम, बिना महाकवि कहे नही रह सकते।

> शिव चरित्र लखि यो भयो, कवि भूषण के चित्त।
> भाँति-भाँति भूषनन सो, भूषित करौ कवित्त॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिन्दी प्रेमियो और हिन्दी साहित्यकारो का जैसा प्रेम युगप्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पाया, वैसा प्रेम हिन्दी के दूसरे साहित्यकारो को नही मिला। यही कारण है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक काल भारतेन्दु काल के नाम से जाना जाता है। भारतीय नवोत्थान के प्रतीक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अठारवी उन्नीसवीं शताब्दी के जगत सेठो के परिवार के वशज थे। इनका जन्म काशी (उत्तर प्रदेश) मे भाद्रपद शुक्ला ऋषि पचमी, सवत् 1907 मे, सोमवार के दिन हुआ था। पाँच वर्ष की आयु मे ही माता पार्वती देवी का देहान्त हो गया तथा विमाता की अनुरागहीनता के कारण इन्हे अपना बचपन बोझिल वातावरण मे बिताना पडा। इस जमाने मे काशी के रईसो मे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' एक मात्र अंग्रेजी पढे लिखे थे, जो आगे चलकर भारतेन्दुजी के भी गुरु रहे। भारतेन्दुजी की सबसे बडी शक्ति स्वाध्याय थी। स्वाध्याय के कारण ही इन्होने हिन्दी, सस्कृत और अंग्रेजी के अतिरिक्त मराठी, बंगला गुजराती, राजस्थानी पजाबी, उर्दू आदि भारतीय भाषाएँ भी सीख ली। भारतेन्दुजी का सम्पूर्ण साहित्य विविध भाषा शब्दो का ऐसा सकलन है, जो प्रेरक और रोचक है। तेरह वर्ष की आयु मे ही काशी के रईस लाला गुलाबराय की लडकी मन्नादेवी से विवाह होने के पश्चात्, पारिवारिक आग्रहवश इन्हे देश दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ। इन्ही यात्राओ ने भारतेन्दुजी को जन जीवन की भावधारा को समझने की शक्ति दी। सर्वप्रथम 27 सितम्बर 1880 को, जब 'भारतेन्दु' की उपाधि देने का प्रस्ताव रक्खा गया, तो इसे जनता की तरफ से सरकार को चुनौती माना गया।

क्योकि सरकार ने राजा शिवप्रसाद को 'सितारे हिन्द' बनाया तो जनता न हरिश्चन्द्र को 'भारतेन्दु'।

भारतेन्दुजी हृदययुक्त गुणो के प्रशसक थे। नैतिकता, पुरातन के प्रति अनाग्रह तथा देश भाषा के लिये सजग भारतेन्दुजी, विनोदी एव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। भारत के अतीत के प्रति तो इन्हें असीम श्रद्धा थी ही, किन्तु साथ ही वे, यह अच्छी तरह समझते थे कि यद्यपि अंग्रेजो ने भारत की स्वाधीनता का अपहरण और आर्थिक शोपण किया है तो भी भविष्य म उन्नति करने और जीवन म सुधार उपस्थित करने के लिये भारतवासियो का अंग्रेजो से बहुत सी बातें सीखनी है—विशेषत ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे। निजभाषा की उन्नति हो इस दष्टि स भारतेन्दुजी ने क्रमश कविवचनसुधा, हरिशचन्द्र चन्द्रिका, नवोदिता, बालाबोधिनी नामक पत्र प्रकाशित किये व वैष्णव धम और ईश भक्ति के प्रचाराथ 'तदीय समाज' नामक सस्था की स्थापना की। भारतेन्दुजी का रचना काल ऐतिहासिक युगा का सन्धि स्थल था। पर इन्होने बीच का रास्ता अपनाया तथा जो कुछ देखा वह आंख खाल कर देखा। भारतेन्दुजी के लिये कहते हैं इन्होने कोई दो सौ अडतालीस रचनायें लिखी।

गद्य के क्षेत्र मे भारतेन्दुजी का ध्यान सवप्रथम नाटको की आर गया, जिनमें कि अधिकतर रूपान्तरित हैं। विद्यासुदर, पाखड विडम्बन, धनजय विजय, कपूर मजरी, भारत जननी, मुद्राराक्षस, दुलभ बन्धु, मोहन चन्द्रिका, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चन्द्र, श्री चन्द्रावली, भारत दुदशा, नीलदेवी, अन्धेर नगरी, प्रेम जोगिनी सतीप्रताप आदि ऐसी ही कृतिया हैं जो इनके सम्पन्न विचार चिन्तन का परिचय आज के पाठक को प्रस्तुत करती हैं। इन पुस्तका के अतिरिक्त भारतेन्दुजी ने पूण प्रकाश, चन्द्रप्रभा, हिन्दी भाषा, नाटक, कश्मीर कुसुम, महाराष्ट्र देश का इतिहास रामायण का समय, खत्रियो की उत्पत्ति, बादशाह दर्पण, बूदी का राजवश उदय पुरोदय, दिल्ली दरबार दपण आदि पुस्तकें भी लिखी जो देश-काल और कतव्य की घडियो का सर्वोत्तम साहित्य है। इस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की छोटी बडी उनहत्तर रचनाएँ और अनेक स्फुट कविताएँ उपलब्ध हैं। काव्य रचना की दृष्टि से भारतेन्दुजी अनेक साहित्यक धाराओ क सगम ह। भक्ति सर्वस्व, कार्तिक स्नान, तन्मय लीला, प्रबोधिनी प्रेमसरोवर मधुमुकुल, मुह दिखावनी, भारत भिक्षा, भारतवीरत्व, विजय वल्लरी, जातीय सगीत आदि काव्य कृतियो के अतिरिक्त स्यापा, बकरी विलाप, बसन्त होली, चतुरग, मूक प्रश्न आदि ऐसी फुटकर रचनायें हैं जो हिन्दी साहित्य के काल निर्धारण मे महत्वपूण भूमिका स्वरूप हैं।

भारतेंदुजी की लोकप्रियता का कारण यह है कि इन्होंने समाज और साहित्य की आवश्यकताओं को पहचाना, पूरा किया। इनकी यह प्रतिज्ञा प्रसिद्ध थी 'इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा।'

मस्तमौजी भारतेंदु बाबू के लिये महास्वाभिमानी कवि निराला ने कहा था—'मैं उनके दरबार का दरबान मात्र हूँ।' जो शीश किसी के सामने न झुका था, वह भारतेंदु के आगे नत था। नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु ने हम सब सिखाया था परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो, अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।

अंत में भारतेंदुजी का एक प्रेरक काव्यांश द्रष्टव्य है—

ये कृष्ण-बदन जब मधुर तान।
करते अमृतोपम वेद गान।
तब मोहत सब नर नारि वृंद।
सुनि मधुर बरन सज्जत सुछंद।
जग के सबहीं जन धारि स्वाद।
सुनते इनहीं को बीन नाद।
इनमें गुन होतो सबहिं चैन।
इनहीं कुल नारद तानसैन।
इनहीं के क्रोध किये प्रकाश।
सब काँपत भूमंडल अकास।
इनहीं के हुँकृति शब्द घोर।
गिरि काँपत है सुनि चार ओर।
जब लेत रहे कर में कृपान।
इनहीं कहँ हो जग तृन समान।
सुनि के रन बाजन खेत माहिं।
इनहीं कहँ हो जिय सक नाहिं।

जयशकर प्रसाद

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जयशकर प्रसाद का नाम हम सबके लिय अतिरिक्त गौरव का विषय है। कुछ लोग कहते हैं—प्रसाद पहले कवि थे, फिर और कुछ। उनके नाटक और उपन्यास पढने पर तो यही लगता है कि वह मूलत कवि थे तथा उनकी कविता का प्रभाव उनकी कहानिया और नाटकों पर भी पडा। बहुविध प्रतिभा के धनी काव्यप्रवतक जयशकर प्रसाद ने इसी भाँति साहित्यिक निबध भी लिखे जो आगे चलकर वैचारिक स्तर पर बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

कविवर जयशकर प्रसाद का जन्म धम, ज्ञान और सस्कृति की प्राचीन नगरी काशी मे विक्रमी सवत 1946 की माघ शुक्ला दशमी को, प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज वैश्य परिवार मे हुआ। यह वही काशी नगरी है जिसके लिये किसी ने ठीक ही कहा है—

खाक भी जिस जमी की पारस है,
शहर मशहूर वह बनारस है।

तुलसी कबीर, भारतेन्दु हरिशचन्द्र की साधना भूमि काशी और प्रेमचद की कर्मभूमि काशी मे ही जयशकर प्रसाद ने अपने सपनो को साहित्य के नये आयाम दिये। बनारस शहर के सराय गोवधन मोहल्ले मे सुघनीसाहु' के मकान मे काव्यप्रेमी पिता देवीप्रसाद जी की देखरेख मे आपका लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा हुई। बचपन मे माता की मृत्यु फिर बडे भाई का देहान्त फिर पारिवारिक कलह और मुकदमेबाजो के बीच उनका प्रारम्भिक जीवन वज्र और कठिन परिश्रम का प्रतीक है।

कविवर जयशकर प्रसाद ने मूलत ब्रजभाषा मे कविता करना शुरू किया। उनकी प्रारम्भिक रचना का अश देखें—

अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन
प्रशात सरसी में खिल रहा।
प्रथम पत्र का प्रसार करके
सरोज अलिगण से मिल रहा।

कवि जयशकर प्रसाद स्वभाव से सयत, गम्भीर सकोचशील और कला-

पूण अभिरुचि वाले थे। शव मत का असर उन पर रहा और जो आगे चलकर तत्र, मत्र, ज्योतिष, इतिहास आदि के रूप मे उनके पठन-पाठन मे अभिव्यक्त भी हुआ। समकालीन कवियो और साहित्यकारो के प्रति उनके मन मे बहुत सम्मान था। आज भी निराला, पत, महादेवी और प्रसाद हिन्दी मे युग बोध के काव्य स्तम्भो मे गिने जाते हैं।

रचना क्षेत्र मे जयशकर प्रसाद ने छाया, इ द्रजाल, प्रतिध्वनि, आकाश दीप और आँधी शीपक से पाच कहानी सग्रह काव्य और कला तथा अ य निबध शीपक से निबध सग्रह, प्रसाद सगीत, काननकुसुम, महाराणा का महत्व प्रेम पथिक, करुणालय, आसू लहर, झरना, और कामायनी शीपक से काव्य सक्लन, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु स्क दगुप्त, राज्यश्री और विशाख शीपक से नाटक और तितली क्काल और इरावती शीर्षक से उप यास भारतीय साहित्य को दिये, जिनका आज विदेशो मे अनुवाद और मूल्याकन बहुत बडी सख्या म हो रहा है।

कविवर जयशकर प्रसाद की प्रमुख रचना 'कामायनी' महाका य है, जिसे हिन्दी काव्य मे मील का पत्थर कहा जाता है। कामायनी मे जड चेतन और जीवन जगत की मीमासा करते हुए वे लिखते है—

हिमगिरि के उत्तुग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुप भीगे नयनो से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
× × ×
चेतना का सु दर इतिहास
अखिल मानव भावा का सत्य
विश्व के हृदय पटल पर दि य
अक्षरो से अकित हो नित्य

इसी प्रकार वे अपने राष्ट्रीयता पूण उद्बोधन म लिखते हैं—

विमल वाणी ने वाणी ली,
कमल कोमल कर मे सप्रीति।
सप्त स्वर सप्त सिंधु मे उठे,
छिडा तब मधुर सत्य सगीत।

एक स्थान पर वह पुन आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—

'हमारी ज मभूमि थी यही, कही से हम आए थे नही।'

वग भेद और जाति भेद के विपरीत युग प्रवतक कवि जयशकर प्रसाद ने कथनी और करनी के नये स्वर दिये । उन्होने केवल भाषा या भाव के क्षेत्र मे ही क्रांति नहीं की अपितु एक नई शैली भी प्रवर्तित की जो समरसता के धरातल पर प्रगतिशीलता की परिचायक है ।

कविवर जयशकर प्रसाद को 'अजातशत्रु' के नाम से भी जाना जाता है । जब किसी ने उनसे 'अजातशत्रु' होने का कारण पूछा तो यह बोले कि मैं तीन काम नही करता—'द्रव्यादान विवाद व परोक्षे दारदशनम्' अर्थात—रुपये का लेन-देन विवाद और मालिक घर मे न रहे तो परोक्ष मे उसके घर मे जाकर उसकी स्त्री से बातें करना । अत यह तीन काम जो नही करता उसकी मित्रता कभी खडित नही होती ।

महाकवि जयशकर प्रसाद के साहित्य को लेकर जटिलता और सरलता का विवाद प्राय चलता है । कुछ कहते हैं कि जयशकर प्रसाद की रचनायें पूरी तरह साहित्यिक है, जब कि कुछ इन्हे लोकमान्य अर्थावली का नाम देते हैं । प्रसाद के नाटको को लेकर भी रगमचीय अपरिपक्वता कई बार दर्शकों के सामने आती है जो उनके सुगठित कथानकों के शास्त्रीय विकास की द्योतक लेखन शैली है । ऐसे साहित्यचेता कविवर श्री जयशकर प्रसाद का देवोत्थान 48 वर्ष की उम्र मे विक्रमी सवत 1994 की कार्तिक शुक्ला एकादशी को हुआ था । जयशकर प्रसाद जैसा काव्यदीप शताब्दियों बाद जन्म लेता है । महादेवी वर्मा के शब्दों मे—

'प्रसाद के रूप मे हिन्दी ने शिव और वाणी का प्रसाद एक साथ ही पाया है । वह हृदय से कोमल एव भावुक कवि थे और बुद्धि की प्रखरता मे इतिहास के अधकार मे भी उन्होन जीवन के ऐसे तत्व खोज लिये जो अच्छा इतिहासकार भी न खोज पाता । महाकवि प्रसाद इतिहासकार के लिये स्पर्द्धा का विषय हो सकते हैं ।'

प्रेमचद

हिन्दी के कथा साहित्य मे प्रेमचद का महत्वपूर्ण स्थान हैं । उनका वास्तविक नाम था धनपतराय । 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के निकटवर्ती गाँव लमही मे जन्मे प्रेमचद की माता का नाम आनन्दी देवी तथा पिता का नाम

अजायबराय था। खेती, घर का मुख्य व्यवसाय था। जिस समय प्रेमचद का जन्म हुआ इनके पिता को डाकखाने की नौकरी मे केवल बीस रुपये मासिक मिला करते थे। ऐसी स्थिति मे प्रेमचद के जीवन का प्रारम्भ ग्रामीण वातावरण मे विपत्तिया सहते हुए अपूण अभिलाषाओं का प्रारम्भ है। बचपन म ही माँ तथा दो बहिनो का देहा त हो गया। इन सारे अनुभवो की अभिव्यक्ति ही प्रेमचद के साहित्य मे प्रमुखता से हुई।

अँधेरी कोठरी मे तेल के दीपक से पढते हुए प्रेमचद ने इटर की परीक्षा पास की और इसके बाद स ही 1901 मे इनका साहित्य जीवन शुरू हुआ। 1905 मे अपनी पहली पत्नी से असन्तुष्ट रहने के कारण प्रेमचद ने उसे त्याग दिया और बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया। इन दिनो ही बी० ए० पास करके ये शिक्षा विभाग मे निरीक्षक के पद पर भी रहे। कठिनाइया एव सघर्षों के बीच रहते हुए प्रेमचद ने जिस अमूल्य कथा साहित्य की रचना की वह आज हि दी साहित्य का गौरव है। प्रारम्भ मे कुछ कहा नियां नवाबराय के नाम से लिखीं लेकिन आगे चल कर 'जमाना' पत्र के सपादक दयानरायन ने इनका नामकरण प्रेमचद कर दिया। अग्रेजो की दमन नीति एव सामाजिक निराशा के वातावरण मे अपनी लेखनी के माध्यम से जन जागरण के सूत्र को सचालित करते रहने मे प्रेमचद को बहुत मुसीबत उठानी पडी। हस, मर्यादा माधुरी, जागरण आदि पत्रो का सपादन काल इस निर्वाह का साक्षी है।

प्रेमचद की सबसे पहली मौलिक कहानी 'ससार का अनमोल रत्न' बताई जाती है। रवीन्द्रनाथ टगोर की कहानियो का उर्दू अनुवाद, रतननाथ सरसार के 'फसाने आजाद का हिन्दी अनुवाद तथा उर्दू कहानी सग्रह 'सोजेवतन' इनके प्रारम्भिक लेखन के आधार हैं।

महावीर प्रसाद पोद्दार की प्रेरणा से 'सेवा सदन' उपन्यास लिखा गया जो इनका प्रथम उपन्यास है। इसके बाद 'रूठी रानी 'कृष्णा', 'वरदान, 'प्रतिज्ञा', 'प्रेमाश्रम, 'निमला', 'रगभूमि', 'कायाकल्प' गबन' 'कमभूमि' और 'गोदान' उपन्यास छप। 'मगलसूत्र' प्रेमचद का अन्तिम एव अपूण उपन्यास है। इन बहुचर्चित औपन्यासिक कृतियो के अतिरिक्त प्रेमचद ने कोई 300 कहानियाँ लिखी जो सप्तसरोज' 'प्रेम पूर्णिमा', बडे घर की बेटी', 'लाल फीता', 'नमक का दारोगा', प्रेम पचीसी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम प्रतिमा', 'प्रेम प्रमोद', 'प्रेमतीर्थ', 'पाँच फूल', प्रेम चतुर्थी' 'प्रेम प्रतिमा', सप्त सुमन, प्रेम पचमी', 'प्रेरणा', 'समर यात्रा, 'पत्र प्रसून', 'नव जीवन', बैंक का दिवाला', तथा 'शान्ति' नामक सग्रहा म पढने को मिलती हैं। 8 अक्टूबर 1936 को काशी मे प्रेमचद की मृत्यु के बाद इनकी कहानियाँ

के कई सपादित सस्करण निकले जिनमे 'प्रेम पीयूष , 'गल्प समुच्चय', आदि प्रमुख हैं । अब उनकी समूची कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागो और 'गुप्त धन' मे सकलित कर दी गई है ।

कहानी एव उपन्यास के अतिरिक्त प्रेमचद ने 'सग्राम', 'कर्बला', 'प्रेम की वेदी', नामक नाटक लिखे । 'कुछ विचार' नामक आलोचनात्मक लेख सग्रह प्रकाशित किया । 'महात्मा शेख सादी', दुर्गादास कलम', 'तलवार तथा त्याग' नामक जीवनियाँ लिखी और टालसटाय जाज इलियट अनातोले फ्रास, गाल्सवर्दी, बर्नाड शा आदि की कृतियो का अनुवाद भी किया ।

प्रेमचद का सम्पूण साहित्य मानवीय समस्याओ तथा सामाजिक अन्त धारा का परिचायक साहित्य है जिसमे ग्रामीण जीवन की परिकल्पना को सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिली हैं । प्रेमचद के अनुसार प्रत्येक परिवार और व्यक्ति को अपनी अपनी सामथ्य के अनुसार समाज और राष्ट्र की सेवा करनी चाहिय एव भारतीय सस्कृति के अनुसार माने गये सभी ऋण चुकाने चाहिये ।

अन्याय, अत्याचार, दमन शोषण परपीडा आदि का विरोध करते हुये भी ये समन्वय के पक्षपाती थे । वग सघष अथवा किसी वाद की दृष्टि से इन्हें देखना, इनके साथ अन्याय करना है और इन्ह सकीण परिधि म बाँधना है, इनके व्यक्तित्व को कम करना है । आचाय रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रेमचद जो कर गये वह तो हमारे साहित्य की एक निधि है, तो आचाय नद दुलारे वाजपेयी के शब्दो मे प्रेमचद सम्पूणतया आदशवादी लेखक हैं जिनके कथा-चरित्र प्रवृत्तियो का स्पष्ट निर्देश करते हैं । पडित श्यामसुदर दास के कथनानुसार प्रेमचद को वणन की अपूव शक्ति मिली है । हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रेरक उपन्यास रगभूमि' ग्रामीण जीवन का सर्वोतमुखी अकन करनेवाला 'गोदान', मध्यश्रेणी की मनोदशा का परिचय देनेवाला 'गबन नारी जागरण की भूमिका की दृष्टि से 'सेवासदन उपन्यास प्रेमचद स अत्यधिक प्रभावी बन पडे हैं । 9 अप्रैल 1936 को प्रेमचद ने ही प्रगतिशील लेखक सघ की अध्यक्षता की थी ।

'गोदान को प्रेमचद की अमूल्य कृति माना जाता है, जो मूलत भारती यता की प्रतिच्छवि है । प्रेमचद के साहित्य का अनुवाद देश विदेश मे बडी तेजी से हुआ और हो रहा है जिससे भारतीय साहित्य को नये मूल्य प्रान प्राप्त हो रहे हैं । निस्सदेह प्रेमचद जैसा 'कलम का सिपाही' साहित्य की कथा-यात्रा मे पुन नही जुड पायेगा ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सरस्वती के पुत्र वसत क गायक और हिन्दी काव्य साहित्य की छायावादी विधा के उन्नायक महाकवि सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला' का सम्पूण व्यक्तित्व, अतिशय विद्रोही और क्रान्तिकारी तत्वो से निर्मित था। इसके कारण यह एक ओर जहा क्रान्तिकारी परिवतनो के स्रष्टा हुए, वहा दूसरी ओर परम्परा भ्यासी हिन्दी काव्य प्रेमियो द्वारा सबसे अधिक गलत भी समझे गये। विविध प्रयोग, छन्द, भाषा और शैली के बदलते स्वरूप, भावपक्ष और कलापक्ष की नवीनतम दष्टि ने इनके काव्य सृजन को नई दिशा देने मे सर्वाधिक महत्व पूर्ण भूमिका निभाई।

महाकवि निराला का जन्म बगाल के महिषादल गाव मे सन् 1896 ई० की वसन्त पचमी को हुआ था। बगाल मे बसने के कारण बगाली इनकी मातृ-भाषा हो गयी। दसवी कक्षा मे पहुँचते पहुँचते इनमे दाशनिक रुचि का विकास हो गया। 16 वर्ष की उम्र मे ही इनके माता पिता का देहान्त हो गया। इन्फ्लुएजा के विकराल प्रकोप से एक एक कर घर के अन्य प्राणी पत्नी, पुत्री और पुत्र भी चल बसे।

सन् 1916 ईसवी मे निरालाजी की अत्यधिक प्रसिद्ध रचना 'जुही की कली' प्रकाशित हुई। तभी एक सामान्य विवाद पर ये महिषादल की अपनी नौकरी छोड आये फिर रामकृष्ण मिशन के पत्र 'समन्वय' मे रहे, जहाँ इनकी दाशनिक चितनधारा को नयी शक्ति मिली। यहाँ से ये 'मतवाला पत्र के सम्पादक मण्डल मे चले गये। यहाँ, ये दो तीन वर्ष तक रहे और इस बीच इन्होने जो कविताएँ लिखी वे इनके सग्रह 'परिमल' मे सग्रहीत हैं। अय सकट के इसी समय मे इनके लिली', 'चतुरी चमार' सुकुल की बीबी', और 'सखी' नामक कहानी सग्रह तथा अप्सरा', 'अलका, 'प्रभावती' और 'निरुपमा' नामक उपन्यास पाठका के सामने आये। साथ ही समय समयपर लिखे छुट पुट लेख भी 'प्रबन्ध पद्य नाम से पुस्तकाकार रूप म छपे। जनरुचि के कारण इन्होन अपनी काव्य साधना को मोड नहीं दिया, वे एक निश्चित ऊँचाई से सामान्य भूमि पर कभी नहीं उतरे। इनके काव्यगत प्रयोग चलते रहे और 1936 ई० म 'गीतिका' तथा 1938 मे 'अनामिका' नाम से दो काव्य सग्रह

प्रकाश में आये, तभी इनके प्रबन्धकाव्य 'तुलसीदास' का भी प्रकाशन हुआ।

हिन्दी काव्य क्षेत्र मे 'निरालाजी का पदार्पण मुक्त छन्द वृत के साथ होता है। यही कारण है कि ये इस मुक्तप्रवृति के प्रथम पुरस्कर्त्ता हैं, वास्तव मे निरालाजी की उद्दाम भावधारा को, छन्द के बन्धन बाँध भी नही सकते थे। 'परिमल' की भूमिका मे इन्होने लिखा था—'मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति भी होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्म के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति, छन्दो के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरो के प्रतिकूल आचरण नही करता, उसके तमाम कार्य औरो को प्रसन्न करने के लिये होते है, फिर भी स्वतन्त्र, उसी तरह कविता का भी हाल है।' भारतीय आत्मा के चितेरे 'निराला' ने देश-काल और समाज की सभी स्थितियो को अपने काव्य मे स्थान दिया, समाज मे व्याप्त विषमताओ को इन्होने कभी नही स्वीकारा और उनके विरुद्ध सदैव सघर्षरत रहे।

> 'तन मन थक जाएँ, बुद्धि-बुद्धि मे हो लीन।
> मन मे मन, जी म जी, एक अनुभव बहता रहे
> कब से मैं रही पुकार, जागो फिर एक बार।'

निरालाजी ने नये नये स्वर ताल से युक्त गीतो की सृष्टि की। इनके गीतो की सबसे बडी विशेषता यह कही जा सकती है कि इन्होने सगीतात्मकता के नाम पर काव्य पक्ष को कही भी विकृत नही होने दिया। 'प्रेयसी', रेखा', सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' इनकी श्रेष्ठतम रचनायें हैं। जहाँ 'सरोज स्मृति' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत है, वहाँ 'राम की शक्तिपूजा' अप्रतिम महाकाव्यात्मक कविता। काव्य मे कर्ता के जिस निर्लेप व्यक्तित्व को टी० एस० इलियट ने स्थापित किया है, वह 'राम की शक्ति पूजा' कविता मे अपनी चरम ऊँचाई पर पहुँचा हुआ है।

> दृढ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
> फैला पृष्ठ पर बाहुओ पर, वक्ष पर विपुल
> उतरा ज्यो दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
> चमकती दूर ताराएँ ज्यो हो कही पार।'

प्रौढ कृतियो की सर्जना के साथ ही इन्होने व्यग्य विनोदपूर्ण कविताएँ भी लिखी। 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक रचना इन सबमे अग्रणी है। या व्यग्य की बानगी देखने के लिये इनकी दो गद्य रचनाओ—'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा को भी नही भुलाया जा सकता।

हिन्दी के प्रेमी, मित्रो के मित्र, दीन दुखिया के हिमायती, नये कवियो के

प्रेरक और स्वभाव से अक्खड निरालाजी का सम्पूण व्यक्तित्व और कृतित्व गगा यमुना और सरस्वती का वह सगम है जो—किसी भारतीय सस्कृति क द्रष्टा कवि का ही हो सकता है।

अभी न होगा मेरा अत
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन मे मृदुल वसत
अभी न होगा मेरा अत

कभी न समाप्त हाने वाले इस वसत, के गायक का, 15 अक्टूबर 1961 को इलाहाबाद मे देहात हुआ था। हिदी साहित्य मे, व्यक्ति के आदर्शों और सामाजिक हीनताओ के बीच निरतर सघष मे केवल निरालाजी' का बलिदान ही उल्लखित रह सकेगा—ऐसा हम नही, सभी हिदी साहित्य प्रेमी मानत हैं।

कही भी नही सत्य का रूप
अखिल जग एक अधतम कूप।
उर्मि घूर्णित रे मृत्यु महान
खोजता यहा कहाँ नात्ताण॥

वृन्दावनलाल वर्मा

हिदी साहित्य म ऐतिहासिक कथा भूमि के सशक्त प्रतिपादन मे वृदावन लाल वर्मा का नाम सर्वोपरि है। इनकी रचनाओ म दश प्रेम, यथाथ और आँचलिकता कूट-कूटकर भरी है। ऐतिहासिक उपयास और नाटक साहित्य म इनके कृतित्व की झलक दखते ही बनती है। मध्यप्रदेश म बुदलखड क्षेत्र क अटहट सौ दय मे परिपूण चरित्रो को वृदावन लाल वर्मा ने इतनी सादगी स आदश के मच पर आरुढ किया है कि साधारण पाठक भी उस पर शका प्रकट नही कर पाता। अपनी इक्यासी वष की उम्र तक वृदावन लाल वर्मा ने कुल मिलाकर छोटे बडे कोई इक्यासी उपयास लिखे, जिनमे गढकुण्डार' 'विराटा की पद्मिनी', 'कचनार', 'मुसाहबजू', झाँसी की रानी', 'मृगनयनी, माधवजी सिंधिया, अचल मेरा कोई', 'अमरबल' 'लगन 'प्रत्यागत', प्रेम की भेट, 'कुण्डलीचक्र', सगम, 'सोना, 'भुवन विक्रम', टूटे काँटे', 'अहिल्या

बाई', 'आहत' और 'उदयकिरण' आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे सामती युग की रगीनी और सामान्य वग का सघष दोनों ही सहज मानवीयता के साथ चित्रित हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास शौकिया तौर पर न लिखकर, उन्हे साधना क्षेत्र के रूप मे अपनाया। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य म प्रेमचद सामाजिक मनोदशा के सूक्ष्म सकेतकार माने जाते हैं उसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे रोमाटिक परम्परा के सबलतम लेखक कहे जाते हैं।

उत्तर प्रदेश के झांसी जिले के मऊरानीपुर गाँव मे पौष शुक्ला अष्टमी सवत् 1945 विक्रम को इनका जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम सवरानी और पिता का नाम अयोध्याप्रसाद था। बचपन से चचल और स्फूर्ति स्वभाव वाले वृन्दावन लाल वर्मा, अपनी मित्र मडली म कुछ विशेष बातो के लिये सदैव चर्चा के विषय रहत थे। शिक्षा के क्षेत्र मे ज्यो-त्यो इन्होंने एल० एल० बी० की परीक्षा पास की थी। लेकिन आगे चलकर इनका जीवन पूरी तरह शिकार और साहित्य के लिये समर्पित हो गया। मध्यकालीन बुन्देलखड के लोक रग को आत्मीयता के तीखे शब्दो से कहने के लिये ही वृन्दावन लाल वर्मा को हिन्दी साहित्य का 'वाल्टर स्काट' या बकिमचन्द्र कहा जाता है। वृन्दावनलाल वर्मा को उनके अद्वितीय साहित्य सृजन पर जहाँ आगरा विश्वविद्यालय ने डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया वही भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' के सम्मान से अलकृत किया, पर आगे चलकर इन्होने 'पद्म भूषण' का सम्मान, भारत सरकार को लौटा दिया। देश विदेश के अनक पक्षो से सम्मानित वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो का देश विदेश की अनेक भाषाओ मे अनुवाद हुआ। 'झांसी की रानी लक्ष्मी बाई', 'दुर्गावती', 'मृगनयनी' और 'पद्मावती' जैसी बलिदानी वीर नायिकाओ के चरित्र लेखक वृन्दावनलाल वर्मा का सम्पूण जीवन भारतीयता के अभ्युदय का जीवन रहा। 23 फरवरी, 1969 को झांसी के अस्पताल मे वन्दावनलाल वर्मा का देहान्त हिन्दी साहित्य म उज्ज्वल एतिहासिक कथा पक्ष का दुभाग्यशाली दिन है जिसे इस देश के पाठक भुला नही पायेंगे।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त के शब्दो मे—

मेरा वृन्दावन सदा फूला फला रहे
उसमे उसके कृष्ण की कूजित कला रहे,

यही कारण है कि मन से सदा जवान और कम से सदैव साधनारत वन्दावनलाल वर्मा को हिन्दी साहित्य मे यथाथवाद का प्रथम शिल्पी कहा जाता है। साधारण इतिहास जिस पक्ष पर मौन है, उस पर वृन्दावनलाल

वर्मा सबसे अधिक मुखर हैं, यह एक विशेषता ही है न कि अतिशयोक्ति। अच्छे पक्ष पर तो सभी रोशनी डालते हैं लेकिन समाज और समय के काले पक्ष को उजाले मे लाने का साहस चद कलमधारी ही कर सकते हैं। क्योकि व्यक्तिगत साहस की अपेक्षा इसमे सामयिक जीवन की आवश्यकता भी होती है। वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी साहित्य के अनन्यभक्त तो थे ही पर वे साथ ही सीमाओ से हटकर चलने वाले शिकारी और साहित्यकार भी थे। इन्होने बदूक और कलम दोनो से महत्वपूर्ण शिकार किये, जिन्हें हम विस्मृत नही कर पायेंगे।

साहित्यिक मर न सुधी, मानव मजु मराल।
प्रतिमा प्रभा प्रबुद्ध बुध, श्री वृन्दावनलाल ॥

क्रातिकारी साहित्यकार : यशपाल

26 दिसम्बर 1976 को लखनऊ मे विख्यात लेखक एवम् क्रान्तिकारी साहित्यकार यशपाल का 73 वर्ष की आयु मे देहान्त हो गया। वे लम्बे अर्से से बीमार थे। यो तो लोग जन्म लेते हैं और मर जाते हैं, किन्तु किसी लेखक की मौत उसके सृजन से आँकी जाती है। यशपाल इस सच्चाई से अमर हैं कि उनका साहित्य देश, काल और समाज के लिये समाजवादी मूल्यों से प्रेरित होकर लड़ने वाला हर नागरिक कभी भुला नही पायेगा।

यशपाल का अधिकाश जीवन अग्रेजो की जेलो मे, मुकदमों मे बीता, किन्तु इस सघर्ष यात्रा से प्रभावित लेखन मे यशपाल की आत्मा बोलती है। प्रेमचन्द, राहुल साकृत्यायन, शरतचन्द्र, सज्जादजहीर, जानिसार अख्तर जैसे लेखको की रचनायें इस बात की याद दिलाती है कि वे स्वय जिसे भोगते थे उसे लिखते थे।

यशपाल की पहली पुस्तक 'पिजड़े की उड़ान' वस्तुत जेल मे बद राष्ट्र भक्त की आकाक्षाओ का चित्रण ही है। इसके बाद यशपाल ने अपने जीवन मे पचासों पुस्तकें लिखी तथा 'विप्लव पत्रिका' का सम्पादन किया। 'विप्लव प्रकाशन' से ही यशपाल की सभी पुस्तकें छपी जो सब लाल रग की कवर वाली हैं।

)

यशपाल की रचनाओ मे 'सिंहावलोकन' (तीन भाग), 'दादा कामरेड', 'अमिता', 'झूठा सच', 'मार्क्सवाद', 'मेरी तेरी उसकी बात' नामक पुस्तकें बहुचर्चित हैं। यशपाल को जहाँ श्रेष्ठ सृजन के लिये 'सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार' मिला, वहाँ भारत सरकार ने इन्हे 'पद्मभूषण' की उपाधि देकर सम्मानित किया। केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने उनके उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' को हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठकृति के रूप मे पुरस्कृत किया है।

लेखक यशपाल को जब हम देखते हैं तो सहसा प्रश्न उठता है कि आखिर लेखक को किन जीवन मूल्यो से प्रेरित होकर लिखना चाहिये ? सातवें दशक के लेखन मे जहाँ व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा और सामाजिक कुठाओ का तुमुलनाद सुनाई पडता है वहाँ पाँचवें और छठं दशक के लेखको म राष्ट्रीय आवश्यकता एव सामाजिक प्रतिबद्धता का माहौल पाठक को मिलता है। हिन्दी साहित्य मे आज तक यह नही सोचा गया है कि यदि आजादी की लडाई का नायक लेखक कुठा, सत्रास निराशा और एक दूसरे को कीचड मे धकेलने का साहित्य लिखता तो क्या देश मे स्वाधीनता की मशाल उठाने का साहस आम आदमी कर पाता ? बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारीसिंह दिनकर' आदि का सृजन इस बात का सकेत है कि लेखक को राष्ट्रीय दायित्व की व्यापक भावना से प्रेरित होकर लिखना चाहिये। यशपाल का वजनदार लेखन इस बात का प्रमाण है कि कलम का सिपाही शोषित, पीडित और दलित भारतवासियो के लिये किस सपने को लेकर लडता है।

यशपाल ने अपने सृजन को किसी दायरे मे नही बाँधा तथा जीवन की छोटी छोटी बातो को खुले परिवेश म देखा। 'झूठा सच' उपन्यास हिन्दू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रीयता का प्रभावशाली उपन्यास है। भारत पाक विभाजन को लेकर अनेक रचनायें लिखी गइ, लेकिन यशपाल का 'झूठा सच और भीष्म साहनी का 'तमस' पाठक का सदैव याद रहेगा।

यशपाल स्वभाव से सीधे और सपाट थे। ऊपर से जीवन की कठोरता का बोध कराने वाले यशपाल भीतर से अत्यधिक सरल थे। वस्तुत उनका जीवन एक सामाजिक यथार्थ को राजनीतिक दर्शन की प्रतिबद्धता से जोडता है।

आज का लेखक जिस ज्वालामुखी पर खडा है उसके लिये उसका दायित्व और अधिक बढ जाता है। सामाजिक और आर्थिक रूपातरण मे लेखक की

भूमिका अब खुलकर सामने आनी चाहिए। जिस प्रकार प्रेमचन्द और यशपाल की हर रचना जनजीवन को साहस और सूझबूझ देती थी उसी प्रकार आज के चेतनाशील लेखक को भी व्यक्तिगत कठाओं से ऊपर उठकर सामाजिक दायित्वों के लिए लिखना चाहिये ताकि आम जनता के साथ उनका अंतरंग रिश्ता बन सके और वे लोकतन्त्र की संविधान मूलक प्रस्तावना को साकार रूप दे सकें।

संगीतकार

विष्णुनारायण भातखण्डे

देश-काल और पात्र भेद की स्थितियो मे ही पडित विष्णुनारायण भातखण्डे का जन्म महाराष्ट्र के वालकेश्वर गाँव मे 10 अगस्त (जन्माष्टमी) 1860 ईसवी को हुआ था। सनातन रीति चली आई है कि जैसा घर का वातावरण होगा वैसा ही बच्चो का भविष्य बनेगा, अत घर म व्याप्त भक्ति एव सगीत-प्रेम का प्रभाव भातखण्डेजी पर पूरी तरह पडा। प्रकृति ने इन्ह मधुरकण्ठ प्रदान किया था। देखते ही देखते य बम्बई विश्वविद्यालय के स्नातक बन गये। यही इन्होने उस समय के सुप्रसिद्ध कलाकारो से सितार तथा गायन, मुख्यतया ध्रुवपद का शिक्षण प्राप्त किया।

भातखण्डेजी के सगीतमय जीवन की कुछ चर्चा करूँ, इससे पूव यह कहूँगा कि वे विशुद्ध भारतीयता का जीवन जीते थे। न जाने क्यो उन्हे महफिल और मुजरो से चिढ थी। वकालत पास होने के कारण ये बहुत दिनो तक अदालत भी जाते-आते रहे, लेकिन सगीत और कचहरी मे अततोगत्वा तालमेल नही बैठा। समग्र देश के प्रख्यात सगीत रूपो को जानने हेतु इन्होने तभी समूचे देश का पयटन किया। इनकी सबसे पहली यात्रा दक्षिण भारत की थी। इस यात्रा के दौरान इन्होने कर्नाटक सगीत और उत्तरी भारत मे प्रचलित सगीत का तुलनात्मक अध्ययन किया। 1911 ईसवी म ये उत्तर भारत की यात्रा पर गये। इस दौरान राजस्थान के ध्रुवपद गायको स इन्ह अत्यधिक सहयोग मिला। अपनी यात्राओ का विशद अध्ययन इन्होने प्रस्तुत किया 'हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति' नामक पुस्तक मे। सगीत शास्त्र पर इनकी अनुपम रचना 'लक्ष्य सगीतम्' नाम से 1911 ईसवी मे प्रकाशित हुई।

इनकी कृतियो मे 'श्री मल्लक्ष्य सगीतम्' 'षडराग चन्द्रोदय', 'सगीत पारिजात प्रवेशिका', स्वरमालिका', हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति' (जो चार भागो मे है) और 'हिन्दुस्तानी क्रमिक पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका' (जा छ भागो मे है) उल्लेखनीय है।

भातखण्डेजी की प्रतिभा केवल कुशल गायक के रूप मे ही नही वरन् एक सुयोग्य शिक्षक के रूप मे प्रत्यक्ष प्रमाण मे पायी गई है। भातखण्डेजी

म प्राचीन ग्रन्थोक्त 'नायक' के सभी गुण थे तथा इनकी रचना शक्ति भी अलौकिक थी।

भातखण्डेजी सगीत को एकता का माध्यम मानते थे और इन्होंने हिन्दुस्तानी एव कर्नाटक सगीत के समन्वय से नये राष्ट्रीय सगीत की कल्पना की थी। इस दिशा मे इन्होंने प्रयास भी किया। शास्त्रीय पक्ष की खोज क साथ साथ सगीत सम्मेलनो के माध्यम से भातखण्डजी ने सगीत को रईसो की महफिल की चहारदीवारी से बाहर निकालकर जनता के बीच लाने का प्रयास किया। भातखण्डेजी कहते थे — यदि देश की दोना सगीत पद्धतियो का मिश्रण कर दिया जाये तो अधिक उत्तम होगा। इसस हिन्दुस्तानी पद्धति का वणन करना और भी रोचक बन जाता है। हमारे जीवित कलाकारो द्वारा सैकडो नवीन रागो का प्रचलन हा सकता है। साथ साथ दक्षिणी पद्धति के लिये इस बात का पुन अवसर आयेगा कि वह भी उत्तरी भारत के सगीतज्ञो से वादी, सम्वादी, कण आदि रागो की सौन्दयवधक चीजो को अपनाकर अपनी सगीत पद्धति को अधिक सजीव बनाए।'

सगीत का प्रचार और प्रसार करने हेतु इन्होंने कई अखिल भारतीय सगीत सम्मेलनो का आयोजन किया। लखनऊ, ग्वालियर और बडौदा मे सगीत के स्कूल खुलवाये। इन्होने दक्षिण के महान पडित व्यकटमुखी की 'थाट पद्धति' का अनुसरण करते हुए 10 थाटो मे सब रागो का वर्गीकरण किया। यह सगीत क विभिन्न स्वरूपो के प्रतिपादक लेखक ही नही, वरन अच्छे गायक भी थे।

पडितजी को आर्थिक महायता किसी से भी न मिली लेकिन इन्होने अपने लक्ष्य को कभी ओझल नही किया। इनका विचार था कि सगीत साहित्य से सगीत की उन्नति होगी। इन्होने इसी सत्य को फलीभूत करने हेतु अनक कष्ट उठाकर भी—बिखरे सगीत को एक स्थान पर एकत्रित किया। आज भारत के हर विश्वविद्यालय मे सगीत शिक्षा के अन्तगत भातखण्डे जी की रचनाओ के मूल्य को स्वीकारा जाता है। कुछ लोग यह कहते हैं कि गमक, मीड एव सगीत की सारी हरकतो का नोटेशन सभव नही है पर इन्होने यह सब सभव कर दिखाया।

इतना महान काय करके भी इनम ऐसी विनम्रता थी कि आलोचक-समालोचक सभी दग रहते थे। सगीत के ऐसे अधिकारी विद्वान भातखण्डजी का देहान्त 19 सितम्बर, 1936 को गणेश चर्तुथी के शुभ दिन हुआ। भातखण्डेजी कहते थे—जो आज का सगीत है वही कुछ समय मे भूतकाल का सगीत हो जायेगा। परन्तु किसी भी कला का अध्ययन तब तक अधूरा ही है जब तक कि उसकी प्राचीन परम्परा को ओर न देखा जाए।

विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

जिस प्रकार देवताओ मे देवता शिव, पवतो मे अजेय हिमालय और नदियो मे पावन नदी गगा है, उसी प्रकार समस्त कलाओ मे सगीतकला श्रेष्ठ, सुदर व सुखद है। सगीत गान का मम आध्यात्मिक तत्व का पर्याय है। यह नाद ब्रह्म है, इसे त्रयी विद्या भी कहते हैं इसी हेतु सगीत, वाद्य और नृत्य का मेल स्वीकारा गया है—

गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीतमुच्यत ।

यहाँ तक कि सगीतमय आराधना को भक्ति का सबसे सर्वोत्तम आधार माना गया है। देवर्षि नारद इसके उदाहरण हैं—हाथ म वीणा एव खरताल धारे नारद सगीत के माहात्म्य के गायक हैं—

नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदय न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

यही कारण है कि भारतीय भक्ति धारा में सगीतोपासना का बाहुल्य रहा। पारम्परिक एव सूर और तुलसी के पद, जयदेव और विद्यापति की रचनाएँ यदि मीरा, हरिदास, त्यागराज गुसाई विठ्ठलनाथ सत तुकाराम या पाडुरग न गाते तो शायद ही देश श्रेष्ठ साहित्य को जान पाता। इसी प्रकार आधुनिक भारतीय सगीत ससार म पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का स्थान है। जिन्होंने सगीत को असीमित जनप्रियता प्रदान की। पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का साधना काल भारत की सामाजिक अधोगति का वह समय रहा है जब सगीत को हर भला आदमी हेय दृष्टि से देखता था। गायन विद्या को गिरा हुआ काम माना जाता था, और तो और घरा म सगीत की चचा, अमर्यादा की द्योतक मानी जाती थी। लेकिन पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने सगीत के माध्यम से जिस मूल्यवान भक्ति जगत की रूपरेखा जनसाधारण के सम्मुख रखी वह—उल्लेखनीय है। बीसवी शताब्दी मे विष्णु नारायण भात खण्डे एव पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर दो ही ऐसे सगीत साधक हुए है जिन्हे कि हिन्दुस्तानी सगीत के कर्म क्षेत्र मे सदियो तक याद किया जा सकेगा।

पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म सन् 1872 ईसवी मे श्रावण

पूर्णिमा के दिन, रात आठ बजे, महाराष्ट्र के बेलगाँव जिले की कुरुदवाड रियासत मे हुआ था। इनकी पूज्यमाता का नाम गगा देवी व पिता का नाम दिगम्बर गोपाल था। घर मे कीर्तन की परम्परा न इनमें सगीत के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया। भगवान दत्तात्रेय के उत्सव मे आतिशबाजी की दुर्घटना म ये नेत्र ज्योति खो बैठे। पर कहावत है—'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। पन्द्रह वर्ष की आयु मे इन्हे गायनाचार्य बालकृष्ण बुआ की देखरेख मे सगीत शिक्षा प्राप्त हुई। इसी शिक्षा का परिणाम था कि ये जल्द ही मिरज रियासत के प्रसिद्ध सगीतज्ञो म गिने जाने लगे।

एक बार की बात है—मिरज की एक कपडा मिल म भारी सहभोज था। नगर के सभी गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे पर सगीतकारो के प्रति समाज की इस अवमानना क कारण इनके गुरुजी को नही बुलाया गया था। गुरु को भोज म न पाकर, पडित विष्णु दिगम्बर का मन क्रोध व सकल्प स भर गया। उन्होने सगीत को प्रतिष्ठा दिलाने का व्रत लिया। समाज मे सगीतकारो के सम्मान को प्रतिष्ठित करना ही पलुस्करजी की जीवन यात्रा का प्रमुख लक्ष्य हो गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति मे इन्होने घर छोड दिया, रियासत छोड दी और सतारा, बडौदा तथा काठियावाड की यात्रा की।

ये जहा भी गये, वहाँ के सम्पन्न व्यक्तियो ने इन्हे अपने पास रखना चाहा, पर ये कला को सीमित नही करना चाहते थे क्योकि कला पूरे समाज के सुख के लिये है। केवल वैयक्तिक सुख के लिये नही। सुना जाता है इस सकल्प यात्रा मे, जूनागढ के पहाडो मे इन्हे एक सिद्ध पुरुष के दर्शन हुए जिन्होने इनके ज्ञानदीप को प्रज्ज्वलित किया। गिरनार मथुरा, दिल्ली, जालन्धर, अमृतसर, काश्मीर, रावलपिण्डी, जोधपुर, भरतपुर और बीकानेर होते हुए व लाहौर पहुचे, जो इनके जीवन लक्ष्य का पावन केन्द्र बना। पलुस्करजी ने लाहौर म 'गान्धर्व महाविद्यालय' की स्थापना की, जो आगे चलकर देश भर मे सगीत विकास का प्रेरक अग बना।

पिता की मृत्यु भी इनके सकल्प को न तोड पायी। हुआ यह कि इनकी ख्याति ने कई नरेशो को सगीत की तरफ आकृष्ट किया, जिससे इनकी सगीत यात्रा का आर्थिक कष्ट दूर हो गया।

ऐसी सगीत मूर्ति का विवाह रमा बाई से हुआ था, जिससे इनके केवल एक पुत्र—दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर ही जीवित रह पाये और जो सगीत क्षेत्र में अपने पिता की परम्परा के पोषक बने।

पलुस्करजी ने अपने गायन मे 'रामायण', 'प्रेमसागर' के प्रसगो को अधिक अपनाया ताकि सगीत, लोक जीवन का अग बन सके। पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के लिये अहमदाबाद के काग्रेस अधिवेशन म महात्मा गांधी

ने कहा था—'लोग कहते हैं कि गाधी प्रत्येक सभा का प्रधान बन जाता है, किन्तु सगीत तो सकट मोचन है। परसो मैं मुख्यद्वार से पाडाल मे पहुँचना चाहता था, पर भीड मुझे पहुँचने ही नही देती थी। मैं हर प्रयत्न कर हार गया, अत मे पडित पलुस्कर के सगीत प्रभाव ने ही मुझे इस मुश्किल से बचाया। आगे चलकर इस दिव्यस्वर का स्वगवास 21 अगस्त सन् 1931 मे हुआ जो सगीत के लिये 'क्षति का दिन' है।

जिस सगीत का आविर्भाव भगवान शकर से हुआ, तीन लाक मे ब्रह्मा, नारद, तुम्बरु, भरतमुनि इत्यादि ने जिसकी आराधना की, वही सगीत पडित पलुस्कर की महत्वाकाक्षा का प्रतीक था, और भारतीय सगीत का उज्ज्वल भविष्य।

सामगान, मार्गीगान और देशी गान मे, सामगान और मार्गीगान तो अब लुप्त प्राय से हैं। देशी गान जब तक ध्रुवपद मे था तब तक रागो के रूप प्रगट होते थे, पर जब से खयाल, टप्पा, और ठुमरी के रूप मे यह परिणत हुआ, उसका रूप अस्पष्ट हो गया, लेकिन सगीत मे देशी गायन के रूप को फिर से सँवारने का मुख्य श्रेय पडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर को है।

त्यागराज

भारत मे मुख्यतया दो सगीत धाराएँ बहती हैं। एक है हिन्दुस्तानी सगीत और दूसरी कर्नाटक सगीत। जिस प्रकार हिन्दुस्तानी सगीत के अतंगत तानसेन, दत्तात्रेय, विष्णु पलुस्कर और विष्णु नारायण भातखण्डे के नाम उल्लेखनीय हैं उसी प्रकार कर्नाटक सगीत की मूलात्मा के रूप मे त्यागराज को सभी द्वारा जाना जाता है।

तमिलनाडु के तजोर जिले मे तिरुवाकुर नामक एक गाँव है, जहा पहले रामब्रह्म नामक रामभक्त रहा करते थे। इनके तीन पुत्र थे, जिनमे सबसे छोटे थे—त्यागराज। त्यागराज का ज म 4 मई 1767 बताया जाता है।

तिरुवाकुर का क्षेत्र पचनद क्षेत्र कहलाता है। यहाँ कावेरी और उसकी सहायक नदिया बहती है। तजोर के महाराजा से प्राप्त भूमि पर यहाँ आकर बस गये थे त्यागराज के पिता रामब्रह्म। त्यागराज बचपन से ही विद्याभ्यासी थे। महाभारत, रामायण, पुराण और भागवत आदि मे रामायण उन्ह सर्वाधिक प्रिय थी। ये बहुत सबेरे उठते, कावेरी की पावन धारा मे स्नान करते,

रामायण का पाठ करते और पिता को राम नाम लिखकर बताते तथा सध्या उन्हें राम भजन गा गाकर सुनाते। तजोर से लगभग नौ किलोमीटर दूर स्थित तिरुवैयारु के राजदरबार मे उन दिनो एक प्रसिद्ध वीणा वादक थे—वेंक्ट-रमणय्या। भाग्य से वे त्यागराज के पडोसी भी थे अत प्रारम्भ से ही त्याग राज को योग्य सगीतशास्त्री का वरदहस्त प्राप्त हुआ।

क्योंकि त्यागराज पूरी तरह धार्मिक प्रवृत्ति के थे अत सहसा उनका रुझान 'तक महामत्र' की ओर हो गया। दोनो बड़े भाइयो ने घर की सम्पत्ति को हडपकर उन्हे केवल राम नाम के बीच ही छोड दिया। त्यागराज के गीत 'कीतन' कहलाते हैं। कहा जाता है कि एक बार देवर्षि नारद ने सोचा कि जाकर त्यागराज के गीत सुनें। वह एक साधु का वेश धारणकर त्यागराज के घर आये। उस समय वे कीतन कर रहे थे। नारदजी उनके राम कीर्तन को सुनकर सुध-बुध भूल गय, और उन्हे एक ताडपत्र पुस्तिका भेंट की जिसका नाम स्वराणव' था। यही कारण है कि त्यागराज का व्यक्तित्व 'नारद' के प्रतिरूप था। धीरे धीरे उनकी ख्याति आस पास के क्षेत्र मे फैलने लगी। उनकी शिष्य मडली मे अनेकानेक लोग शामिल होने लगे। अब त्यागराज अपने अनुयाइयो के साथ काचीपुरम्, तिरुपति शोलिंघुर मद्रास, तिरुवोलियूर, कोवुर, नागपट्टीनम और श्रीरगम की यात्रा पर भी गये। यहाँ इस बात का उल्लेख उचित रहेगा कि उनके समसामयिक सगीतकार मुत्तुस्वामी दीक्षितार और श्यामाशास्त्री उनका बहुत सम्मान करते थे। जब त्यागराज की कीर्ति तजोर के राजा शरफोजी तक पहुँची तो उसने, अपने राजदरबार मे उनको बुलाना चाहा पर उनके निकटजनो के बहुत समझाने पर भी ये राजदरबार में नही गये। त्यागराज का कथन था—

'निधि चाला सुखमा, रामुनि सन्निधि चाला सुखमा। अर्थात् सुख धन मे नही है राम को पाने मे है।

जिन मूर्तियो की पूजा त्यागराज करते थे, उन्हे एक बार उनके बडे भाई ने कावेरी नदी मे बहा दिया, ताकि ये राम कीर्तन का मोह छोड दें। हुआ यह कि त्यागराज ने खान पान सब त्याग दिया। तभी उन्हें अचानक रात को राम छवि के दशन हुए और यह वाणी सुनाई दी कि— उठो त्यागराज! तुम्हारी मूर्तियाँ कावेरी नदी म रेत के नीचे दबी पडी है उन्हे निकाल लो। प्रतिमाओ को लेकर जब ये घर लौटे तो घर के सभी सदस्य बहुत प्रसन्न हुये और सबने श्रद्धा से अपना सिर झुका लिया। त्यागराज के जीवन काल में ही उनकी स्त्री का स्वर्गवास हो गया था। इस दुखद घटना के बाद उन्होने सन्यास ले लिया। पौष वदी पचमी का दिन था। स यास लिये अभी दसवाँ

दिन ही हुआ था कि त्यागराज ने समाधि लगाई। समाधि का दिन था 6 जनवरी सन् 1847। कावेरी नदी के किनार तिरुवैयारु' नामक स्थान पर बघुला पचमी, माह मांगशीप को उनकी समाधि के पास आज भी धर्म और सगीत के प्रेमी एकत्रित होते हैं और त्यागराज का स्मरण, उनकी कृतियो को गाकर करते हैं। 'प्रह्लाद भक्ति विजयम' और नौका चरितम्' नामक पद्य ग्रथ के अतिरिक्त त्यागराज का लिखा सगीत ग्रथ— शतराग रत्नमालिका' था, जो दुर्भाग्य मे अब उपलब्ध नही है। त्यागराज की अधिकाश रचनाओं मे राम चरित्र एव कावेरी के पचनद क्षेत्र एव निकट के प्रमुख मदिरो का और उनकी मूर्तियो का वणन है।

कई गीतो मे उ होने सगीत को य त्र, आराध्य की पूजा की सामग्री आदि बताया है और कइयो मे नाद को 'नाद सुधारस कहा है। अपनी भक्ति के लिय इसी नाद ब्रह्म को अपनाने के कारण 'तुचन' की तरह अपने ही प्रान्त की सीमा मे बन्द न रह कर त्यागराज सारे भारत के विमुक्त आकाश में विचर रहे हैं।

नृत्य

रास

भारतीय सस्कृति के इतिहास मे मूर्तिकला और चित्रकला के साथ-साथ नृत्यकला का भी महत्वपूण स्थान है। नृत्यकला की रचना ब्रह्मा ने देवताओ की स्तुति पर प्रसन्न होकर, वेदो से की। ऋगवेद से विषय निर्वाचन, सामवेद से सगीत, यजुर्वेद से भाव भगिमा और अथववेद से रस लेकर उन्होने नृत्य-शास्त्र' का निर्माण किया। इन्द्र की सभा मे अप्सराओ के नृत्य, ऋषि मुनियो की समाधिभग करने हेतु सुन्दरियो के नृत्य, शिव का ताण्डव नत्य, या भगवान राम और कृष्ण की लीलाओ पर आधारित नृत्य—लोकोत्तर आनद एव मनोरजन के साधन ही नही, अपितु त्रैलोक्य के समस्त भावो को कुशलता पूवक दर्शाने के सशक्त माध्यम माने जाते हैं।

नृत्यो की अनेक विधाओ मे एक विधा है—रास, जो प्रमुखत भगवान कृष्ण की मनोहारी लीलाओ से जुडा हुआ है। जहां आज कृष्ण को रासधारी कहा जाता है वहां व्रजभूमि को रासभूमि के नाम से जाना जाता है।

हम भारतीय मूर्तिकला के अनेक महत्वपूण स्थानो को देखें या सग्रहालयो मे रक्षित नाना शलियो के चित्रो को, हम पायेंगे कि उनमे भगवान कृष्ण की जीवन लीला को नृत्य के माध्यम से अनेक रूपो म दर्शाया गया है। कृष्ण के जन्म से लेकर महाभारत काल तक के उनके सम्पूण क्रिया स्वरूप को सूक्ष्म भाव भगिमा के सहारे जीवत रखने का प्रयास किया गया है।

हम कृष्णलीला के इसी नृत्य रूप को 'रास' के रूप मे भली भांति जानते हैं। आज 'कृष्णनृत्य धारा' के अन्तगत-- कथकलि, मणिपुरी, कत्थक, महाराष्ट्र का पवाडा, गुजरात का गरबा और कृष्ण भजन, मथुरा वृन्दावन की रासलीला और राजस्थान की गोपिका लीला के द्वारा राधा एव कृष्ण की मनहर झांकियां वार त्योहार तथा विशेष अवसरो पर दखी जा सकती हैं। इसी कृष्णलीला को अलग-अलग जगह पर, अलग अलग, रूप मे नृत्यकला के द्वारा जीवन म उतारने की चेष्टा की गई।

उत्तर भारत मे प्रचलित 'कत्थक' जिसके अधिष्ठाता भगवान कृष्ण माने जाते है उत्तर प्रदेश और राजस्थान का प्रमुखनृत्य है, जिसमे कृष्ण का लीला गान, उनका रासरग, उनका रूप चितन नामस्मरण एव भक्त नतक का आत्म

निवेदन तथा प्रभु मे समपण पूरी तरह ममाहित लगते हैं। कत्थक यानि 'कथा कहने वाला' यह नृत्य इस नाम का साथक करता है क्योकि यह नृत्य नटवर अर्थात बहुरूपी लीलाधारी कृष्ण की कथा नृत्य क माध्यम से प्रस्तुत करता है। मुस्लिम सस्कृति के अतगत इसे 'आमद' रूप मे जाना जाता है। तबला सारगी, मजीरा पर सयोजित 'लहरा' के साथ, कृष्ण कथा 'कत्थक' नृत्य के रूप मे प्रस्तुत की जाती है।

मणिपुरी नृत्य, वैष्णव भक्तो का प्रमुख नृत्य है। नृत्य भूमि मणिपुर म कृष्ण को कितनी गहन अनुभूति के साथ स्वीकारा जाता है यह सब दृष्टव्य है मणिपुरी नृत्य मे। कृष्ण के लिये राधा की आकुलता, कृष्ण और गोपियो की लीला विरह तथा मिलन सब कुछ मणिपुरी नृत्य की भगिमाओ मे समाया रहता है। 18वी शताब्दी मे प्रारम्भ इस नृत्य को कीतन रास और रथयात्रा के विभिन्न सोपानो द्वारा रोचक बनाया गया है। राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के सामन 'करताल चॅलम' वस्त्र मे नाचते व भक्तिपद गाते देख सहसा मन विभोर हो उठता है।

मनमोहक रग बिरगी पोशाक पहिनकर किया जाने वाला मणिपुरी नृत्य कृष्ण लीला' कर प्रमुख नृत्य रूप है।

कहते हैं कालीकट के राजा जमेरिन ने भगवान कृष्ण के स्वप्न कथन को कथकलि नृत्य मे पिरोया और 'कृष्ण अत्तम अथात कृष्णलीला का प्रारम्भ कराया।

लोकनृत्यो के अतगत उत्तर प्रदेश मे मथुरा, वृदावन की रासलीला प्रसिद्ध है जो कृष्ण, राधा और गोप गोपियो की भाव भूमि पर आधारित होती है। इसमे भगवान कृष्ण की जीवन झाँकिया को विविधता से नृत्य रूप म प्रस्तुत किया जाता है।

राजस्थान मे कृष्ण जन्माष्टमी तथा अन्य कृष्ण परक अवसरो पर झूला, लीला एव नृत्य होते हैं। राजस्थान के कुछ गावो मे गोपिका लीला भी होती है जिसमे जनसमूह खुशी से नाचता व कृष्ण पद गाता है।

गुजरात म केवल पुरुषो के समूह द्वारा कृष्ण भजन नृत्य किया जाता है साथ ही यहाँ रासलीला भी होती है, जो पूण चाँदनीरात को की जाती है। सौराष्ट्र का गरबा नृत्य तो भारत का जाना माना लोकनृत्य है जिसका सबध भगवान कृष्ण के द्वारका निवास से चला आ रहा है। कहते हैं यह नृत्य गुजरात को भगवान कृष्ण की ही देन है। जब रग बिरगे वस्त्र भूपण पहिनकर, स्त्रियाँ मधुर ताल से ढोलक और बाँसुरी की धुन पर नाचती हैं तो सार वातावरण, मे एक अद्भुत थिरकन होने लगती है।

इसी तरह का लोकनृत्य है—असम का 'केलि गोपाल' जिसमे कृष्ण क

गोचारण, बकासुर वध, गोपीरास और महारास की लीलायें क्रमश प्रस्तुत की जाती हैं।

कृष्णलीला को चित्रित करने वाले बगाल के चर्चित लोकनृत्य हैं—कीर्तन और जात्रा। महाराष्ट्र मे हाँडी नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। इसमे कृष्ण की माखन-लीला के साथ ही राधा कृष्ण की प्रणय लीलाओ का वणन होता है। राधा कृष्ण की प्रणयलीला सम्बन्धी नृत्य को राधानाच कहते है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण लीला जहाँ एक तरफ भक्ति पदा म, मूर्तियो तथा चित्रो मे अकित की गई वही दूसरी तरफ वह रासलीला के रूप मे—नृत्यशास्त्र की महत्वपूण कथासूत्रिका भी बनी है।

कथकलि

कवीन्द्र रवीन्द्र ने एक बार कहा था—'कथकलि एक ऐसा नृत्य है जो अभूतपूव और अनुकरणीय है। उसकी तकनीक और किसी कला मे दिखाई नही पडती। मैं यह कहने मे असमथ हूँ कि कथकलि से बढकर कोई नृत्य कही दिखाई पडेगा। इसमे सन्देह नही कि कई वर्षों की सस्कृति, साधना और उपासना के परिणामस्वरूप ही इस प्रकार की उन्नति हो सकती है। महाकाव्यो से सबद्ध होने के कारण उसका शिक्षा मूल्य भी कम नही है।'

केरल प्रदेश का सगीतमय नृत्य नाटक कथकलि, पुराणो मे वर्णित नृत्य रूप का सबसे सशक्त माध्यम है। हृदय के पूणतम आनन्द की अभिव्यक्ति ने ही नृत्य का स्वरूप ग्रहण किया तथा उस प्रसन्नता का अग-प्रत्यग पर प्रभाव ही उसकी विकसित मुद्राओ का विषय बना। कथकलि भी अभिनयोल्लास का एक ऐसा ही सगठित नृत्य है, जिससे भरत मुनि के नाटयशास्त्र मे वर्णित चारो गुण मौजूद हैं—

आगिको वाचिकश्चैव
ह्याहार्यस्सात्विकस्त था
चत्वारो ऽभिनयो ह्योते
येषु नाटय प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात्–जिस कला मे आगिकादि चार प्रकार के अभिनय से रस व्यजक रूप

में नायकादि की अवस्था का अनुकरण किया जाता है वह नाटय है, जो कला हस्तमुद्रा से पदार्थाभिनय करके भाव व्यजक होती है, वह नृत्य है तथा जिसमें केवल ताल लय के अनुसार अगो का चालन होता है वह नृत्त है। वास्तव मे ये परस्पर निरपेक्ष नही, समपेक्ष हैं।

मलयालम मे कलि का अर्थ है खेल, इसलिये कथकलि का अथ है, कथा त्मक खेल या नाटय। कथकलि नृत्य की गाथा का ग्रन्थ आट्टककथा था। जिस प्रकार उत्तर भारत मे कृष्ण नाट्यम का प्रादुर्भाव हुआ उसी प्रकार दक्षिण भारत मे 17वी शताब्दी के अन्तगत कोटारक्करा के राजा द्वारा राम नाटय की नृत्य विधाओ का वेषभूषा के साथ अनुकरण प्रारम्भ किया गया। बाद मे वेट्टम के राजा कप्लिगाड नबूतिरि, कल्लडिक्कोड नबूतिरि आदि प्रतिभाशाली कला प्रेमियो ने प्रस्तुत कला मे बहुत सुधार किया। इस प्रकार आजकल की कथकलि का रूप निश्चित हुआ।

इसके पाँच प्रकार है मिनुक्कु, पच्चा, कत्ति, ताटि और करि। कथ कलि नृत्य मे वेष भूषा का चुनाव ऐसा है कि कलाकार अद्भुत और आकषक जान पडता है लेकिन वेषभूषा मे रग चयन, पात्र के गुण, गाथा और समय के अनुसार ही रखा जाता है। रगो की अपनी भाषा है वाणी है, यह बात कथकलि नृत्य के पात्रो को देखकर साकार लगती है। साज सज्जा का इस नृत्य म काफी लम्बा विधान है। कथकलि नृत्य मे दो वाद्य यन्त्र, चडई और मुडडलम, का प्रयोग किया जाता है। कथकलि नृत्य मे साधारणत 30 व्यक्तियो का दल होता है। एक समय था जब केरल का हर सम्पन्न व्यक्ति अपना अलग कथकलि नृत्य का दल रखता था।

शरीर के अग प्रत्यग का सचालन इस नृत्य की मुद्राओ वाली ऐसी शारीरिक कसरत है जो करीब सात आठ साल म पूरी तरह निखरती है। कथकलि नृत्य मे अक्सर 24 मुद्राओं का प्रयोग होता है। इस सगीत गाथा मे नवरस की अभिव्यक्ति तो रग समन्वय, आँख और हाथ की मुद्राओ तथा पद सचार के माध्यम से देखते ही बनती है। अक्सर कथकलि नृत्य मे राम और कृष्ण ही अभिव्यक्ति के केन्द्र होते हैं। कथकलि मुख्यतया भावाश्रयी और नाटक रसाश्रयी है। कथकलि मे नाटकशास्त्र के विपरीत युद्ध, वध और कोलाहलपूर्ण भयकर दृश्यो का समावेश होता है। कथकलि ग्रथों की रचना पौराणिक कथावस्तुओं के आधार पर की जाती है। हम यह कह सकते है कि 'शख मद्दलमय्यर्धध्वनि ध्वनि दिमुखेषु निशम्यते' अर्थात्—आज कथकलि नृत्य का सदेश देश के कोने कोने मे गूजने लगा है।

पर्व

मकर सक्रान्ति

देवताओ की प्रेरणाभूमि भारतवष ही दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है जहा हर दिन की एक कथा है हर माह की एक गाथा है और हर मौसम की एक भूमिका है। कही यह प्रसग जातियो के आधार पर कहे सुने जाते है तो कहीं यह पव प्रात के परिवेश पर मनाये जाते हैं।

मकर सक्राति एक ऐसा ही दिन और पव है, जो धार्मिक पृष्ठभूमि के साथ साथ ज्योतिष एव प्रकृति विज्ञान से भी जुडा हुआ है तथा पूरे देश मे स्नानपव के रूप मे मनाया जाता है।

मकर का अर्थ है—घडियाल और ज्योतिष विद्या के अनुसार प्रचलित बारह राशियो मे से, दसवी राशि। मकर कुबेर की नौ निधियो मे स भी एक कहलाती है।

सक्राति का अर्थ है—माघ मास की सक्राति, जिस दिन सूय उत्तरायण होता है—अर्थात् सूय या किसी ग्रह का एक राशि से दूसरी राशि मे प्रवश होता है। मकर राशिवाला स्वभाव से सयास या विरक्त प्रवृतिवाला होता है। यही कारण है कि इस दिन से सभी व्यक्तियो का ज्योतिष के अनुसार स्थिति परिवतन होता है।

माघ कृष्ण प्रतिपदा का यह स्नानपव वेदो मे आपस के मेल जोल और प्रेम की पुण्यलाभा घडी का दिन कहा गया है। प्रयागराज मे गगा यमुना और सरस्वती का सगम, मकर सक्राति का सवाधिक माहात्म्यवाला स्थान है जहाँ प्रतिवष आज के दिन से माघ मेला जुडता है।

मकर सक्राति से प्रारभ माने जाने वाले माघ मेले मे कल्पवास की भी प्रथा है। बहुत से श्रद्धालु यात्री प्रतिवष गगा-यमुना के मध्य मे कल्पवास करते हैं। यह कल्पवास कुछ लोग सौर मास की मकर सक्राति से कुम्भ की मकर सक्राति तक करते हैं, और कुछ लोग चाद्रमास के अनुसार माघ के पूरे महीने तक करते हैं।

हर बारहवें वष, जब वृहस्पति वृषराशि में और सूय मकरराशि म होते हैं तब प्रयाग मे कुम्भ का विश्व प्रसिद्ध मेला लगता है। इस कुम्भ पव पर लाखों यात्री साधु, सयासी धूत, अवधूत और धार्मिक अखाडे एकत्रित होत

है। इसी दिन हर छठें वष अर्धकुम्भी मेला होता, जा पूरे माघ महीने तक चलता है। कहते हैं—सम्राट हषवर्धन प्रयागतीय म हर पाँचवें वर्ष कुम्भ और अधकुम्भ के समय एक धम सभा का आयाजन करते थे तथा उसमे अपना मवस्व दान कर दिया करते थे।

यो सामान्यतया भी तीर्थों के राजा—प्रयागराज मे स्नान का फल मोक्ष की प्राप्ति माना जाता है फिर मकर सक्रान्ति का स्नान तो अतुलनीय फलदायक कहा गया है। पद्मपुराण के अनुसार—

प्रयाग तु नरा यस्तु, माघस्नान कराति च।
न तस्य फलसख्यास्ति, शृणु देवर्षि सत्तम्॥

अर्थात्—हे देवर्षि! प्रयाग मे जो भी आज का माघ स्नान करता है वह श्रेष्ठ पुण्य का भागी बनता है।

मकर सक्रान्ति से ही दिन बडे होन लगत हैं तथा रात अपक्षाकृत छोटी होने लगती है। रात की घटती अवधि ही मकर सक्रमण कहलाती है। आज के मोक्षदायक दिन ही सूय के दक्षिणायण स उत्तरायण होने पर महाभारत के अपराजेय योद्धा भीष्मपितामह ने अपन प्राण त्यागे थे।

मकर सक्रान्ति का पव प्राय स्नान पव है, जो भारत के हर नदी घाटो पर या पावन तालाबो म सम्पन्न होता है। इन सबम प्रयागराज, पुष्कर, उज्जैन, कुरुक्षेत्र एव हरिद्वार आदि का स्नान अधिक पुण्यभागा समझा जाता है।

राजस्थान मे आज के दिन पतग उडाई जाती हैं, तिल के लड्डू खाये जाते हैं, व्रत रखा जाता है, ठडा खाया जाता है और पुष्कर स्नान का लाभ उठाया जाता है।

पोंगल

जिस प्रकार उत्तर भारत मे होली और दिवाली, बगाल मे दुर्गापूजा, महाराष्ट्र मे गणेश पूजा और पजाब मे वशाखो का त्यौहार बडी धूमधाम से राज्य स्तर पर मनाया जाता है उसी प्रकार दक्षिण भारत मे ओणम और पोंगल नामक दो अवसर ऐसे हैं जब कि सारे दक्षिण भारत मे नन्योदय की लहर सी आ जाती है। जिस प्रकार ओणम केरल का प्रसिद्ध त्यौहार है

उसी प्रकार पोंगल तमिलनाडु का प्रमुख पर्व है। यदि हम देखें तो ज्ञात होगा कि उत्तर भारत और दक्षिण भारत के ये सभी पर्व-त्योहार खेती से सम्बन्धित हैं। नई फसल के आगमन पर या अच्छी फसल होने की कामना में मनाये जाते हैं, ये दिन। पोंगल तीन दिन का त्योहार हैं। फसल काटने के समय यानी शरद् ऋतु मे यह त्योहार मनाया जाता है। तमिलनाडु आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के हिन्दुओ का रंगीन त्योहार पोंगल तीन रूपो मे प्रचलित है। ये रूप हैं—भोगी, पोंगल और माटटु पोंगल। वर्षा के अन्तिम दिन गाय बछडा को भली भांति सजाया जाता है और उनकी पूजा की जाती है। तमिल भाषा मे पोंगल शब्द का अर्थ है पूर्णता अर्थात् लबालब हो जाना या हर वस्तु की बहुतायत हो जाना। क्योकि नई फसल काटने के पूर्व इसे मनाया जाता है अत यह पर्व धरती माता से सम्बन्ध रखने वाले सभी वर्गों का है। किसान हो या जमींदार सभी इस पर्व को अपना दिन मानते हैं। फिर भी शहरो की अपेक्षा गाँवो मे पोंगल का सास्कृतिक स्वरूप अधिक आकर्षक है।

आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक मे इसे मकर सक्रान्ति के नाम से जाना जाता है। उत्तर भारत मे मकर सक्रांति का पौराणिक आख्यान यह माना जाता है कि सूर्य अब दक्षिणायण से उत्तरायण हो रहा है, अत सूर्य के दक्षिण से उत्तर की ओर आगमन को शुभ मान कर लोग इसका स्वागत करते हैं एव पुण्य के भागी बनते है। इस अवसर से यह समझा जाता है कि अब सर्दी समाप्त होगी और नये फूल खिलेंगे।

पोंगल का पहला दिन भोगी कहलाता है। आज के दिन सूर्य देवता हर जगह पूज्य होते हैं क्योकि वे ही जगती को उष्णता प्रदान करते हैं। चह गन्ना और चक्करई पोंगल यानि एक मीठी थाली प्रस्तुत की जाती है। घरो पर सूर्य प्रतिमा बनाई जाती है। जिस तरह ओणम् पर केरलवासी सुख समृद्धि का आगमन मानते हैं उसी तरह पोंगल पर भी सहज आकाक्षाओ के साथ हर व्यक्ति इसे विशाल स्तर पर मनाता है। पोंगल नव वर्ष के आगमन का सूचक है। उत्तर भारत मे जिस तरह पर्व त्योहारो पर घर-आँगन रग चित्रो से, साँथिये, रगोली या अल्पना से सजाये जाते हैं उसी तरह पोंगल के अवसर पर सफाई पुताई के बाद लाल रग की विशेष रेखायें बनाना उत्तर और दक्षिण भारत की सास्कृतिक एकता के परिचायक रिवाज हैं।

पोंगल के तीसरे दिन माटटु पोंगल होता है। समीप के नदी तालाब मे गाय बैल और बछडा को नहलाया जाता है। उनके सींगो पर रग पोता जाता है। ग्राम धन को एक साथ सजा कर ढोल बजाते हुए जलूस

मे निकाला जाता है। घरो मे कामधेनु गाय की पूजा की जाती है। शाम को बलो की लडाई का आयोजन होता है। बैला के सीगो पर सिक्के बाँधे जाते है।

पागल के दूसरे दिन को कारीनाल कहा जाता है। इस दिन सभी व्यक्ति अपना समय पूणत मनोरजन म ही बिताते हैं। इसी प्रकार आध्र म यह सहजातीय त्योहार बैलो की लडाई और बैलगाडी दौड के रूप मे मनाया जाता है। आज भी आध्र प्रदेश मे तेनाली तथा तमिलनाडु मे तिरुचिरापल्ली पोगल पव की मनोहारी छटा के प्रतीक केन्द्र हैं।

ओणम

भारतवर्ष के दक्षिण मे एक राज्य है, केरल। नारियल के इस प्रदेश की सस्कृति सभ्यता और साहित्य का यदि हम जानें तो पायेंगे कि यहाँ के लाग हर क्षेत्र म मौलिक सूझ बूझ के धनी हैं। अरब सागर की इठलाती लहरो के तट पर बसा केरल, दक्षिण का अनूठा उद्यान है। यहाँ की धरती रत्नगर्भा है। यहाँ की धरा केवल प्राकृतिक दश्यो के कारण ही सुविख्यात नही है बल्कि इस भूभाग का समृद्ध और प्राचीन इतिहास २००० वष स भी अधिक पुराना है।

प्राचीन दिना मे भी जबकि रोम और भारत के सागर तट के बीच समुद्री जहाज आते जाते थे, केरल आज की तरह ही एक मनमोहक प्रदेश था। यह वही भूमि है जहाँ सैण्ट थोमस ने अपने जीवन के आखिरी दिन बिताय थे। केरल के प्राचीन इतिहास का अधिकाश भाग परम्पराआ और लोक कथाओ मे छिपा है। एक कथा के अनुसार प्राचीनकाल मे विष्णु के अवतार परशुराम ने जब इक्कीस बार धरती को क्षत्रिय विहीन कर अपना रक्तरजित फरसा फेंका तो जहाँ वह गिरा वहाँ से समुद्र पीछे हट गया तथा यही प्रदेश फिर केरल के रूप मे उदित हुआ। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दिया मे चेरा वश के राजाओ का यहा की अधिकाश भूमि पर आधिपत्य था। भारत के अय राज्यो के अनुसार यहा भी छोटे छोटे रजवाडो मे आपसी झगडे रहते थ। यहाँ 1502 मे सव प्रथम योरोप के लोग आये। पुर्तगाली और डच लोगो का इस भूमि से लम्बे समय तक व्यापारिक एव राजनतिक सम्पक रहा है। आधुनिक केरल की सीमा का रपटकोड तक है, उसमे कोचीन, तिरुवितांकूर अर्थात

ट्रावनकोर, मालाबार और दक्षिणी कर्णाटक का कुछ भाग सम्मिलित है।

केरल को मलइनाडु, चेरनाडु तथा भागव क्षेत्र आदि अनेक नामो से पुकारा जाता है। सस्कृत साहित्य मे यह केरल के रूप मे ही जाना जाता है। इस राज्य की भाषा मलयालम है जो सम्पन्न एव समृद्ध भाषा है। केरल मे कई रग बिरगे त्योहार बडी धूम धाम से मनाये जाते हैं, जिनमे अधिकाश, धार्मिक भावनाओ से अनुप्राणित हैं। केरल के लगभग हर एक गाँव मे एक मदिर होता है। केरल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण त्योहार हैं विपू, ओणम और तिरुवथीरा।

'ओणम' केरल के त्योहारो मे सर्वाधिक चर्चित त्योहार है। अगस्त-सितम्बर के मास मे पडने वाले इस त्योहार पर भारत के विभिन्न भागो मे अवस्थित 'मलयाली' अपने राज्य को जाने का प्रयास करते हैं। वैशाखी श्रावणी, दीवाली, बडादिन और ईद के समान हर्षोल्लास का त्योहार है ओणम, जो फसल की कटाई के बाद मनाया जाता है।

नृत्य, गीत, दावतें और नौका दौड इस त्योहार के आवश्यक अग हैं। कहते हैं कि ओणम त्योहार का उदगम उस राजा महावलि की कथा से सबधित है जिसके राज्यकाल मे केरल महान समृद्धि प्राप्त कर चुका था। इससे देवताओ को ईर्ष्या होने लगी थी और वे सोचने लगे कि कही वह राजा अधिक शक्ति शाली न हो जाय, इसलिये भगवान विष्णु वामन अवतार के रूप मे प्रगट हुए। उन्होंने दानी और उदार राजा से उसका सारा राज्य छीन लिया और महावली को पाताल लोक मे भेज दिया। लोगो का विश्वास है कि तिर ओणम को यानि त्योहार के दूसरे और सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिन राजा बलि प्रत्येक घर को देखने आते है कि उनके लोग कितने सुखी हैं। इसलिये हर एक मकान बडे सुदर ढग से सजाया जाता है और दरवाजो पर फूलो से सुदर चित्र बनाये जाते हैं। इस अवसर पर मित्र और सम्बन्धी परस्पर मिलते हैं, बधाई देते हैं और उपहार भी देते हैं। कई स्थानो पर 'कथकलि' भी दिखाई जाती है।

इस अवसर का सबसे विशिष्ट आयोजन होता है 'नौका दौड'। सबसे प्रसिद्ध नौका दौडें, कुट्टनाड और आरणमूला मे होने वाली अजगर नौका दौडें हैं। ये स्थान कोट्टायम के पास है। इन दौडो में कई प्रकार की नौकाएँ भाग लेती हैं, जो तरह-तरह की आकृति वाली होती है। इनमे कई तोते की चोंच की तरह, कई पतग की पूँछ की तरह, तो कई घुमावदार सिरे वाली होती हैं। ये नौकाएँ 100 से 200 फुट तक लम्बी होती हैं। इनके ऊपर का भाग काफी लम्बा, शकु आकार का और पानी से कई फुट ऊपर उठा होता है। इसमे डाँड चलाने वाले 100 आदमी तक बैठ सकते हैं। ढोल और मजीरो के सुमधुर

संगीत से जब जल की सतह पर ये नौकाएँ एक दूसरी से आगे निकलने की होड मे सरपट दौडने लगती है तो बस जो नजारा होता है वह देखते ही बनता है। उसे दर्शक कभी भुला नही सकता। इस समय जो ध्वनि बजती है वह प्राचीन और विशिष्ट प्रकार की होती है। हर एक नौका के ऊपर नारगी रंग का रेशम छत्र चमकता रहता है। केरल की धर्मप्रवण जनता धूमधाम से ओणम' का त्यौहार मनाती है। मुसलमान और ईसाई सभी, प्रेम भाव से मिलकर रहते हैं 'ओणम के आँगन में।

ईदुल फित्र

मुहम्मद साहब ने इस्लाम के पाच आधार निश्चित किये, कलमा, नमाज, रोजा, जकात और हज। अत प्रत्येक मुसलमान के लिये आवश्यक है कि वह दिन मे लाइलाह इललिल्लाह मुहम्मदुरसुलिल्लाह अर्थात् ईश्वर एक है और मुहम्मद उसके रसूल है का पाठ कर, पाँच बार नमाज पढे, साल मे एक बार 'रमजान' के महीने मे दिन म उपवास अर्थात् रोजा रक्खे, गरीबो का पालन पोषण करे और जीवन म एक बार सम्भव हो तो मक्का जाकर 'हज' अवश्य करे।

मुहम्मद साहब ने रमजान के महीने को, जो पहले से ही पवित्र चला आता है, मुसलमानों के लिये कठिन तपस्या और भावना का महीना निश्चित किया। जिस समय मुहम्मद साहब का जन्म हुआ, उस समय ससार मे ईसाई यहूदी और बौद्ध धर्म का प्रभाव अधिक था। जागरण एव एकता की दृष्टि से मुहम्मद साहब ने मुस्लिम सम्प्रदाय को कई नये मूल्यमान दिये, जिनमे रमजान के रोजे भी एक हैं।

प्रारम्भ मे अरब मे लोग अपने देवताओ के जन्मदिन पर ईद मनाते थे। हजरत मुहम्मद साहब ने अरबियो से कहा कि 'चूकि अब तुमने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, और इस्लाम म 'बुतपरस्ती मना है अत अगर ईद मनानी ही है तो मैं तुम्हे दो दिन बताता हूँ जिन पर तुम ईद मना सकते हो, खुशियाँ मना सकते हो। पहली ईद रोजो की समाप्ति पर इदुल फितर और दूसरी हजरते इब्राहीम के बेटे की कुर्बानी की याद मे—ईदुज्जुहा।

रोजा का व्रत एक महीने का होता है। इसे अमावस्या के बाद रमजान

महीने के प्रथम चन्द्र दर्शन से शुरू करते हैं और पुः 29 30 दिन बाद शव्वाल (Shawwal) महीने के प्रथम चन्द्र दर्शन पर समाप्त करते हैं। एक महीने स रखे जा रह इन रोजो की समाप्ति ही 'ईदुल फितर' है, जो 'रमजान ईद' का मुबारक मौका भी कहलाता है।

रमजान के इस पूरे महीने मे मुस्लिम भाइ व्रत अर्थात रोजा रखत हैं। रमजान का पवित्र माह व्रत बडे ही उत्साह एव निष्ठा से रखा जाता है। इस दौरान यह आवश्यक होता है कि कोई भी मुसलमान 'दिन' मे कुछ भी न खाये और कुछ भी न पिये। सध्या सूय डूबने पर ढोल बजाकर यह सूचित किया जाता है कि सूय अस्त हो गया है अब रोजा अर्थात व्रत तोडा जा सकता है। फिर सध्या को सारे परिवार का एक साथ भोजन होता है।

यो तो देश विदेश के सभी मुसलमान चाहे वे किसी भी परिस्थिति म हों रोजा रखते हैं, लेकिन रमजान का सामूहिक पालन हम मुस्लिम सस्कृति के प्रतीक नगर दिल्ली, कलकत्ता, श्रीनगर, लखनऊ और हैदराबाद आदि म आसानी से देख सकते हैं। यह पव राष्ट्रीय पव के स्तर पर मनाया जाता है जो ससार के कठोर एव साधनापूण पर्वों मे एक है। मस्जिद और ईदगाहा में नियमित रमजान ईद की सामूहिक नमाज पढी जाती है और तिलावते कुरान शरीफ किया जाता है।

रमजान ईद या ईदुल फितर गरीब-अमीर बूढ़े-बच्चे और नये पुराने सभी का त्योहार है। जिस प्रकार दीपावली पर लक्ष्मी पूजा के बाद लोग नये नय कपडे पहिन, दिलो मे नय प्रेम का सदश ले अपने परिचित बधुओ से गले मिलते हैं, ठीक इसी भाँति ईदुल फितर का दिन स्नेहाभिवादन और आत्मीयता परक वातावरण मे धूम धाम से मनाया जाता है। ईदुल फितर के दिन सामूहिक नमाज पढना और खैरात करना तो अत्यावश्यक माना गया है। कहते हैं कुरान पहले पहल इसी मास रमजान म उतरा था। अत यह पवित्र महीना माना गया। भारतवप मे यह ईद 'मीठी ईद' क नाम से भी जानी जाती है।

रौशन हमारा दिल है, मुहम्मद के नूर से।
लाये है इस चिराग को, हम कोहे तूर से॥
मूसा ने इसको तूर पे देखा था दूर से।
रौशन हुई है शम्मे हरम जिसके नूर से॥

चेतीचड

भारतवष पर्वों और त्यौहारो का देश है। अलग अलग वग समुदाय, अपन उल्लास और उमग का प्रतीक दिन मनाते है। कही पर किसी महान सतशानी के ज म या मृत्यु पर स्मृति प्रेरक आयोजन होते ह तो कही पर सुख एव समृद्धि की कामना से देवी देवताओ की पूजा जाता है तो कही-कही पर ऋतु परिवतन को जीवन परिवर्तन की सज्ञा स्वीकार कर मन की प्रसन्नता अर्पित की जाती है। मलयाली भाईया का ओणम, कनड और तमिल भाइयो का पोगल, बगाली भाईया की दुर्गा पूजा, पजाबी भाईयो की बैशाखी, मराठा भाइयो की गणेश पूजा आदि ऐस ही पावन पव हैं जि हे अपन देश की सस्कृति का भव्य सयोजन माना जाता है।

सि धी जाति म चेतीचड का दिन ऐसी ही खुशी का दिन है। जिस तरह ईद का चाँद लाखो बिगडे नसीब वालो के जि दगी में खुशियाँ लाता है, उसी प्रकार चेतीचड अर्थात चैत्र की द्वितीय का चाँद मगलकामनाओ की पूर्ति का दिन समझा जाता है।

यह दिन सि धी समाज के आराध्य उदेरो लाल साहब के ज म दिन क रूप मे मनाया जाता है। उदेरो लाल साहब का ज म सवत एक हजार सात म चैत्र शुक्ला द्वितीया को, सि ध हैदराबाद के नसरपुर गाँव मे हुआ था। इनकी माता का नाम देवकी तथा पिता का नाम भक्तरतन राय था। कहते है ग्यारवी शताब्दी के प्रारम्भ में सिंध पर सभा वशीय मख नामक बादशाह राज्य करता था, जिसकी राजधानी ठट्टा नगर मे थी। मख बादशाह के बढते अत्याचार से जनता दुखी थी। घर घर बादशाह के जुल्म से मुक्ति के लिये प्राथना होती। ऐसी स्थिति मे धम और धरती की रक्षा के लिय आकाशवाणी हुई कि हे सि धवासियो, धैय धारण करो, मैं शीघ्र ही नसरपुर गाँव मे भक्तरतन राय के घर माता देवकी के कोख से ज म लूगा।' यही फिर उदेरो लाल साहब का ज म सवत एक हजार सात म चैत्र शुक्ला द्वितीया को हुआ।

सि धु नदी क्षेत्र मे बसे सि ध निवासी, उदेरो लाल साहब को सि धु अथात् दरिया या वरुण देवता का अवतार मानत है। उदेरो लाल साहब ने ही आगे चलकर बादशाह मख के अत्याचारो से सामा य जनता को मुक्त कराया।

तभी से सिन्धी जाति दीन दुखिया के सहायक उदेरो लाल साहब का जन्मदिन चत्र शुक्ला द्वितीया, को शुभ और मगल त्यौहार के रूप में हर वष मनाती है। उदेरो लाल साहब को जिंदापीर, लाल साइ और झूलेलाल आदि कई नामो से याद किया जाता है। चेतीचड के इस वरुण-अवतारी को हिन्दू मुस्लिम एकता का सूत्र भी माना जाता है। आज से एक हजार वष पूव इन्होंने ही कहा—

'हमरे राम रहीम करीमा, कैसो अल्लाह राम सतसोई', 'हिन्दू तुक मे एक पछाना, एक साहब घट घट मे जाना।'

उदेरो लाल साहब के सिन्धी अनुयायी यो तो सारे भारत मे है पर सिन्धु नदी के इलाके मे निवास करने वाले सिन्धी और मुसलमान इन्हें बहुत अधिक मानते हैं। आज भी इनकी समाधि पर अखड ज्योति प्रज्ज्वलित रहती है। प्रभू झूलेलाल ने सवत 1020 मे भाद्र शुक्ला चतुदशी को बारह वर्ष की आयु म समाधि ली थी। उदेरो लाल साहब की ज्योति यात्रा निकाली जाती है जो आगे चलकर किसी नदी, तालाब या समुद्र पर प्रतिमा विसजन के साथ समाप्त होती है। मन की इच्छा पूरी होने के लिये बहराना रखा जाता है। पानी का अर्घ्य दिया जाता है और सामूहिक परोपकारी काय सम्पन्न होते हैं। इस अवसर पर यात्रा दल को विशेष रूप से उबले हुए चने बाँटे जाते है तथा ठडाई पिलाई जाती है। अपनी अपनी हैसियत के अनुसार सभी लोग दान पुण्य करते हैं। भाई बधुओ के साथ भोजन किया जाता है। छेज् अथात् डडिया नृत्य होता है। गीत गायन के साथ 'अरदास' डाली जाती हैं। चेती चड पर भक्तमेले के अतिरिक्त 'भगत' बैठाई जाती हैं। यह भगत कथा प्रदशन की लोकशैली है, जिसमे तीन या इसके अधिक पात्र सगीतमय ढग से बात कहते हुए नाचते हुए, जनरुचि के कथा प्रसगो को प्रस्तुत करते हैं। लावणी और नौटकी का एक भिन्नरूप 'भगत' को माना जाता है। 'भगत' के पात्र प्राय समाज मे सम्मानित होते हैं तथा मात्र प्रभू को समर्पित माने जाते हैं। यहाँ हम यह भी कहेगे कि बहराना और भगत का आयोजन, सामूहिक स्तर पर न होकर व्यक्ति विशेष के द्वारा भी होता है। इस प्रकार चेतीचड का त्यौहार, सिन्धी समुदाय द्वारा मिलजुलकर वरुणदेवता के अवतार उदरो लाल साहब की सेवा मे मनाया जाता है जिसका कि भारतीय समाज मे सांप्रदायिक एकता के लिये भी महत्व है।

देवगण

गणेश

हिन्दू-सस्कृति मे ऐसे विघ्नविनाशक गणेश, सर्वोपरि एव प्रथम पूज्यदव माने जाते हैं जिनकी माता का नाम पावती एव पिता का नाम महादेव है, जो अधो को आँखें देते हैं और कोढियो को सुन्दर काया, जिनका उदर विशाल है तथा मस्तक गज का है और जिन्हें मोदक सर्वाधिक प्रिय है।

ऋद्धि सिद्धि के दाता, गणपति की प्रतिमा हम अधिकाश हिन्दू परिवारो के मकानो के मुख्य प्रवेश द्वार पर आसानी से देख सकते हैं। किसी भी मागलिक कार्य के प्रारम्भ मे गणेश पूजा इस बात की गारटी मानी जाती है कि भविष्य शुभ होगा—

विद्यारभे विवाहे च प्रवेशे निगमे तथा ॥
सग्रामे सक्टे चैव विघ्नतस्य न जायते ॥
सवदा सर्व कार्येषु नास्ति तेपाममगलम् ।
येषा हृदिस्थो भगवान् मगलायतनम् हरिम् ॥

ऐसे एकदत, दयावत, गणेश की सवारी चूहे की है। उनके वामाग म सिद्धि और दक्षिण भाग म ऋद्धि की कल्पना की गई है।

गणेश की पूजा कब से प्रारम्भ की गई यह तो निश्चित नही है, लेकिन लोकवार्ता शास्त्र के विज्ञ कहते हैं कि आदिम युग मे मनुष्यो को भय से जो मुक्त करता था वही यक्ष गणेश के रूप मे पूजा जाने लगा। गोसाइ जी ने इन्ह 'बुद्धि रासि सुभ गुण सदन' निरूपित किया है।

गणेश की पूजा घर घर होती है। उत्तर भारत मे मुख्य रूप से जहाँ शिव और उमा की पूजा होती है वही दक्षिण भारत मे शिव के पूरे परिवार की पूजा का बडा ही व्यापक प्रचार है। शिव तथा उमा के साथ वहाँ कार्तिकेय और गणेश की पूजा भी बडे उत्साह से की जाती है। उत्तर भारत मे गणेश, शुभ और लाभ के बीच, दूकानो पर विराजा करते हैं लेकिन दक्षिण मे इनकी ऐसी विशाल मूर्तियाँ भी देखी जा सकती है, जिनकी मुद्रा से वीरता टपकती प्रतीत होती है।

गणेश के गजमस्तक होने की बात पर विचार करें तब तो स्पष्ट रूप से

गणेश की कल्पना विशुद्ध अनार्य कल्पना लगेगी, क्योंकि आर्य जिस देश से आये थे वहाँ हाथी होते ही नहीं थे। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि गणेश की ॐ मयी व्याख्या सातवीं शताब्दी मे महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वरजी ने की जहां शारदा गणेशजी की पत्नी मानी जाती हैं, जबकि दक्षिण भारत मे गणेशजी को लोग अविवाहित और ब्रह्मचारी ही समझते हैं।

शोध के पश्चात् ये बात निर्विवाद रूप से मानी जाती है कि गणेश आर्येतर देव है। पुराणो मे उनकी सर्वत्र चर्चा है। तंत्रो मे तो उनके ऐसे विग्रह मिलते हैं कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। कहते है, प्राचीन आर्यगण भी समझ गये थे कि बिना गणचित्त को प्रसन्न किये इस देश मे वास करना कठिन है, इसलिये सब यज्ञो मे पहले गणदेवता गणपति की पूजा की व्यवस्था की गई।

गणेश देवता की महिमा जाननी हो तो 'गणेश चतुर्थी' के दिन महाराष्ट्र, और तमिलनाडु के घरो को देखिये। यहाँ यह दिन बहुत ही उत्साह और उमंग से मनाया जाता है। स्थान स्थान पर गणेश की मूर्तियाँ भाव भजन के साथ जल मे विसर्जित की जाती हैं। 18वी सदी मे महाराष्ट्र मे पेशवाओ के राजमहल मे प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी से दशमी तक बड़े धूम धाम से गणेशोत्सव मनाया जाता था। रंग महल मे गणपति की स्थापना करके वहाँ पर सब कार्यक्रम होते थे। इस समारोह मे ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता था। विसर्जन के दिन पुष्पों से सजी पालकी मे गणेश का जुलूस निकाला जाता था। इस अवसर पर महाराष्ट्र मे शासन की तरफ से हजारो रुपये खर्च किये जाते थे। पेशवाओं के शासन की समाप्ति के बाद यह पूजा राजकीय रूप मे न रहकर घरेलू समारोह के रूप मे होने लगी।

सन् 1895 मे बालगंगाधर तिलक ने गणेश पूजा का उपयोग राष्ट्रीयता प्राप्ति के लिये भी किया। *आज भी महाराष्ट्र मे गणेश का वही महत्व है जो* कि बंगाल मे दुर्गा का।

इस प्रकार गणेश की पूजा आराधना नाना रूप मे पूरे देश मे उत्साह से की जाती है।

शिव

भारत मे शिव भक्त ही अधिक है, क्योकि शकर शभु से बढकर कोई भी देवता भोला नही है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेव कहे जाते है। इनमे शिवजी सहार के प्रतीक माने गये हैं। शिव नाम की महिमा अपरपार है। भारतीय धम, दशन, तत्र साधना एव देवगानो मे शिव का नामोल्लेख अनेक सदर्भों मे हुआ है। वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण और महाभारत हो या भिन्न सम्प्रदायो के मत मतान्तरो के आदि ग्रन्थ हो, सभी मे महादेवजी सम्पूण या सदभ रूप मे चित्रित हैं। कहते है, शिवजी ने अपने तीसरे नेत्र से काम देव को भस्म किया था। समुद्र मथन से प्राप्त हुए विष का पान कर नील कठ कहलाये थे। भस्मासुर को वरदान देकर, भोले भडारी बने थे। रावण के शीश दान पर तथा अर्जुन के भक्ति गान पर रीझ कर उन्हे अभय का वरदान दिया था। पवतराज हिमालय के घर भूत प्रेत एव पिशाचो की बरात लेकर भभूत रमाये, गले मे सर्पों को माला पहने, त्रिपुड धारण कर, नन्दी पर सवार होकर डमरू बजाते पावती से विवाह करने पहुँचे थे। राजा भगीरथ की इच्छानुसार गगा को अपनी जटा मे धारण किया था। चन्द्र, त्रिशूल और ताण्डव नृत्य से सृष्टि को नई उद्भावनाओ के स्वर दिये थे। भगवान राम ने भी लका प्रवेश से पूव रामेश्वरम् मे इनकी आराधना की थी। ऐसे हैं सहस्त्र नाम रूपी शिव, जो भांग धतूरा गांजा पीते हैं और भूतेश, औघड तथा अव धूतो की तरह जीते हैं। चाहे भारत के तीथ हो, मूर्तिकला हो, पुरातात्विक चित्र हो, प्राचीन साहित्य पृष्ठ हो, सभी मे भगवान रुद्र की चर्चा विशेष रूप से है। जहाँ शिव गणेश एव कार्तिकेय के पिता हैं, वहाँ पशुपति नाथ एकलिंग रूप में अनेक राजघरानो के इष्टदेव भी हैं। भारत के किसी भी छोटे से छोटे गाँव मे हम जायें इनका देवस्थान तो हमे अवश्य ही मिलेगा। लोकगीत हो या लोक शैली के अन्य प्रारूप सब मे शिव से योग्य पति एव सुखी जीवन की कामना की गई है, और शिवरात्रि के माहात्म्य की कथा कही गई है।

भारतीय आय सस्कृति मे सहार के देव मगलमय शिव, विश्वप्रपच को भीतर और बाहर से परिव्याप्त कर जो 'खेलति अडे, खेलति पिंडे'—विश्व ब्रह्माड मे तथा मनुष्य के देहपिंड मे लीला कर रहे हैं—परमयोगी होते हुए

भी ससार के बंधन को मान लिया है और उमापति बने हैं। शिव या महादेव की पूजा, आर्यों के आगमन के पहले से चली आ रही है। मोहन जोदडा और हडप्पा के खडहरो में शिवलिंग का मिलना इसका प्रमाण है।

यजुर्वेद के 'शतरुद्रीय' अश मे रुद्र शिव की स्तुति की गई है। ऋग्वेद से पता चलता है शिव रुद्र के विषपान की कहानी वैदिक युग मे भी कही जाती थी। शिव की लिंग मूर्ति का आधार द्राविड और निषाद दोनो जातियो म मिलता है।

इतिहासविदो की मान्यता है कि मध्यकाल मे शिवोपासना प्रारम्भ हो गई थी। शिव को आराध्य मानने वालो को शैव कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के ग्रथ 'आगम' कहलाये। भिन्न भिन्न प्रकार की शिव मूर्तियाँ बनाई एव पूजी जाने लगी। शिव की विशालकाय त्रिमूर्ति भी कहीं कही पाई जाती है, जिसके समक्ष भूमि पर बहुधा शिवलिंग होता है। ईसवी सन् 911 के एक शिलालेख मे लकुलीश अथवा नकुलीश सम्प्रदाय के प्रादुर्भाव का उल्लेख मिलता है। इन्ही लकुलीश के चार शिष्य—कुशिक गग, मित्र और कोरुष्य थे, जिनके नाम से चार शैव उपसम्प्रदाय चले। अन्य दो शैव सम्प्रदाय—कापालिक और कालामुख—शिव के भैरव और रुद्र रूप की पूजा करते थे। 'शकर दिग्विजय', बाण के 'हषचरित', भवभूति के मालतीमाधव' मे भी कापालिक आचार्य एव कपाल कुण्डला स्त्री का वणन हुआ है। काश्मीर म शैव धम की बात स्पद शास्त्र और शिव दृष्टि नामक ग्रथ मे मिलती है। इसके अनुसार लोग गायत्री मत्र की जगह—ॐ नम शिवाय कहते हैं और यज्ञोपवीत की जगह गले में लिंग लटकाते हैं। दक्षिण के तमिल प्रदेश म तिरुज्ञान सबध की रचनाओ के साथ साथ—शैव मदिरो की प्रचुरता से शिव पूजा की व्यापकता का आभास होता है।

'शिवपुराण' में एक तरफ अन्य रुद्र रूपो के साथ साथ ऋषि पत्नियो मे लिंग पूजा के उत्साह की भी विवादास्पद अथभेदी स्थितियो का उल्लेख है, तो दूसरी तरफ 'शिश्नदेवा' आर्येतर जाति के लोगो की आचार साधना का गान भी। इसके अतिरिक्त पुराणो मे प्राय सभी दैत्य, शैव दिखाये गये हैं। ऐसा क्यो था ? यह शोध का विषय है। कहते हैं—शिव की आर्येतर कल्पना, द्रविड सस्कार से आई तथा तमिल के सिवन और सेम्बु ही आर्यों के नीललोहित एव शभु हैं।

भारत के बाहर ईरान, कम्बोडिया जावा, बालि, मारीशस, मिस्र ब्राजील, जापान, नेपाल और मक्का मे भी प्राप्त शिव प्रतिमाओ से शिव पूजा

प्रमाणित होती है । इस भूमि पर 108 शैव क्षेत्रों को बतलाया जाता हैं— जिसमे हिमालय के केदारनाथ, काशी के विश्वनाथ, सोमनाथ मे सोमेश्वर, महाबल पवत पर महाबलेश्वर, काश्मीर मे विजयेश्वर, जगन्नाथपुरी मे माकण्डेश्वर, पुष्कर मे रामेश्वर और नल्लूर मे निमलेश्वर आदि प्रमुख हैं । तमिल के पेरिया पुराणम् के अनुसार भारत मे 274 पवित्र शैव स्थल और शिवपुराण के अनुसार द्वादश ज्योतिलिंग है, यथा—गुजरात के सोमनाथ, श्री शैल के मल्लिकार्जुन, उज्जैन के महाकालेश्वर, नमदा निकटस्थ ओंकारेश्वर, महाराष्ट्र के भीमशकर, वाराणसी के विश्वनाथ गौतमी तट के त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमि के वैद्यनाथ, दारुकावन के नागेश्वर, सेतुबन्ध रामेश्वर और दक्षिण के धुश्मेश्वर । इनके अतिरिक्त –नेपाल के पशुपतिनाथ, शिवकाँची का क्षितिलिंग, त्रिचिनापल्ली जिले के जम्बुकेश्वर तिरुपति बालाजी के निकट कालहस्तीश्वर, मदुरा के सुन्दरश्वर, कश्मीर के अमरनाथ पश्चिमी बगाल के तारकेश्वर, खजुराहो के कदरिया महादेव, ऐलोरा का पवताकित कलाश मन्दिर, उदयपुर के एकलिंग जी, जबलपुर के गौरी शकर और तजौर के वृहन्नीश्वर, व दशनीय स्थल है जहाँ-शिव नाम कल्पना से हमारा साक्षात् कार सहज ही हो सकता है

ऐसे विविध नामधारी दिव्य रूपा नीलेश्वर के लिये कालिदास ने कुमार सम्भव मे कहा है—

> अवृष्टिसरम्भमिवाम्बु वाहमपामिवाधारमनुत्तरगम्
> अन्तश्चराणा मरुता निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीयम्

अर्थात् शरीर के भीतर चलने वाले सभी पवनो को रोककर वे ऐसे अचल भाव स विराजमान है, जसे कोई न बरसन वाला बादल हो, बिना लहरो वाला निश्चल तालाब हो या पवनरहित स्थान मे खडी लौ वाला दीपक हो । इसी प्रकार राजस्थानी साहित्य मे भी विवाह्ला और मगल काव्य के अन्तगत वल्लभ रचित महादेव विवाह, रणछोड रचित शिव विवाह, वेलि सज्ञक काव्य के अन्तगत गाहण चेलो कृत महादव पावती री वेलि, सलाका काव्य के अन्तगत शकर महादेव रो सलोको, ख्याल सज्ञक काव्य के अन्तर्गत शकर कैलासी, आदि-रचनाएँ शिव के विभिन्न क्रिया स्वरूपो पर प्रकाश डालती है ।

रामकथा

राम चरित मानस विमल, सतन जीवन प्रान ।
हिंदुआन को वेद मम, यवनहिं प्रगट कुरान ।। (रहीम)

राम गाथा का यह रूप ही रामायण है । रामायणकर्ता वाल्मीकि एक प्रतिष्ठित ऋषि एव भगवान राम के समकालीन थे । वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे एक आश्रम मे रहते थे । उनके मन म किसी आदश मानव का चरित्र लिपिबद्ध करने की इच्छा उठी । महर्षि नारद के परामश से उन्होंने अयोध्या के तत्कालीन शासक राम को अपना चरितनायक बनाने का सकल्प किया । इसी समय एक व्याध के हाथो क्रौंच पक्षी का मारे जाते देख उनकी हृदयगत करुणा सहसा एक श्लोक के रूप म प्रस्फुटित हो गई । ब्रह्मा के आदेशानुसार उन्होंने इसी नवीन छद मे 'राम चरित्र' को काव्यबद्ध करना शुरू किया । 'कुरुरामकथा पुण्या श्लोक बद्धा मनोरमाम् ।' इस छद रूप की रचना के पश्चात राजाराम की सम्पूण कथा महर्षि वाल्मीकि ने लव और कुश को सिखाई और ये दोनो भाई इसका सवत्र गा गाकर प्रचार करने लगे । यहाँ तक कि उन्होंने अयोध्या के दरबार मे राम और उनके भाइयो को भी यह कथा सुनाकर भाव विभोर किया था ।

लेकिन आगे चलकर धीरे धीरे रामायण का महत्वपूण प्रभाव भारतीय जन सस्कृति पर इतना विकसित हो गया कि यह मनुष्य जीवन की प्रेरक एव स्मर णीय रचना बन गई । धमग्रन्थो की श्रेणी मे श्रेष्ठ रामायण, भारतीयो के मस्तिष्क और हृदय में रम चुकी है । उनकी भावनाओ एव आचार व्यवहार मे आत्म सात् हो चुकी है । रामायण के आदश पात्र तथा आदश उक्तियाँ देश के सभी स्तर के लोगो मे फल फूल रही हैं । यहाँ तक कि रामायण कालीन सस्कृति का वृहत्तर दशन भारत के लौकिक जीवन का पर्याय बन गया है । रामकथा का यह प्रसार भारत तक ही सीमित नही है । कबोडिया, लाओस, थाइलण्ड इण्डोनेशिया आदि दक्षिणपूर्वी देशो में अनेक रूपान्तरों एव अनुकृतियो के रूप में रामकथा ने वहाँ के जन जीवन को मत्र मुग्ध किया है ।

जिस प्रकार पाश्चात्य साहित्य मे महाकाव्य का प्राकट्य 'इलियड' से हुआ उसी प्रकार भारतीय काव्य इतिहास मे महाकाव्य की परम्परा का प्रारम्भ

'रामायण' को ही माना जाता है। सस्कृत कवि दडी, कालिदास, भवभूति, राजशेखर, भटिट, भारवि, आढयराज और बाण ने तो अपनी रचनाओ मे— रामायण का अनुसरण तक किया है। यो तो भगवान राम की आशिक जीवनी महाभारत तथा प्राय सभी पुराणो पाई जाती है, लेकिन ईसा की नवी और दसवी शताब्दी मे जब सस्कृत और प्राकृत से भारत की आधुनिक भाषाओ का उद्‌भव हो रहा था तब रामायण ने ही उन्हे दिशा निर्देश दिया। यही कारण है कि आधुनिक भारतीय भाषाओ के साहित्य मे भी अद्वितीय रामकथा की व्यापकता दिखाई पडती है। तमिल की कब रामायण, तेलगु की द्विपाद रामायण, मलयालम की रामचरित, कन्नड की तोवे रामायण, बगाली की कृत्तिवास रामायण, हिन्दी मे तुलसीदास का रामचरितमानस उडिया मे बलरामदास रामायण, मराठी मे भावाथ रामायण गुजराती मे राम बालचरित तथा राजस्थानी मे रघुनाथरूपक गीतारो रघुवरजस प्रकाश आदि ग्रथ वाल्मीकि की सस्कृत रामायण क प्रसार करने वाले रूप ही है। बौद्ध और जैन भी रामायण के प्रभाव से अछूते नही रह पाये। जहाँ 400 ईसवी पूव के दशरथ जातक और अनामक जातक मे रामकथा का बौद्ध रूप देखने को मिलता है तो यहाँ 100 ईसवी पूव विमलसूरि के पाउमचरिय और हेम चन्द्राचाय की जैन रामायण मे जैन परम्परानुसार रामकथा का वणन है।

आगे चलकर सन् 1585 म बादशाह अकबर के फर्माने से रामायण का फारसी मे अनुवाद किया गया तो उन्नीसवी शताब्दी मे रामायण के अग्रेजी, जमन, फ्रासीसी, रूसी, इतालवी और चैक भाषाओ मे भी अनुवाद हुए। उत्तर भारत मे विशेषकर तुलसीकृत रामचरित मानस का व्यापक गुणगान है। रामायण कथा की मनोहारिता ने भ्रमणशील गायको को भी अपनी कला चातुरी के प्रदशन का अवसर दिया। रामायण का सामूहिक गान तो शताब्दियो से प्रचलित रहा है जिसका सबसे प्राचीन उदाहरण दूसरी शताब्दी की कुमारलताकृत कल्पना मडीतिका मे उपलब्ध हाता है। आज भी रामनवमी के महोत्सव पर वाराणसी और मथुरा मे गायको के कण्ठ से नि सृत रामायण का गान अपार जनता को मुग्ध करता है। भारत के गाँव गाँव मे रामलीला का आयोजन, रामायण के व्यापक प्रभाव का ही अग है। भारत के लोकनृत्यो मे भी रामायण का प्रभाव देखने को मिलता है, साथ ही भारत की जनसख्या का एक बहुत बडा वग आज भी रामायणपरक सस्कृति का जीवन जीता है। सस्कृत नाटककारो की प्रेरणा भी रामायण रही है। भास के नाटक इस सन्दभ के प्रमाण हैं। इनमे रामायण की दा प्रमुख विशेषताएँ 'दशन और वणन' पूरी तरह स्वीकार ली गई हैं। इसके अतिरिक्त भारत के कला-कौशल पर भी रामायण का प्रभाव है। लन्दन स्थित इडिया आफिस पुस्तकालय मे

सचित्र रामायण, तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ के राजपूत एव कांगडा शैली के चित्र, जोधपुर के संग्रहालय मे लगभग 125 वर्ष पुराने 91 रामायण विषयक चित्र, जयपुर के पोथी खाने में रामायण के फारसी अनुवाद की एक सौ छिहत्तर चित्रों से सज्जित हस्तलिपि और इतिहासकार ए० कनिघम के चित्र संग्रह मे रामायण सम्बन्धी अनेक चित्र, इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं।

वृहत्तर भारत की ललित कलाओ पर रामायण का प्रभाव प्राचीन हिन्द चीन और चम्पा के पड़ोसी कम्बोज से प्राप्त प्रचुर प्रमाणों से सिद्ध होता है। फनोम-पेन के मसीखमेर मे कम्बोज रामायण के दृश्य, जैसे जनक द्वारा सीता की प्राप्ति राम द्वारा धनुष तोडना, विवाह के बाद अयोध्या लौटते राम आदि की सुविदित घटनायें आसानी से पहचानी जा सकती हैं। इसके साथ-साथ भारतीय मूर्ति कला, वास्तुकला एव स्थापत्यकला पर भी रामायण का प्रभाव उपलब्ध होता है। देवगढ का दशावतार मन्दिर, ऐलोरा की कैलाश गुफा, प्रयाग का भारद्वाज आश्रम औरंगाबाद की गुफा, नागार्जुनकोंडा मे खुदी एक कथा पट्टी पहाडपुर बगाल की दृश्यावलि तथा राजस्थान मे जोधपुर के निकट नीलकण्ठ महादेव, बाडमेर के पास किराड का सोमेश्वर मन्दिर, और बालोतरा के पास रणछोड दासजी का मदिर इसके गौरव के साक्षी हैं।

भारत मे धार्मिक सुधारों की प्रेरक रामायण ने भारतवर्ष के लोक मे प्रचलित विश्वासो को संस्कृत बनाया तथा रामानन्द, कबीर, चैतन्य, गुरुनानक और तुलसीदास ने इसकी दिव्यधारा को घर घर मे प्रवाहित किया है।

लौकिक एव पारलौकिक जीवन के सर्वोच्च आदर्शों का कोष होने के कारण रामायण, भारत मे नैतिकता एव सदाचार की आधार शिला बनी हुई है। रामायण प्रत्येक व्यक्ति के आचरण का मानदड निर्धारित करती है। आदर्श राजा, आदर्श भाई, आदर्श पति, और आदर्श सेवक का जैसा भव्य चित्रण रामायण मे है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। तुलसी के अनुसार—

रामायण सुर तरु की छाया। दु ख भय दूर निकट जो आया॥

लक्ष्मी

पुराणो मे एक कथा आती है कि एक बार भगवान शकर के अशभूत महर्षि दुर्वासा भूतल पर विचर रहे थे। घूमते घूमते वे एक मनोरम वन मे जा पहुँचे। वहाँ एक विद्याधर सुन्दरी हाथ मे फूलो की माला लिये खडी थी। दुर्वासा के माँगने पर विद्याधरी ने वह दिव्य गन्ध युक्त माला उनको प्रणाम करके दे दी। माला लेकर दुर्वासा घूम ही रहे थे कि सामने से ऐरावत हाथी पर बैठे देवराज इन्द्र उधर से आ निकले। महर्षि ने प्रसन्न हो वह माला देवराज पर फेंक दी। इन्द्र ने इस माला को ऐरावत के मस्तक पर डाल दिया लेकिन ऐरावत ने गन्ध माला को सूँघ कर धरती पर फेंक दिया। माला को धरती पर पडे देख दुर्वासा क्रोध मे जल उठे और इन्द्र से बोले—अरे ओ इन्द्र! ऐश्वय के घमड से तेरा मन दूपित हो गया है। तूने माला नही, लक्ष्मी के धाम का अपमान किया है। इसलिये तेरे अधिकार मे स्थित तीना लोको की लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायेगी।

अब देवताओ का समस्त उत्साह टूट गया। दानवो ने देवो पर आक्रमण कर दिया। बेचारे दुखी देव, ब्रह्मा की शरण मे गये पर उन्होने देवा का भगवान विष्णु के पास जाने की सलाह दी। भगवान विष्णु ने देवो की प्रायना सुनकर उन्हें क्षीरसागर को मथन की सलाह दी और कहा—इससे अमृत प्रकट होगा, जिसक पालन करने से तुम सब अमर हो जाओगे। भगवान की आज्ञा पा देवताआ ने मन्दराचल पवत को मथानी और वासुकि नाग को रस्सी बना कर समुद्र मन्थन प्रारम्भ किया। इस प्रकार समुद्र मन्थन करने पर क्रमश कामधेनु वारुणी देवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा, विष और अमृत कलश लिये धन्वन्तरि निकले। सबके अन्त मे क्षीरसमुद्र स 'लक्ष्मी' देवी प्रकट हुईं। वे कमलासन पर विराजमान थी, तथा उनके हाथो में भी कमल शोभित थे। उनके दशन कर सभी प्रसन्न हो उठे। स्तवन के बाद व भगवान विष्णु के वक्ष स्थल मे चली गईं। यही लक्ष्मी जी विष्णु भगवान की अनन्यप्रिया हैं।

श्री हरिविष्णु नाम आदित्य रूप मे स्थित हुए तो ये पद्मा कहलाइ, श्री राम के साथ सीता और श्री कृष्ण के साथ रुक्मणी होकर अवतीण हुइ।

इसलिए ही सती साध्वी स्त्रियों को घर की लक्ष्मी कह कर पुकारा जाता है।

देवी की जितनी शक्तियाँ मानी जाती हैं उन सबकी मूल महालक्ष्मी हैं। शुभ और लाभ की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के लिये मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि वे समस्त ससार की मूलभूता आद्या शक्ति हैं। उनमे सत्, रज और तम तीनो गुणों का समन्वय है।

यह कमलवन मे निवास करती हैं। इनके पास लोभ मोह काम, क्रोध और अहकार आदि दोषो का प्रवेश नही है। ये स्वर्ग मे स्वर्गलक्ष्मी, राजाओ के यहाँ राजलक्ष्मी, मनुष्यो के घरो मे गृहलक्ष्मी, वणिक जनो के यहाँ वाणिज्यलक्ष्मी तथा युद्ध विजेताओ के पास विजयलक्ष्मी के रूप मे रहती हैं।

ऐसा ही प्रश्न जब रुक्मिणी जी ने लक्ष्मीजी से किया कि आप किस स्थान और कैसे मनुष्यो के पास निवास करती हैं? तो उन्होने कहा—कि जो मनुष्य मिष्टभाषी, कार्यकुशल क्रोधहीन भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उदार है उसके यहाँ मेरा निवास होता है। जहाँ मेरा धाम होता है वहाँ धर्म, अर्थ और सुयश की वृद्धि होती है। ये सारा ससार त्रिपुटीकृत है जो ज्ञानरूप सत्वगुण प्रधान सरस्वती इच्छा रूप रजोगुण प्रधान लक्ष्मी और क्रियारूप तमोगुण प्रधान काली के रूप मे उपास्य है। ऐसी इच्छा देवी लक्ष्मी का वाहन गरुड है। गरुड शक्ति वेग और सेवा का परिचायक है जबकि दूसरी अवस्था मे उनका वाहन उल्लू है जो स्वार्थ अन्धकार और विच्छिन्नता का लक्षण है। ऐसी स्थिति मे लक्ष्मी की दीपावली पूजा गरुड वाहिनी रूप की ही पूजा मानी जाती है। क्योकि हम इस अवसर पर पहले दीपक जला कर उल्लू के प्रियरूप अधकार को दूर कर देते है। लेकिन कलियुग मे लक्ष्मी के जिस स्वरूप की कल्पना हम करते हैं वह पाप और पुण्य दोनो का प्रतीक है।

चामुण्डा

धर्मभूमि भारत मे, शक्तिरूपा 'देवी', नानारूपो मे आराधित हैं। सम्पूर्ण प्राणियो के चित्त मे विराजनेवाली यह शक्ति ब्रह्मकला कहलाती है, जिसके अनेकश पीठ है और पाठ है। भगवान शकर की पत्नी सती पार्वती के रूपाश ही कामाख्या वैष्णवी, तुलजा भवानी, खीरभवानी, मीनाक्षी, दुर्गा, काली आदि नामो से विख्यात हैं। भारत मे तो देवी पूजा का इतना

महत्व है कि आज भी कोई ऐसा गाँव नही होगा जहाँ कि सिंहवाहिनी महिषासुर मर्दनी, कपालकुण्डला देवी का मदिर या थान न हो। राजस्थान म माता भवानी के यही धाम करणीमाता, कैला देवी, शिला देवी, जोगमाया, आदि के नाम से विख्यात हैं। यहाँ हम यह अवश्य कहगे कि इन सभी देवियों के रूप मे तो भिन्नता है, पर वाहन सभी का सिंह ही है और सभी शक्तिधारिणी हैं। युद्ध के मैदान म साथ रहनेवाली देवी को राजस्थान मे सभी पुण्य कार्यों का प्रेरक माना जाता है। राज्याभिषेक हो या डाकुओ का डाका अभियान या किसी देश पर चढ़ाई का अवसर हो—सभी समय दवी की पूजा-अराधना करने की प्रथा है। धीरे धीरे आराधना का यह सकल्प कुल या इष्ट के रूप मे परिणत हो गया। ज्यो ज्यो भक्तो को सफलता मिलती गई त्यो त्यो आराधित देव का स्थायित्व बनता चला गया। मातृ शक्ति की पूजा का यह पारम्परिक पथ—'कुलदेवी' के रूप मे स्वीकार कर लिया गया।

अलग-अलग राज्यो की अलग अलग देवियाँ हो गइ, जो उस राज्यकुल की मर्यादा की रक्षक कहलातीं। बीकानेर राज्य की कुलदेवी करणीमाता करौली राज्य की कैला माता, मारवाड राज्य की चामुण्डा पचशक्ति के ऐसे ही प्रकाशपुज है जिनका इस जन जीवन पर व्यापक प्रभाव है।

जोधपुर-नरेशों की कुलदेवी चामुण्डा हैं जो प्राचीन विश्वास के अनुसार श्येन का रूप धारण कर इनके राज्य की रक्षा करती हैं। इसी से यहाँ के राजाओं के झण्डे या निशान पर श्येन पक्षी का चिह्न बना रहता है। यो समय समय पर राजाओ मे अन्य धर्मों का प्रभाव भी बढा, लेकिन कुल की देवी के रूप मे चामुण्डा का स्थान ज्यों का त्यो बना रहा। कहते हैं कुलदेवी चामुण्डा का यह मदिर, राव चूडाजी ने बनवाया था जो कि जोधपुर राज्य के सस्थापक राव जोधा जी से तीन गद्दी पहले हुए थे। सबसे पहले तो चामुण्डादेवी का मदिर जोधपुर से नौ किलो मीटर दूर चावडा नामक गाँव मे बनवाया गया। शिलालेखानुसार इस मदिर की स्थापना के पूव ही चूडाजी ने मडोर को प्राप्त किया था। ज्ञात रहे मडोर, मारवाड की प्राचीन राजधानी है। चामुण्डादेवी की स्थापना के बाद कई राजा आये और गये, पर सबके जीवन मे चामुण्डा का कुछ न कुछ परचा अवश्य रहा। परचा दिये जाने की ये कथायें आज भी यहाँ के ग्रामीण जीवन म उत्साह से कही और सुनी जाती हैं। प्राय राजाओ के युद्ध में विजय का आशीर्वाद ही देवी इतिहास का प्रमुख अग है, पर कई अवसर ऐसे भी आये जब देवी ने राजा के गलत काम करने पर उसे चमत्कार दिखाकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया।

ऐसी मान्य कुलदेवी की पूजा आज तक दशहरे के दिन धूम-धाम से होती है। दशहरा यो तो रामकथा से सबधित है पर यहाँ इसका शक्ति के विजय पव के रूप में महत्व है। उल्लेख मिलता है विक्रम स० 1461 मे जब राव चूँडाजी के तीसरे पुत्र अडकमल ने दशहरे के दिन चामुडा के बलिदान हेतु लाये गये भैंसे की गदन तलवार के एक ही वार से काट गिराई, तो लोग उसकी प्रससा करने लगे। ये वही अडकमल थे, जिनकी पत्नी कोडमदे थी, तथा जिनके नाम पर बीकानेर के समीप कोडमदेसर तालाब बनवाया गया। चमुण्डा देवी की पूजा मे 'एक ही' वार से राज्य परिवार के किसी सदस्य द्वारा भैंसे का सिर काटने की यह प्रथा अब तक चली आ रही है।

आगे चलकर चामुण्डा के मदिर की स्थापना जोधपुर के किले पर की गई। पर इतिहास कहता है कि विक्रमसवत 1914 मे बारूदखाने के फूट जाने से यह मदिर उड गया था, अत महाराजा तख्तसिंह ने इसका पुनर्निर्माण करवाया था। आज तो जोधपुर दुग के एक ऊँचे एव प्रमुख भाग पर चामुण्डा देवी का यह मदिर बना है जिसकी नियमित पूजा होती है तथा राज्य परिवार के लोग समय समय के अतिरिक्त अवसर विशेष पर यहाँ आशीर्वाद एव अभय की प्राप्ति हेतु प्राथना करते हैं।

एक बात यहाँ है विशेष उल्लेखनीय है कि—राज्य पर चाहे जैसे सकट आये, किले को चाहे जितनी क्षति पहुँची हो पर चामुण्डा देवी की मूर्ति को आज तक कोई नुकसान नही हो पाया।

प्रथानुसार मारवाड के राजाओ के राज्याभिषेक के बाद उन्हे चामुण्डा देवी के मदिर मे जाकर अपने पूवजो का स्मरण एव देवी पूजा करनी होती थी, साथ ही जब राजा किसी यात्रा पर बाहर जाता या वापिस लौटता तो वह पहले चामुण्डा देवी के दशन करने जाता था ताकि वह 'कम' के प्रति शुद्ध बना रहे।

यहाँ मैं राजस्थान के प्रसिद्ध भक्त कवि ईसरदास की पुस्तक 'देवियणों' का उल्लेख करूँगा जोकि देवी' रूप की विशद व्याख्या है। यहाँ कवि देवी के चामुण्ड रूप के लिये कहता है—

देवी रात रे रूप तूं जगत जात
देवी जागणी रूप तू जगत माता,
देवी मातरे रूप तू अमी श्रावे
देवी बाल रे रूप तू खीर धाव
देवी जसमुदा रूप कानँ दुलारे
देवी कानरे रूप तू कस मारे,

देवी चामुडा रूप खेतल हुलावै
देवी सेतला रूप नारी खिलावे

ऐसी जनरक्षक चामुण्डा देवी, केवल मारवाड की कुलदेवी ही नही हैं अपितु उनकी महिमा नाम भेद के साथ सारे देश मे गाई जाती है।

रामदेव

इस धरती पर शायद रामसापीर या रामदेवजी ही ऐसे लोक देवता हैं जो सभी जाति व धम के लोगो मे समान रूप से पूजे जाते हैं।

इनके सबध मे कहा गया है—

साँचो उपदेस कहूँ मे थानै, बालीनाथ समझाया।
कँवे रामदेव सुणभाटी हरजी, अपणो ही आप गमाया।

ऐसे वचनसिद्ध पुरुष का ज म सवत 1430 की बसत पचमी को माना जाता है। इनकी माता का नाम मैनादे था और पिता का नाम अजमलजी। रामदेवजी की वश-परम्परा के सबध मे कहा जाता है कि ये भारत सम्राट अनङ्गपाल के वशज थे। अनङ्गपालजी के कोई पुत्र न था, केवल दो पुत्रियाँ थी—कमला दे और सु दर दे। कमला दे के ही पुत्र हुए पृथ्वीराज चौहान। अनङ्गपालजी द्वारकानाथ के बडे भक्त थे। उनकी यह उत्कठा थी कि वे द्वारकानाथ के दशन करें। पर तु राजकाज को किसके भरोसे छोडा जाय? यह विकट सवाल उनके सामने हमेशा रहता था। आखिर वे एक दिन पृथ्वीराज चौहान को राजकाज सौंपकर अपने भाई रणछोडदासजी के साथ द्वारका चले गये। जब अनगपाल तीथ से वापस लौटे तो उ होंने पाया कि पृथ्वीराज राजकाज छोडना नही चाहता। अत अनगपाल जी पृथ्वीराज चौहान को शासन सौंपकर अपने भाई रणछोडदास सहित, मारवाड के पश्चिमी भाग के निधन प्रदेश में आकर रहने लगे।

वष मे एक बार द्वारका यात्रा की यही परम्परा, अनङ्गपालजी के देहा त के बाद रणछोडदास जी ने प्रतिष्ठित रखी। इ ही रणछोडदासजी के पुत्र थे अजमल जी, जिनकी भक्ति से प्रस न होकर द्वारकानाथ ने इनके घर अवतार लेने को कहा था। यही वरदान आगे चलकर रामदेवजी और

वीरमदेवजी के रूप मे चरितार्थ हुआ। ऐसे अवतारी, लीलाधारी रामदेवजी तँवर ने दीन दुखियो की पुकार सुन—15 वष की अवस्था मे ही पाकरण के समीपस्थ पवत पर रह रहे भूतडा नामक राक्षस को मारा और अपने गुरु बालीनाथ की आज्ञा से रूणीचा नामक नगर बसाया। उनके चमत्कारा मे बनिये की डूबती नाव को समुद्र से उबारना, बालपन मे ही माँ की गोद मे लेटे लेट उफनते दूध के बतन को हाथ पसारकर उतार देना, बनजारे को परचा देना, प्रसिद्ध विश्नोई सत जाम्भोजी से रामसरोवर सम्वाद और पाँच पीरो को मक्का मदीने के प्याले देखते ही देखते प्रस्तुत करना आदि प्रमुख हैं।

रामदेवजी का समय ऐसा समय था जब देश मे धार्मिक असमानता, छुआछूत और अनैतिक मूल्यो का प्राधान्य था। विदेशी शक्तियाँ भारतीय लोक मानस का पगु बनाती जा रही थीं। ऐसे वातावरण में रामदेवजी ने जन जन को नई राह बताई, उन्हे मुक्ति और अभय का नया पाठ पढाया। रामदेवजी का सम्पूण जीवन छुआछूत और ऊँच नीच के विरुद्ध सघष का जीवन है।

आज भी भारत की सभी पिछडी जातियो द्वारा—मुख्य रूप से रामसा पीर या रामदेवजी को ही पूजा जाता है। नीले घोडे के असवार रामदेवजी के भजन आज घर घर मे तदूरे की ताल पर झूम झूमकर गाये जाते है—इसी को लेकर एक कहावत भी यहाँ प्रचलित है—'आँपा का तदूरा बाबा रामदे बजावै'।

रामदेवजी का विवाह उमर कोट के साठो राणा दल्लाजी की पुत्री नैतलदे के साथ हुआ था। इनके एक बहिन थी जिसका नाम सुगणादे था। रामदेवजी के प्रमुखतम शिष्यो म हरजी भाटी, डाली बाई, भाटी आगमसिह, मल्लीनाथजी की रानी रूपादे और हडबू जी साखँला जैसे सिद्ध साधक हुये है जो उनके सदेश को भारत के कोने-कोने तक ले गये।

विश्वबधुत्व और आदर्शों की ऐसी प्रभुता ने सवत 1515 की भादों सुदी 11 को रूणीचा मे अपने बनाये तालाब 'रामसरोवर' पर समाधि ली थी। आज इस समाधि पर भादों के महीने मे मेला लगता है, लाखो लोग देश के कोने कोने से अपनी श्रद्धा व्यक्त करने रूणीचा धाम आते हैं। हिदू मुस्लिम, अमीर गरीब सभी इनकी आराधना मे जम्मा अर्थात जागरण दिलवाते हैं।
रूणीचा के रामसापीर उत्तर भारत क ऐसे अवतारी पुरुष थे जिनके लिय कहा जाता है—

पाबू, हडभू, रामदे मागलिया-मेहा।
पाँचू पीर पधार ज्या, गोगाजी एहा।

गोगापीर

कथा और गीत के माध्यम से राजस्थान के घर-घर मे गोगाजी की महिमा कही सुनी जाती है। सिद्ध पुरुषो के लिये प्रचलित कथन के अनुसार गोगाजी, राजस्थान के पाँच पीरो मे से एक हैं। राजस्थान के बाहर मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, पजाब, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश मे भी गोगाजी को सापो के देवता के रूप मे पूजा जाता है। इनकी माता का नाम बाछलदे और मौसी का नाम आछलदे था। आछलदे के दो बेटे थे सुजन और अर्जुन। किसी जमीन जायदाद सबधी बात का लेकर इन दोनो भाइयो का गोगाजी से विरोध हो गया। इस पर अपनी सहायता के लिये अर्जुन और सुजन दिल्ली गये तथा बादशाह की फौज को साथ लेकर गोगाजी पर चढाई कर दी, फौज ने गायो को घेर लिया, जिनको छुडाने के लिये गोगाजी ने युद्ध किया। इसमे सुजन और अर्जुन दोनो मारे गये और गोगाजी घायल हो गये पर गायें छुडवा ली गइ।

गोगाजी के सम्बन्ध मे कई ऐतिहासिक अभिमत हैं। लल्लूभाई भीमभाई देसाई के अनुसार सांभर के चौहान वशीय राजा गोपेन्द्र राज ही गोगादेव है तो डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार यह गुरु-गोरखनाथ के शिष्य थे। विक्रम सवत् 1691 मे मुस्लिम कवि जान लिखित 'क्याम खाँ रासा' के द्वारा गोगाजी चौहान क्यामखाँ से 17 पीढी पहले हो चुके हैं। कर्नल टाड के मत से गोगा चौहान ने अपने 49 पुत्रा सहित महमूद के आक्रमण मे सतलज भाग की रक्षा मे प्राण त्यागे थे। श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुशी के उल्लेख से गोगा चौहान बोधागढ के शासक और गूजर जाति के पूर्व पुरुष हैं। श्री गौरीशकर हीराचद ओझा के मतानुसार गोगाजी गुजरात में नहीं अपितु राजस्थान मे 11वीं शताब्दी मे पैदा हुए जो दद्रेवा के चौहान शासक थे। इसी तरह कुछ अन्य इतिहासकार गोगाजी को महमूद गजनवी का समकालीन मानते हैं।

जाहरपीर गोगापर के नाम से हिन्दू और मुसलमानो मे आराधित गागाजी साँपो के देवता क्यो और कैसे कहलाने लगे इस पर इतिहास पूरी तरह मौन है। लेकिन राजस्थान के गाँव गाँव मे गोगा जी के 'थान' सर्प-पूजा के प्रमुख स्थान हैं। गोगाजी का सम्पूर्ण जीवन त्याग और पराक्रम का

समन्वय है। गोगाजी चौहान का देवलोकवास मैडी नामक स्थान पर हुआ जो आगे चलकर गोगामैडी के नाम से जाना जाने लगा। आज प्रतिवष भाद्रपद नवमी को गोगा नवमी के रूप मे, इनकी समाधि पर आकर्षक मेला लगता है।

गोगाजी का समाधि स्थल गोगामैडी जयपुर से 359 किलोमीटर, और बीकानेर के नोहर कस्बे से 25 किलामीटर पूव में है। रेल और बस माग से जुडे गोगामैडी स्थान पर गोगाजी की सफेद सगमरमर की समाधि बनी है, जहाँ ये नीले घोडे पर सवार, गले मे सप डाले और हाथ मे चमकता भाला लिये लाखो भक्त श्रद्धालुओ द्वारा पूजे जाते हैं। इनको मूर्ति के प्रदक्षिणा पथ के साथ ही पाँच अन्य प्रतिमाएँ हैं। गोगाजी की समाधि चारो तरफ दीवार से घिरी है जो बाहर से देखने पर किलेनुमा भवन सी लगती है। सुनते हैं गायो के प्रतिपालक गोगाजी का बादशाह महमूद गजनवी बहुत सम्मान करते थे उन्होने ही आगे चलकर इनकी समाधि का रूप परिवर्तन किया। गोगामैडी के मेले मे छोटे-बडे सभी वग के लोग भाग लेते हैं। स्थानीय सस्कृति का मूत वैभव देखने के एक मात्र स्थान अब ये मेले ही ह जहाँ देवा की पूजा और सतो की साधना होती है। गोगामैडी की समाधि पर आने वाले भक्त बताशे चढाते हैं, नगारा या ढोल बजाते है तथा उनके नाम का विघ्न विनाशक धागा बाँधते हैं। यहाँ मेले मे दुकानें सजती है, पशुओ का क्रय विक्रय होता है तथा पास-पडोस के मित्र जनो का मिलना होता है। रग बिरगी झडियों से बँधी लकडियाँ हाथ मे लिये भीड जब यहाँ गोगाजी के गीत गाती हैं तो देखते ही बनता है।

गोगाजी तिसरे बासा मे पोखर पर छोडया पागडा जी राज।
बैठा पाबूजी का सात भरे दरबाराँ लुलकर मुझरा सजिया ओ म्हारा राज।
नमे नमे करे पाबूजी का सात जी म्हारा राज।
अगुणी पेडयाँ पर न्हावे पाबूजी रा सात जी म्हारा राज।
न्हाता न्हाता पाबूजी का पग रपटया जी म्हारा राज।
रपटत पावो न गोगाजी झाडिया आजी म्हारा राज।

इसी प्रकार गोगाजी पर राजस्थानी साहित्य म बहुत से गाथा ग्रथ मिलते हैं, कथानक भेद के साथ चर्चा मिलती है, जिन्हें यहाँ का सहज लोकजीवन पूरी सच्चाई से अपनाता दिखता है। आज गाँवो मे गोगाजी के भोपे, दुख दर्द मे जनजीवन के बहुत बडे सहारे हैं। क्यामखाँरासा, गोगाजी रा छद, गोगा जी रा रसावला, गोगा पैडो आदि ऐसी कृतियाँ हैं जिनमे गोगाजी की वीरोचित मर्यादा का गुण रूप मिलता है। ऐसे परचाधारी गोगाजी चौहान और गोगामैडी भारतीय सस्कृति के उल्लेखनीय नामनीय हैं जिन्हें पाकर मनुष्य का आत्मविश्वास बढ़ता है।

वेद व्यास

जन्म 1 जुलाई, 1942

हिन्दी और राजस्थानी मे लेखन

प्रकाशित कृतियाँ
धरती हेलो मारै (राजस्थानी गीत)
परमवीर गाथा (जीवन चरित्र)
कीडीनगरो (राजस्थानी गीत)
गांधीप्रकाश (राजस्थानी काव्य सपादन)
राजस्थान के लोकतीथ (निबध)
बारखडी (राजस्थानी काव्य सपादन)
भारतवष हमारा है (बालगीत)
एक बनेंगे नेक बनेंगे (बालगीत)
आजरा कवि (राजस्थानी काव्य सपादन)
परिक्रमा (निबध)
लेखक और आज की दुनिया (निबध सपादन)
समय-समय पर (निबध)
जागत को कौन जगाये (निबध)

सम्प्रति
महामत्री, राजस्थान प्रगतिशील लेखक सघ
अध्यक्ष, राजस्थानी भाषा, साहित्य एव सस्कृति
राष्ट्रीय अध्यक्ष, आकाशवाणी कलाकार सघ

□

1962 से आकाशवाणी जयपुर म ।